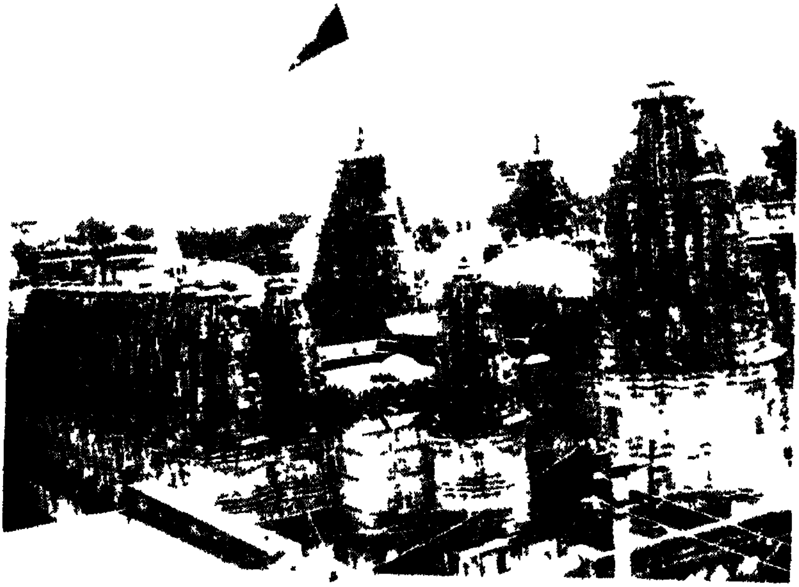
श्री ऋषभदेव मंदिर का सम्पूर्ण दृश्य



श्री श्री १००८ केशरियाजी तीर्थक्षेत्र

ग्राम-धुलेव, परगना-मगरा, स्टेट-उदयपुर

केशरिया हत्याकाण्ड

लेखकः

वाड़ीलाल शाह

सौजन्यः

धर्मवीर एण्ड कम्पनी

रोशनलाल सुरेन्द्रकुमार जैन

सिंधी बाजार, आगरा (उ.प्र.)

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन युवक संघ, विदर्भ शाखा

सदरबाजार, परतवाडा, जि. अमरावती (म.हा.)

प्रथम आवृति : १००० प्रतियाँ (सन् १९२७)
व्दितीय आवृति : २००० प्रतियाँ (सन् १९८१)
तृतीय आवृति : २००० प्रतियाँ (सन् १९९२)

मूल्य - संस्कृति रक्षा के लिये समयदान

प्राप्ति स्थान -

(१) आगरा टेक्सटाइल्स
कालबादेवी, भांगवाडी, तीसरामाला,
रूम न. २२, बम्बई (महा.)

(२) श्री दिगम्बर जैन युवक संघ कार्यालय
सदाबाजार, परतवाडा, जि. अमरावती (महा.)

(३) श्री दिगम्बर जैन युवक संघ कार्यालय
इतवारी शहीद चौक, नागपूर - ४४०००२ (महा.)

(४) अरिहन्त नवयुवक संस्था
खोवामण्डी, लार्डगंज जैन मंदिर, जबलपुर (म.प्र.)

मुद्रण व्यवस्था :
राकेश जैन शास्त्री, मेसर्स - प्रिन्टिग हाउस,
बैसाखिया मार्केट, गुडगंज, इतवारी, नागपुर - ४४०००२ (महा.)
फोन - ४९३५८

जैन धर्म का मूल सूत्र

।। अहिंसा परमो धर्मः ।।

श्री केशरियानाथजी का जैन मन्दिर मनुष्य यज्ञ का स्थान कैसे बना ?

संसार में धर्म और कानून के प्रथम जन्मदाता ऋषभदेव के समक्ष धर्म और कानून की हत्या !

दोनों पक्षकार कहते हैं कि केवल एक ही पक्ष के (दिगम्बर पक्ष के ही) मनुष्य मरे । दूसरा पक्ष (श्वेताम्बर पक्ष) व पुलिस बिलकुल सलामत है ।

श्वेताम्बर वकील कहता है-'दिगम्बर लोग नामर्द थे इसलिये उनकी मृत्युहुई।'
दिगम्बर डॉक्टर कहता है कि ' यह चोरी और सीनाजोरी थी ।'

मन्दिर की छत में खुदी हुई 'छत्रभंग ' की भविष्यवाणी का रहस्य ।

इतिहास, रिवाज, कानून, धर्म और मानसशास्त्र की सहायता से एक तत्वचिंतक की जाँच और मनन का स्वच्छ स्वरूप ।

तमाम जातियों के लिये शान्ति के हेतु
तलस्पर्शी शिक्षापाठ

नवयुग का निर्णय

'न्याय' 'दंड', 'राज्य' – ये भावनाएँ कैसे उत्पन्न हुई

नवयुग में 'जजमेंट' के स्थान पर
'री-एड्जस्टमेंट' (Re-adjustment) ध्येय बनना चाहिये ।

प्रकाशकीय

तीर्थ मोक्षमार्ग की स्मृति के दर्पण हैं। उनकी रक्षा संवर्धन प्रत्येक भारतीय नागरिक अथवा मोक्षमार्ग उपासकों का परम कर्तव्य है, परन्तु १९ वीं शताब्दी के प्रारंभ में तीर्थों के स्वरूप को संक्रमित करने का एक जैन धर्मावलम्बी पक्ष द्वारा किया गया कुप्रयास भारतीय संस्कृति के "त्याग- तपस्यामयी" सत्य की छाती पर असत्य का झंडा गाड़ा गया है।

परिणाम स्वरुप वीतरागता के प्रणेता का स्वरूप षड्यंत्र से सराग रूप प्रदर्शित करना धार्मिक ईमानदारी की हत्या है, तथा उस हत्या और अपराध को ढाँकने के लिए केशरियाजी में श्वेताम्बरी पक्ष द्वारा किये गये अन्याय, अत्याचार और छल - इस पुस्तिका में एक श्वेताम्बरी लेखक द्वारा घटनाओं को न्याय की कसौटी पर कसने का वास्तविक प्रयास है, तथा जनमानस को यह भी बताया गया है कि धर्म का दंभ, ढोंग और पक्षपात करनेवाले हिंसा का पक्ष कैसे अंगीकार कर लेते हैं, और अपनी छबि जगत के सामने स्वच्छरूप से प्रस्तुत करने का छल भरा प्रयत्न इस दुनिया में किस प्रकार हो जाता है।

मुझे यहं विश्वास है कि इस पुस्तक का पठन करके दिगम्बर व श्वेताम्बर जैन इस बात को समझ सकें कि **एक बेसहारे सत्य पक्ष को दबाकर झूठ का प्रचार संस्कृति परिवर्तन का षंडयत्र भारतीय सभ्यता और परंपराओं के प्रतिकूल है,** अतः आप सभी इस पुस्तक का अध्ययन करके अपने तीर्थों के वास्तविक स्वरूप को बचाने के लिए समय का दान देकर दिगम्बर जैन युवक संघ जैसे सुव्यवस्थित संगठन में अपनी आस्था, समर्पण, भक्ति प्रगट करके तीर्थों की रक्षा करेंगे।

भवदीय

मुख्य कार्यवाहक,

दि. जैन युवक संघ, विदर्भशाखा

"द्वितीय आवृति के प्रकाशक का निवेदन"

परमपूज्य भगवान श्री महावीर स्वामी के शासनकाल में जैन सम्प्रदायों में जैन तीर्थों की मालकियत तथा अन्य हक्कों के बाबत में मतभेद खड़े कर दिये गये हैं। कोई-कोई मामले कोर्ट तक पहुँचे है। इसप्रकार के हक्कों वगैरह के दावे शुरू हुये तो दिगम्बर जैन समाज में संघटन और संघ - बल का अभाव होने की हकीकत प्रगट हुई और विरोधी पक्ष ने प्रामाणिकता तथा कुदरती न्याय के सिद्धान्तों को ताक पर रखकर खुद के अपठित मनसूबों को सिद्ध किया है। दिगम्बर जैन समाज में अभी–अभी तीर्थों और संस्कृति की रक्षा के लिये अधिक जागृति आ रही है और अब बेदरकारी अथवा सुसुप्तता और नहीं पुसा सकती, इसतरह का भान धार्मिक संस्थाओं के नेताओं को हो रहा है, यह एक शुभयोग है।

ई. सन १९२७ में उदयपुर (राजस्थान) स्टेट के मूल दिगम्बरी मालकियत का पवित्र अतिशय क्षेत्र केशरियाजी में येन केन प्रकारेण खुद के सभी हक्कों की स्थापना उससमय के राज्यकर्ताओं द्वारा प्रमाणित करा ली जाये, इसतरह के प्रयत्न श्वेताम्बर भाइयों की तरफ से हुआ था। इस बाबत के समाचार बम्बई के कई समाचार पत्रों में प्रकाशित हुये थे और उससमय जिन्हें दिगम्बरी अथवा श्वेताम्बरी दोनों में ये किसी भी एक के प्रति कोई भी लगाव या सम्बन्ध नहीं था - ऐसे विद्वान तत्वचिंतक श्री वाड़ीलाल मोतीलाल शाह द्वारा लिखित यह पुस्तक केशरियाजी की घटनाओं को सत्य स्वरूप में प्रगट करने का सफल प्रयत्न है, उन्होंने एक तटस्थ विचारक के रूप में प्रसंगों की छानबीन कर ही उनका निरूपण किया है वह बात ध्यान देने योग्य है। इस पुस्तक की प्रथम आवृति श्री मूलचंद किशनदासजी कापड़िया, दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरतवालों ने छापकर अपनी शासन भक्ति का सुन्दर परिचय दिया है। यह दूसरी आवृत्ति भी उन्हीं के यहाँ छप रही है।

गुजराती भाषा में इसे प्रथम बार श्री मूलचन्दकिशनदासजी कापड़िया ने छापा था। और गुजराती भाषा में इसका दूसरा संस्करण भी कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट बम्बई ने छपा लिया है।

हिन्दी में दूसरी आवृति सेठ लालचंद हीराचन्दजी एवं साहू श्रेयांसप्रसादजी जैन की विशेष प्रेरणा से इसे छपा कर आपके सामने रखते हुये मुझे भारी प्रसन्नता हो रही है।

पुस्तक की उपयोगिता और प्रसंगों का सत्य निरूपण पाठकों को सही स्थिति का अनुभव करावेगीं ही।

जयचंद डी. लोहाड़े

महामंत्री, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी,
बम्बई -४०००४

दिनांक१२-५-१९८१

लेखक का परिचय

उदयपुर स्टेट के अन्तर्गत केशिरियाजी के जैन मंदिर में जो अमानुषिक घटना हुई है उसके समाचार दोनों पक्षों की तरफ से बिल्कुल एक दूसरे से उल्टे प्रगट हुए हैं , जिससे मात्र जैनसमाज ही नहीं, किन्तु समस्त हिंदी जनता इस घटना का सत्य स्वरुप जानने की इच्छुक हो, यह स्वाभाविक ही है। ऐसे समय में एक प्रसिद्ध जैन तत्वशोधक की निष्पक्ष जाँच एवं गहरे मनन के परिणाम को प्रगट करते हुए हमको हर्ष हो यह भी स्वाभाविक है। इस लेख के लेखक **श्रीयुत वाड़ीलाल मोतीलाल शाह के** "मुंझाई पड़ेली दुनियाँ" एवं "आ बधो प्रताप वेपारनों" शीर्षक लेखों ने पाठकों पर इतना चिरस्थायी असर किया है कि जिससे लेखक का विशेष परिचय देने की कोई जरूरत ही नहीं रहती। इन लेखों के प्रगट होने के पश्चात् समस्त साहित्यकारों में इनको श्रेष्ठ पारितोषिक मिलने का समाचार 'गुजरात साहित्य परिषद' की तरफ से प्रगट किया गया था।

आप जन्म से स्थानक वासी (अमूर्तिपूजक) श्वेतांबर जैन होने तथा मूर्तिपूजक जैनों के टंटे – फिसादों से कुछ भी सम्बंध न होने के कारण इनकी जाँच एवं अभिप्राय तटस्थ (निष्पक्ष) मानी जाये यह स्वाभाविक है। इनकी निष्पक्ष तटस्थता का प्रमाण यह भी है कि सम्मेदशिखरजी के विषय में श्वेताम्बर-दिगम्बरों के पारस्परिक झगड़े के समय इनने निजी खर्च से महीनो तक गाँव-गाँव घूमकर भाषणो, लेखों तथा पेम्फलेटों द्वारा आरबीट्रेशन (Arbitration) से यह झगड़ा निपटा लेने के लिये भागीरथ प्रयत्न किये थे। इसके सिवाय तीनों सम्प्रदायों के जैनों की पोलीटिकल कान्फरेन्स (राजनैतिक परिषद) के सभापति की हैसियत से भी उनने दोनों मूर्तिपूजक सम्प्रदायें की अमूल्य सेवा की है।

आपके द्वारा स्थापित किया हुआ 'विद्यार्थी गृह' तो मात्र जैन सम्प्रदायों में ही नही , प्रत्युत जैन एवं अजैन जनता के बीच में भी ऐक्य भाव स्थापित करने का ज्वलन्त दृष्टान्त है। आपका **'मस्त विलास'** ग्रंथ वेदान्त एवं पाश्चात्य तत्वज्ञान का सुंदर समन्वय माना जाता है और सब धर्मों में प्रेम एवं श्रद्धा के साथ बांचा जाता है। आपकी **"पोलीटिकल गीता'** की तो पाश्चात्य तत्वचिन्तकों एवं मननशील धुरंधर राजनीतिज्ञों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। ऐसे विशालदृष्टि समर्थ लेखक के शब्द मनन पूर्वक पढ़े जायेंगे - ऐसा हमको पूर्ण विश्वास है।

[संपादक,"हिन्दुस्तान अने प्रजामित्र"]

जैन हितैषी मासिक; नववाँ भाग, दूसरा अंक मार्गशीर्ष
श्री वीर नि. सं. २४३९ पान नं. १०० पर

श्री वाड़ीलाल मोतीलाल शाह

के बारे में छपी जानकारी-

यह जानकर हमको बड़ा दुःख हुआ कि जैन समाचार और जैन-हितेच्छी के सम्पादक श्रीयुत वाड़ीलाल मोतीलाल शाह को जैन समाज के सेवा कार्य से अन्तिम विदाई लेनी पड़ी है। हमारे बहुत से पाठक उक्त महाशय से परिचित होंगे। आप बड़े ही उदार, उत्साही, जोशीले और निर्भीक लेखक हैं। आपने अपने जोशीले लेखों से स्थानकवासी जैन समाज में एक नवीन युग का आविर्भाव कर दिया है। आपने लगातार १४ वर्ष तक जैन समाज की उन्नति के लिए अश्रान्त परिश्रम किया है। बिना किसी की सहायता के आप एक साप्ताहिक और एक मासिक पत्र का बराबर सम्पादन करते रहे। बीच में आपने एक हिन्दी का पाक्षिक पत्र भी निकाला था और तब आप तीनों पत्रों के सारे लेख अकेले ही लिखते थे। अपने ग्राहकों को आप उपहार ग्रन्थ भी इतने अधिक देते रहे हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। किसी किसी वर्ष में आपने बारह बारह पुस्तकें उपहार में दी हैं। इन पुस्तकों का सम्पादन भी प्रायः। आपको करना पड़ता था।

समाज के प्रायः प्रत्येक कार्य और प्रत्येक आन्दोलन में भी आपको शामिल होना पड़ता था। साल में कई बार आप दौरे के लिए निकलते थे और महीनों तक जैन समाज की उन्नति के पथ पर अग्रसर करने का उद्योग करते थे। पत्र सम्पादन, उपहारवितरण और दौरे आदि में आपने अपनी गाँठ के हजारों रुपये लगा दिये। तीनों पत्रों में आपको बराबर घाटा लगता रहा, पर आप इससे निराश नहीं हुए, अपने उद्देश्यों की सिद्धि के प्रयत्न में बराबर लगे रहे, आपके उद्योग से स्थानकवासी समाज में कई अच्छी-अच्छी संस्थायें स्थापित हुई है। स्थानकवासी कॉन्फरेन्स की स्थापना में आप ही का उधोग प्रधान था।

अपने उदार और स्वाधीन विचारों के कारण आप बहुत से गतानुगतिकों के कोपभाजन हो गये और उसका परिणाम यह हुआ कि आपको समाज सेवा का फल चखने के लिए कई महीनों के लिए जेल की भी हवा खानी पड़ी। इस कष्ट को आपने आनन्द-पूर्वक सहन

किया और आगे भी सब प्रकार की आपत्तियों को सहन करने के लिए आप तैयार थे, परन्तु १४ वर्ष के लगातार परिश्रम से आपकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों ने जवाब दे दिया, इसलिये डॉक्टरों की सम्मति से आपको समाजसेवा का कार्य चार छह वर्ष के लिए बिल्कुल छोड़ देना पड़ा। अब आपने बम्बई में 'मेसर्स डी. माणिकलाल' नाम की दुकान खोली है, जिसमें मिल और जीन फेक्टरी आदि कारखानों के उपयोग में आनेवाला सब प्रकार का सामान मिलता है। इस कार्य से आपका स्वास्थ्य भी सुधर जायेगा और आर्थिक अवस्था भी अच्छी हो जायेगी। जैन समाचार को और भारत बन्धु प्रेस को आपने बिल्कुल बन्द कर दिया है, रहा जैन हितेच्छु, सो उसको आपके पिता श्रीयुत मोतीलाल मनसुखरामजी सम्पादित करेंगे, आपके इस तरह जुदा होने से आपके विरोधियों को बहुत प्रसन्नता हुई है, परन्तु इसके लिए आप अपने अन्तिम लेख में लिखते हैं कि –

"मैं अपनी भयंकर तलवार को किसी कुएँ मे नहीं फेंक रहा हूँ किन्तु दीवार पर टाँग देता हूँ। जब कोई पुरुष निःसीम नीचता का बर्ताव करने के लिए तैयार होगा, तब यह कुछ दीवाल पर ही न टँगी रहेगी। प्रसंग आने पर यह बहुत समय तक गति पाई हुई तलवार चेतनाशक्तिकी सहायता के बिना भी उछल पड़ेगी और यह शक्ति जिसका कि पवित्रता रक्षा करना ही धर्म है, आसुरी प्रकृतियों पर आक्रमण किये बिना कभी चूकेगी नहीं।"

इस जोशीले युवक के चरित्र से हमारे पाठक बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस समय समाज सेवा के कार्य में अपने सर्वस्व का अर्पण कर देनेवाले ऐसे हजारों कर्मवीरों की जरूरत है।

आप इस ओर भी देखें ......

१. जैनधर्म वीतरागता का उपासक है। उसके धार्मिक नियम वीतरागता के उद्देश्य पर निर्माण हुए हैं। इस कल्प में जैनधर्म को जन्म देने वाले भगवान ऋषभदेव भी उत्तम वीतराग थे - नग्न साधु थे। उस वीतराग मार्ग का समूल रूप दिगम्बर सम्प्रदाय में विद्यमान है, इस कारण दिगम्बर सम्प्रदाय ही पुरातन जैनधर्म का सच्चा स्वरूप है।

२. श्वेताम्बर सम्प्रदाय श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी के स्वर्गारोहण होने के पीछे (बाद) और विक्रम संवत् से लगभग ३०७ वर्ष पहले (पूर्व) उत्पन्न हुआ था। उत्तर भारत प्रदेश में १२ वर्ष का घोर दुर्भिक्ष पड़ने के कारण जो जैन साधु मालवा प्रान्त में रह गये थे, उन्होंने नगर में रहकर अपने सामने आई हुई अनिवार्य आपदाओं को दूर करने के लिये वस्त्र, दंड, पात्र आदि परिग्रह स्वीकार कर लिया था। उनमें से कुछ साधुओं ने तो दुर्भिक्ष समाप्त हो जाने पर दक्षिण देश से अपने समस्त संघ के साथ लौटे हुए श्री विशाखाचार्य के उपदेशानुसार प्रायश्चित लेकर अपना चारित्र (हीन चारित्र) छोड़कर फिर पहले के समान शुद्ध बना लिया। किन्तु जो साधु शिथिलाचारी हो गये थे, उन्होंने दुराग्रह वश अपने चारित्र में सुधार नहीं किया और उन्होंने अपने वेश की पुष्टि तथा प्रचार के लिये श्वेताम्बर सम्प्रदाय की नींव डाली।

३. दिगम्बर सम्प्रदाय को पुरातन सिद्ध करने वाले अनेक साधन हैं।

(क) जैनधर्म के प्रारम्भ समय से प्रचलित वीतरागता दिगम्बर सम्प्रदाय के ही आराध्य अर्हन्तदेव में, उनकी प्रतिमाओं में महाव्रतधारी साधुओं में तथा शास्त्रों में यथार्थ रूप से पाई जाती है। वह वीतरागता श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नहीं है।

(ख) पुरातन बौद्ध, सनातनी, यूनानी आदि अजैन ग्रन्थों में जहां कहीं भी जैन साधुओं का तथा पूज्य अर्हन्त प्रतिमाओं का वर्णन आया है। वहां पर नग्न दिगम्बर रूप का ही उल्लेख है।

(ग) प्रख्यात भारतीय तथा यूरोपीय ऐतिहासिक विद्वान भी दिगम्बर सम्प्रदाय को श्वेताम्बर सम्प्रदाय से पुरातन बतलाते हैं।

४. केवलज्ञान प्रगट हो जाने पर अर्हन्त भगवान को भूख नहीं लगती। अनन्त सुख, अनन्त बल प्रगट हो जाने से किसी भी प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा नहीं होती। इस कारण प्रमादजनक कवलाहार वे नहीं करते हैं।

५. केवलज्ञानी अनन्त सुख सम्पन्न होते हैं - इस कारण उनके ऊपर मनुष्य, देव, पशु आदि के द्वारा किसी भी प्रकार उपद्रव होकर उनको दुःख प्राप्त नहीं हो सकता।

६. अर्हन्त भगवान की प्रतिष्ठित प्रतिमा पर मुकुट, कुण्डल, हार आदि आभूषण तथा चमकीले वस्त्र पहनाना जैन सिद्धान्त के विरूद्ध है - अर्हन्त भगवान का अवर्णवाद

है, क्योंकि अर्हन्तदेव पूर्ण वीतराग होते हैं तथा उनकी प्रतिमा बनाकर दर्शन, पूजन, स्तवन आदि करने का उद्देश्य भी वीतरागता प्राप्त करना है।

७. मुक्ति प्राप्त करने का साधन उत्तम साधु बनकर तपस्या करना है। ऐसा करने से ही यथाख्यात चारित्र, उत्तम शुक्लध्यान प्राप्त होता है। उत्तम साधु (जिनकल्पी मुनि) वस्त्र रहित नग्न ही होता है और साधु के नग्न वेश के निमित्त से ही मुक्ति प्राप्त होती है। अतएव अनेक दोषजनक वस्त्रों को धारण करने वाली स्त्रियां मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनके शरीर के अंगोपांगों की रचना इस प्रकार होती है कि वे नग्न होकर तपस्या नहीं कर सकती हैं और न उनमें घोर निश्चल तपश्चरण करने की उत्तम शक्ति ही होती है। इस कारण स्त्री को मुक्ति कहना असत्य बात है।

८. जैन सिद्धान्त के अनुसार (श्वेताम्बरीय सिद्धान्त शास्त्रों के अनुसार भी) तीर्थंकर-पद पुरुष को ही प्राप्त होता है। इस कारण स्त्री को तीर्थंकर पदधारिणी कहना भी असत्य है।

९. जैनधर्म स्वीकार किये बिना मनुष्य को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं हो सकता और जैन सिद्धान्त के अनुसार आचार धारण किये बिना सम्यक्चारित्र नहीं हो सकता, इसलिये अजैन मार्ग का अनुसरण करते हुए (अन्य लिंग धारण करते हुए) मनुष्य को मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

१०. मुक्ति प्राप्त करने के लिये परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करना अनिवार्य है। गृहस्थ परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग कर नहीं सकता। इस कारण गृहस्थाश्रम से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होना असंभव है।

११. तीन मास से भी आठ दिन कम का कच्चा शरीर-पिण्ड एक माता के गर्भाशय से निकालकर अन्य माता के उदर में रख देना असंभव है, क्योंकि ऐसा करने से नाभि-तन्तु टूट जाते हैं और गर्भस्थ जीव की मृत्यु हो जाती है। इस कारण महावीर स्वामी के गर्भ को देवानंदा ब्राह्मणी के उदर से निकालकर त्रिशलादेवी के गर्भाशय में पहुंचाने की और वहां पर वृद्धि होने की बात सर्वथा असत्य है।

१२. श्वेताम्बरीय शास्त्रों में अछेरे बताये गये हैं, जिनका कि वास्तविक अर्थ, 'आश्चर्यकारक बातें' होता है। उन अछेरों में से १. केवली भगवान पर उपसर्ग, २. ब्यासी दिन के गर्भ का अपहरण, ३. स्त्री का तीर्थंकर होना, ४. सूर्य-चन्द्र का अपने विमानों सहित उतर कर मध्यलोक में आना, ५. हरिवंश की उत्पत्ति और ६. चमरेन्द्र का उत्पात - ये अछेरे प्रकृति-विरुद्ध, जैन सिद्धान्त-विरुद्ध, असंभवित कल्पनाओं के रूप में है - इस कारण सर्वथा असत्य हैं।

- पं. अजित कुमार शास्त्री

(श्वेताम्बर मत समीक्षा से साभार)

विषय-सूची

ऋषभदेव (केशरियाजी) का हत्याकांड

१. सत्य समझने के लिये हृदय स्वच्छ करना चाहिये

मैं इस काण्ड की ओर क्यों आकृष्ट हुआ ? मेरी दृष्टि

उदयपुर स्टेट के अन्तर्गत केशरियाजी (ऋषभदेव) के जैनमंदिर में ता. ४ मई १९२७ के दिन होनेवाली एक अत्यन्त हृदय-विदारक घटना के सम्बन्ध में ता. ६ से ता. १६ तक लगातार अनेक समाचार एवं अभिप्राय प्रकाशित हुए हैं। यदि उनको ज्यों का त्यों मान लिया जाय तो जनता एवं सत्यशोधक पुरुषों के मन में भारी भ्रम पैदा हो जाय - यह निश्चित बात हैं। यह भ्रम पैदा न होने पावे यह सबसे प्रथम आवश्यक है। हकीकतों एवं निर्णयों को ध्यान में न लेते हुए भी एक बात तो स्पष्ट दिखाई देती है कि समस्त भारत में आज हिन्दु-मुस्लिम कौमों के बीच में जो धार्मिक "जुनून" या उन्माद उमड़ रहा है, वही धार्मिक जुनून जैन समाज के विविध सम्प्रदायों में भी उमड़ रहा है। हिन्दु-मुस्लिमों का यह जुनून राष्ट्र के लिये महा हानिकारक बहुत दिन पहले से सिद्ध हो चुका है।

यह यदि हम जानते हैं तो जैनों का धर्म-जुनून भी भारत के लिये भयरूप है और यह इससे भी भंयकर रूप धारण करे, इसके पहले ही भारतीय जनता एवं राजनीतिज्ञ नेताओं को दूरदर्शीपने से इसे समझ लेना चाहिये। इसी समझ एवं राष्ट्रीय हित के उद्देश्य से ही केशरियाजी के जैनमंदिर की दुर्घटना की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ है। **यद्यपि मैं मूर्तिपूजक नहीं हूँ और यह झगड़ा मूर्तिपूजक दो जैन सम्प्रदायों का है, अतः इस दुर्घटना की तरफ मेरा ध्यान आकृष्ट होने का कारण "जैनपना" नहीं है, किन्तु मनुष्यता एवं भारतीयता है।** जैनपने की दृष्टि से यदि मैं निर्णय करने बैठूं तो दिगम्बर अमूर्तिपूजक, दिगम्बर मूर्तिपूजक, श्वेतांबर अमूर्तिपूजक एवं श्वेतांबर मूर्तिपूजक - इन चार सम्प्रदायों से बनी हुई आधुनिक जैन समाज में वास्तविक जैनत्व (जैनपना) ही नहीं है। ऐसा एक ही उच्चारण करने के लिये जैन तत्वज्ञान की दृष्टि से मुझे बाध्य होना पडेगा।

जैनत्व शांति का तथा विकास का मूलमंत्र

'जैनत्व' यह तो बुद्धि तथा हृदय की विकास परम्परा के साथ सम्बन्ध रखनेवाला तत्त्व है और जहाँ जहाँ यह विकास थोड़े अंश में भी मौजूद हैं, वहाँ वहाँ

कोई भी स्थान, पदार्थ, मान्यता अथवा नाम भी किसी भी परिस्थिति में ऐसा अंध "उन्माद" पैदा नहीं कर सकता। पंथ, मंदिर, उपाश्रय, वाद, पूजन आदि समस्त क्रियाकांड मात्र 'व्यवहार' हैं। जिसतरह अदालतें, कानून और अमलदार आदि मनुष्य विकास के मूल कारण - शांति को बनाये रखने के साधन होने से "आवश्यकताएँ" हैं; उसीतरह उक्त सभी चीज़ें भी "आवश्यकताएँ" हैं और "मात्र साधन" हैं, सो भी उनके लिये, जो स्वयं अपने आचरण को उच्च आदर्श की तरफ अग्रसर करने में अशक्त हों। **आज तो अन्य सब धर्मों की तरह से जैनधर्म में भी शांति बनाए रखने के साधन ही शांति को भंग करनेवाले हो गये हैं और इसकारण मानव विकास और भी अधिक भय में आ पड़ा है।** धर्म को बचाने के लिये "पंथों" का भी यदि भोग देना पड़े तो दे देना चाहिये, किन्तु "मानव विकास" की रक्षा के लिये तो अखिल जगत के समस्त धर्मों का भी यदि भोग देना पडे तो सहर्ष दे देना चाहिये। यह **सरल सत्य** जब तक जन साधारण प्रजा के हृदय में नहीं उतरेगा, तब तक मानव समाज जीने की सच्ची कला समझने की अधिकारिणी नहीं है।

केवल धर्म ही नहीं, किन्तु रीति-रिवाज, कानून, राजा, राजकर्मचारी, अदालत, न्यायाधीश एवं सामयिक समाचार पत्र इत्यादि सभी केवल मूल ध्येय को प्राप्त कराने के "साधन" तरीके ही जीवित (कायम) रहने के अधिकारी हैं; न कि ध्येय (**Goal**) तरीके! राजा की इच्छा है इसलिये ऐसा होना चाहिये; **धर्मगुरु अथवा शास्त्र की आज्ञा है इसलिये यह होना चाहिये**; कानून कहता है इसलिये ऐसा करना चाहिये इत्यादि आधुनिक सभी मान्यताएँ जीवन संबंधी सरल सत्य के माथे को नीचा करनेवाली कोरी अज्ञानताएँ ही हैं। ऐसी अज्ञानताओं को नष्ट किये बिना मानव समाज के विकास का प्रारम्भ होना अशक्य ही है।

इसके लिये तो जनता को "साधन" की जगह 'साध्य' बन जानेवाली तमाम वस्तुओं एवं व्यक्तियों तथा मान्यताओं के विरुद्ध अर्थात् राजाओं, कानूनों, धर्मगुरुओं आदि के विरुद्ध गौरवपूर्ण युद्ध घोषणा करनी पड़ेगी। **सत्ता को अनधिकृत रूप से हड़प कर जानेवाला नौकर कभी भी स्वयं सत्ता नहीं छोड़ता है।** साधन जब साध्य बन बैठता है; **सेवक** जब **सेव्य** बन जाता है, तब तमाम मनुष्य प्रकृति भी विकृत बन जाती है और आज वैसा ही हो रहा है। तभी तो आज हिन्दु-मुस्लिम 'धर्मोन्माद', न केवल धार्मिक श्रद्धा का बल, बल्कि स्वयं भारत के राष्ट्रीय पदस्थ एवं स्वत्वों का नाशकारक सिद्ध हो रहा है। इसी "जुनून" का प्रयोग जैन सम्प्रदाय परस्पर में कर रहे हैं और यही "जुनून" हिन्दू समाज में भी सर्वत्र दिखाई दे रहा है। इन सब पर से एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि **आज भारतीय धर्मों को मनुष्य की कैसी भी दरकार ही नहीं है; केवल निजी सत्ता की चाह है** और जिसको मनुष्य समाज की दरकार नहीं है तो भले ही वह बड़े से बड़ा शहंशाह अथवा

अवतार ही क्यों न हो, फिर भी उनका अस्तित्व मनुष्य समाज के लिये असह्य हो जाना चाहिये - यह बात बिलकुल स्पष्ट है।

वाचक तथा पाठकों को प्रार्थना

उपर्युक्त श्रद्धा ही मुझे केशरियाजी की दुर्घटना की तरफ आकृष्ट करती है। मुझे आशा है कि पढ़नेवाले भी इसी आशय से इस लेख को पढ़ेंगे। इसके लिये वाचक समुदाय से ऐसी प्रार्थना है, कि वे इससे पहिले प्रकट होनेवाली तमाम रिपोर्टों को घड़ी भर के लिये भूलकर स्वच्छ हृदय से इस लेख को पढ़ें। प्रकट हुआ एक भी समाचार अथवा अभिप्राय इस लेख में आने से न रह जाय - इस बात का मैंने पूरा पूरा ध्यान रखा है। यही नहीं बल्कि उस घटना को स्वयं देखनेवाले एक दर्शक से घंटों तक मिलकर और उलट-पलट जाँच कर यथाशक्य सत्य निकालने की कोशिश की है और इस मंदिर का भूगोल, इतिहास, प्रथा, इत्यादि के सम्बन्ध में जितने लिखित प्रमाण मिल सकते हैं, वे भी प्राप्त किये हैं। केवल एक ही साधन काम में नहीं लाया जा सका है और वह है – घटनास्थल की निजी मुलाकात (निरीक्षण), परन्तु यह तो शक्य ही न था – जैसा कि आगे समझ में आ जायेगा।

२.हत्या के विषय में दोनों तरफ से प्रगट किये हुए समाचार

दिगम्बरों द्वारा दिये गये समाचार :-

(अ) यह घटना हुई ता. ४ मई १९२७ को दोपहर के बाद। सबसे पहला सच्चा-झूठा कोई भी समाचार पत्रों में प्रगट किया गया हो तो वह है ता. ६ मई के पत्रों में श्री भारतवर्षीय (आल इंडिया) दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, मुंबई की तरफ से :-

इस समाचार की सत्यता के अनुमोदन में अजमेर की एक अजैन सार्वजनिक संस्था *"राजस्थान सेवा संघ"* की तरफ से तार भी था।

यह समाचार अति संक्षिप्त था। यह समाचार किसी भी प्रकार की विगत (ब्यौरा) अथवा टीका-टिप्पणी रहित उदयपुर के स्थानीय दिगम्बर पंच की तरफ से प्राप्त हुए तार का भाषान्तर मात्र था, जिसके शब्द ये थे :-

"ध्वजादंड क्रिया के लिये ता.४ को केशरियाजी के जैन मंदिर में श्वेताम्बरों ने (कि जिनको श्वेताम्बर जैन धर्मानुयायी हाकिम एवं सेनानायक ने सहायता दी थी) दिगम्बरों को मारा, जिसके परिणाम में उसी स्थान पर ५ दिगम्बर जान से मारे गये और १५० मनुष्य घायल हुए, जिनमें से १५ गंभीर हालत में हैं।"

यही तार सबसे पहला समाचार है और यह चोट खाये हुए स्थानिक दिगम्बरों (जो सब प्रकार से असहाय थे) की तरफ से समस्त भारत के दिगम्बर तीर्थस्थानों की रक्षा करने वाली कमेटी के नाम पर था और उसका एकमात्र आशय उचित सहायता माँगने का था।

इस तार से यह तो भली प्रकार सिद्ध हो जाता है कि उदयपुर अथवा केशरियाजी में बाहर गाँव के और खास करके मुंबई का तो कोई भी दिगम्बर जैन न था। श्वेताम्बर वकील मुंबई से उदयपुर एवं केशरियाजी जाकर ता. ८ को जो मनघड़न्त रिपोर्ट प्रकाशित कराते हैं, उसके अनुसार – यदि दिगम्बर हुल्लड़ मचाने के इरादे से ही मंदिर में इकट्ठे हुए थे, तो ता. ४ के पहिले ही बाहरगाँव की जनता एवं खास करके मुंबई की तीर्थक्षेत्र कमेटी को तो वे बुलाए बिना न रहते। खुद तीर्थक्षेत्र कमेटी को ही हत्याकांड के समाचार द्वारा ही – ध्वजादंड क्रिया होनेवाली थी -- इस बात की ता. ५ मई को खबर हुई है। इससे सिद्ध होता है कि स्थानीय दिगम्बरों का तो स्वयं किसी भी प्रकार का हुल्लड़ मचाने का इरादा न था। इतना ही नहीं बल्कि श्वेताम्बर मारामारी करेंगे - ऐसी स्वप्न में भी इन्हें आशा न थी।

उदयपुर को छोड़कर और कहीं के भी दूसरे श्वेताम्बर भी यह न जानते थे कि ता.

४ मई को केशरियाजी में ध्वजादंड क्रिया का उत्सव होनेवाला है। ध्वजादंड की क्रिया के सदृश एक बड़ी धार्मिक क्रिया के समय प्रत्येक ग्राम में आमंत्रण पत्रिका भेजकर भाविकों को एकत्रित करने का रिवाज प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। यह मंदिर तो तीर्थस्थान एवं अतिशय (चमत्कारी) क्षेत्र कहलाता है, इसलिए ऐसे बड़े तीर्थ में ध्वजादंड सरीखा उत्सव आमंत्रण-पत्रिका द्वारा सब जगह सूचना दिये बिना कभी नहीं होता। इतना होने पर भी उदयपुर के स्थानीय श्वेताम्बरों ने तो कोई कैसी भी आमंत्रण पत्रिका नहीं दी -- यह भी अनेक गूढ़ रहस्यों एवं गुप्त षड़यंत्रों का द्योतक है। परन्तु इन पर आगे विचार करेंगे। यहाँ तो इतना जान लेना ही यथेष्ट होगा कि यदि दिगम्बरों को हुल्लड़ मचाना होता अथवा श्वेताम्बरों द्वारा हुल्लड़ होने की आशंका होती तो उदयपुर के स्थानीय दिगम्बर मुंबई की तीर्थक्षेत्र कमेटी को पहिले ही से उत्सव की खबर देकर उचित मदद माँगने की उपेक्षा नहीं करते; और यदि उदयपुर के श्वेताम्बरों ने मुंबई के श्वेताम्बरों को नियमानुकूल उत्सव की खबर दी होती तो मुंबई के श्वेताम्बर हत्याकांड के बाद वहाँ जाने के बदले उत्सव के पहिले ही वहाँ पहुँचे जाते। श्वेताम्बर पक्ष की तरफ से जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं, वे सब हत्याकांड के बाद वहाँ पहुँच हुए श्वेतांबरों ने की हैं और वे भी वकील की युक्ति-प्रयुक्ति-जन्य बुद्धि द्वारा घड़ी हुई हैं। वे भी उदयपुर के स्थानीय श्वेतांबर संघ की तरफ से प्रकट नहीं हुई और जो प्रकट भी हुई हैं, वे भी दिगम्बरों की तरफ से रिपोर्ट प्रकट होने के बाद ही प्रकाशित हुई हैं।

श्वेतांबरो द्वारा दिये गये समाचार :-

(ब). ता. ६ मई के पत्रों में उदयपुर दिगम्बर संघ का तार प्रगट होने के ३ दिन बाद अर्थात् ता. ९ के 'जामे जमशेद' नामक पेपर में श्वेताम्बर सम्प्रदायानुयायी मुंबई की "जैन एसोसियेशन ऑफ इंडिया" नामक संस्था और इसी तारीख के "सांज वर्तमान" में इसी सम्प्रदाय की एक दूसरी "श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्स" नामक संस्था, ता. ६ के दिगम्बर समाचार को असत्य बताने के लिये कूद पड़ती है और वैसा करते हुए कहती है, कि "यह समाचार मिलते ही श्री जैन एसोसियेशन ऑफ इंडिया एवं श्री श्वेताम्बर जैन कॉन्फरेन्स ने उसकी जाँच के लिये उदयपुर तार किये थे, जिसके जबाब में उन्हें यह तार मिला था"। उक्त संस्थाओं के तारों का जवाब भी कोई स्थानीय श्वेताम्बरों की तरफ से नहीं दिया गया बल्कि बम्बई से गये हुए श्वेताम्बर सॉलीसिटर ने तार का जवाब दिया था। यह बात इस सॉलीसिटर के ता. १२ के 'इंडियन मेल' में छपे हुए पत्र पर से विदित हो जाती है।

जैन एसोसियेशन ऑफ इंडिया एवं जैन श्वेताम्बर कॉन्फरेन्स तो ता. ४ को ही हत्याकांड का समाचार जान चुकी थी तभी तो एक सॉलीसिटर तथा एक जवेरी उसके बाद

तुरंत ही उदयपुर पहुँच गये थे और जिसका विचार भी न था, ऐसे हत्याकांड के यकायक हो जाने के कारण ता.४ को अपूर्ण रही हुई ध्वजादंड क्रिया ता. ६ को पूर्ण कर डालने के लिये गुजरात पाटन के धनाढ्य सेठ पूनमचन्द कोटावाला को भी वहाँ भेज दिया गया था। ता. ६ के दिगम्बर समाचार को झूठा सिद्ध करने के लिये उक्त श्वेताम्बर संस्थाओं को लगातार ३ दिन तक राह देखनी पड़ी, उसका कारण यही मालूम होता है कि ऐसी भयंकर घटना के प्रमाणों को नाश कर देना कोई आसान काम नहीं था और सबकुछ ठीक-ठाक होने के पहले कोई भी रिपोर्ट प्रकाशित कर देना बात बनाये रखने की दृष्टि से ठीक नहीं होता।

"जामे जमशेद" में जैन एसोसिएशन की तरफ से जो तार प्रकट हुआ है, उससे ये बातें मालूम पड़ती हैं कि, -- (१) **ध्वजादंड का विरोध करने के लिये केशरियाजी में दिगम्बर लोग बड़ी भारी संख्या में एकत्रित हुए थे । (२) दिगम्बर जैनों ने उदयपुर स्टेट की पुलिस के साथ मारामारी की थी और पीछे हटते हुए अपने ही ४ मनुष्यों को कुचल डाला था । (३) दिगम्बर-श्वेताम्बरों के बीच में तो कोई कैसी भी लड़ाई ही हुई नहीं । (४) केशरियाजी में इकट्ठे हुए श्वेताम्बरों की संख्या ५० से ज्यादा न थी (५) आगे जाँच की जा रही है। (६) पत्रों में प्रगट हुए समाचार असत्य हैं । (७) ध्वजादंड क्रिया सफलता के साथ श्री पूनमचन्द कोटावाला ने की है ।"**

इसप्रकार का तार बंबई निवासी श्वेताम्बर उदयपुर से बंबई के श्वेताम्बरों के तारों के जवाब में ३ दिवस की तकलीफ के बाद भेजता है और उसके ऊपर पीछे से एसोसियेशन का सेक्रेटरी आरोपी पक्ष का वकील होने पर भी स्वयं जज बनकर एक्सपार्टी (**ex-party**) फैसला तार के साथ ही छपाता है, कि -- **इससे श्वेताम्बरों पर लगाया हुआ आरोप असत्य साबित होता है (?)...** पहले हमेशा से ध्वजादंड की क्रिया श्वेताम्बर ही करते आये हैं, उसी तरह इस वर्ष भी वे ही करनेवाले थे । दिगंबर इस क्रिया को स्वयं करना चाहते थे और इसके लिये वे ५ वर्ष पहले से उदयपुर के नामदार महाराणा साहब से अपील करते रहे हैं, परंतु इसमें उन्हें सफलता मिली न थी । पहले के रीति-रिवाज के अनुसार उदयपुर दरबार ने ध्वजादंड क्रिया करने के लिये श्वेतांबरों को हुक्म दिया था । दिगम्बरों ने उसका विरोध किया और स्टेट पुलिस के साथ मारामारी की और पीछे हटते हुए अपने ही मनुष्यों को कुचल डाला । इस मारामारी में श्वेताम्बरों का कुछ भी हाथ नहीं है ।"

उक्त समाचारों से यह स्पष्ट दिखाई दे जाता है, कि (१) सेक्रेटरी द्वारा अपने ही पक्ष के ६ लाइन के तार में फैसला दे बैठना और ता. ६ के दिगंबर समाचार को झूठा जाहिर करना तथा समाचार को 'आरोप' शब्द से संबोधित करना ; ये सब बातें दुनिया की न्याय तौलने की

शक्ति तथा हक्कों को श्वेताम्बरों के यहाँ गिरवी रखने के प्रयत्न के समान है जैसे कि लगभग एक शताब्दि पहिले उदयपुर राज्य एक श्वेताम्बर के घर गिरवी रखा गया था और तबसे राज्य में दिगम्बरों की सही सलामती भी उनके यहाँ गिरवी रखी गई थी।

इससे दूसरी बात यह भी स्पष्ट दिखाई दे जाती है कि सेक्रेटरी ने जो तार प्रगट किया है, उसमें पहले से क्या होता आया है; ५ वर्ष पहिले क्या हुआ था, महाराणा ने किसको क्या हुक्म दिया था? आदि का कोई कैसा भी उल्लेख न होने पर भी तार के नीचे ये सब बातें लिखी हैं। क्या इससे श्वेतांबरों का पत्रों द्वारा जनता को असत्य मार्ग की तरफ ले जाने का पक्का इरादा स्पष्ट साबित नहीं हो जाता ? अभी आगे चलकर हम इनके ही शब्दों पर से देखेंगे कि यह बनावटी बयान स्वयं ही झूठा सिद्ध हो जाता है और वह भी दिगम्बर रिपोर्टों से संबंध न रखते हुए केवल श्वेताम्बर रिपोर्टों से ही।

ता. ९ के 'सांजवर्तमान' में कॉन्फरेन्स आफिस ने उदयपुर से मिले सेठ पूनमचन्द कोटावाला (पाटण के नगरसेठ) का तार प्रगट किया है, जो "श्वेताम्बर समाज को बधाई देता है, कि ईडरियागढ़ (मन्दिर) जीत लिया गया है !" " अपने आप मर जाना परन्तु मनुष्य बंधु को न मारना"-- इस सिद्धान्त को पॉलिटिक्स (राजनीति) में मुख्य स्थान देनेवाले महात्मा गांधीजी ने जब मनुष्य रक्षा के लिये पागल कुत्ते को मार डालने के पक्ष में अपना मत दिया था, तब इस 'अपराध' के बदले में तो इनके ऊपर चारों तरफ से घोर कोलाहल मचाने वाला दयालु श्वेताम्बर जैनियों का एक अग्रणी नेता इस तार में क्या लिखता है ? केवल यही कि **'बड़े आनन्द के साथ हमारे हाथ से ध्वजादंड शान्तिपूर्वक चढ़ाया गया है। सब ठीक-ठाक है, झगड़ा नहीं है ... पत्र देखो।"** ऐसे ही भोले लोग धर्म 'जुनून' को हथियार बनानेवाले उस्तादों के हाथ के खिलौने बन जाते हैं।

भले 'श्रीमानों' को यह कहाँ खबर है, कि बुद्धि रहित अकेली लक्ष्मी स्व-पर का अकल्याण ही करनेवाली होती है, क्योंकि बुद्धि के द्वारा श्रीमानों को खिलौना बना लेनेवाले दुनियाँ में थोड़े नहीं हैं। हथियार एवं पेपर (समाचार पत्रों) के लिये परवाना (**License**) काढ़नेवाली सरकारों में अभी तक नियत हृदय से ज्यादा धन रखने के लिये परवाने निकालने की जरूरत स्वीकृत न होने से -- लक्ष्मीवान बुद्धिमानों के खिलौने बनकर भूल या दोष कर बैठें तो ऐसे समय में इनके प्रति क्रोध प्रकट करने में मुझे संकोच होता है।

मैं इस श्रीमान् बंधु से इतना पूछकर ही सन्तोष मानूँगा कि "सब ठीक- ठाक है -- झगड़ा ही कुछ नहीं हुआ" तो फिर 'पत्र देखो' किस आशय से लिखा है? छिपाने योग्य क्या रहस्य था ? आपने ता. ६ को ता. ४ की अपूर्ण रही हुई क्रिया को पूर्ण किया तब आपने मन्दिर में पड़ी मुर्दों की लाशों को नहीं देखा, क्या आप ऐसा छाती पर हाथ रखकर कह

सकते हो? कुछ हुआ ही नहीं और सब ठीक-ठाक – ऐसा क्या तुम्हारा मनुष्य हृदय बोलता है? ता. ६ को क्रिया को पुनः चालू करते हुए श्वेताम्बर सेनानायक की फौज की तैनाती में क्रिया की गई थी। इतना तुम भी स्वीकार नहीं कर सकते क्या ? ता. ४ को ध्वजादण्ड क्रिया के लिये निश्चित की गई थी ।और उससमय तुम्हें इस क्रिया को करने के लिये नियत नहीं किया गया था, क्या इस बात से तुम इन्कार कर सकते हो? ४ तारीख की क्रिया फौज की सहायता से निर्विघ्न पूर्ण हो जायेगी, इस विश्वास में **Actual Deaths** (हत्याकांड) के कारण अन्तराय पड़ जाने से क्रिया का मुहूर्त ता. ४ नहीं परन्तु ता.६ प्रारम्भ से ही निश्चित की गई थी, इसतरह बात बदलकर बाहर के एक जैन के हाथों – तुम्हारे हाथों – से कराने का निश्चय करके तुम्हें बुलाया गया था, इसे तुम छिपा सकते हो क्या? और स्वधर्मियों की लाशों के सामने ध्वजादंड की धार्मिक क्रिया करना तुम्हारे शास्त्रों ने, प्रणालिका (परम्परा) ने अथवा तुम्हारे हृदय ने अथवा तुम्हारे उस्तादों ने इनमें से तुम्हें किसने सिखाया? इसी में ही 'बहुत आनंद' तुम देख सके हो क्या ? **जैन यदि ऐसे पतन में ही अपना आनंद मान सकते हों तो ऐसे 'जैनधर्म' से भगवान मुझे बचायें ।** आधुनिक तमाम 'सरदारों' और 'साहूकारों'(धनवानों) के साथ गाढ़ सम्बन्ध होने से आज **पाप मात्र धर्म तथा कानून की सफेद पोषाक में ढके जाते हैं,** परन्तु पापों को छिपाओगे कहाँ तक ? यह भीषण पाप छान (छप्पर) पर चढ़कर बोलेगा, वह दिवस भी आज के दिन की तरह अवश्य आनेवाला है।" उदयपुर के दो श्वेताम्बर तारों से हम देख चुके हैं, कि एक तार तो कहता है कि "दिगम्बरों और स्टेट पुलिस के बीच में मारामारी अवश्य हुई थी और उसी से ही - श्वेताम्बरों की मार से नहीं, चार दिगम्बर मर गये और वे भी पुलिस के हाथ से नहीं, परन्तु उनके स्वयं के द्वारा ही कुचल ड़ाले गये जिससे वे मर गये।" और दूसरा तार कहता है, कि "कुछ भी अयोग्य घटना नहीं हुई; सबकुछ शाँतिपूर्वक संपन्न हुआ है और क्रिया करनेवाले नगरसेठ को बहुत आनन्द मिला है !" ये दोनों श्वेताम्बर तार क्या परस्पर में विरोधी नहीं है? और अभी तो हम आगे देखेंगे कि इन दोनों तारों की हकीकतों को उनको ही स्वयं बड़ी जल्दी से मिटाना पड़ता है और बिलकुल नई हकीकत प्रगट करनी पड़ती है । यह सब विरोध एक सत्य बात को छुपाने में आनेवाली कठिनाइयों के उपाय तरीके ही करना पड़ा है । इनकी सबसे पहली आतुरता यह बताने की है, कि "हत्याकांड में श्वेताम्बरों का तो कुछ भी हाथ नहीं है । इसलिये उन्हें बलात् पुलिस का नाम लेना पडा, जो वस्तुत; पुलिस नहीं बल्कि फौज थी और उस फौज का सेनापति श्वेताम्बर था । यह फौज पहले ही से बुला ली गई थी।- इस बात का तो जरा-सा इशारा तक नहीं किया गया, मानों वह सब फौज एकदम आकाश में से कूद पड़ी हो ! फौज के बदले ' पुलिस' शब्द इसीलिये प्रयोग

किया गया है, जिससे घटना की गम्भीरता न दिखाई दे और पुलिस के मत्थे मारामारी का दोष डालना श्वेताम्बर पक्ष की सलामती के लिये आवश्यक मालूम हुआ। परन्तु कुछ भी क्यों न हो इस बनावटी पुलिस (असल में तो फौज) का अधिकारी श्वेताम्बर जैन होने से इसको भी बचाना आवश्यक था, इसलिये रिपोर्ट भी ऐसी ही गढ़ी गई, कि पुलिस ने भी किसी को मारा न था, किन्तु मात्र पकड़ो ! पकड़ो!! की आवाज की थी, जिससे विरोध करने के लिये बड़ी भारी संख्या में आनेवाले दिगम्बर घबड़ाकर भाग खड़े हुए और अपने आप कुचलकर मर गये !

परन्तु अब भी इस रिपोर्ट में कैसा परिवर्तन होता है, वह भी हम आगे देखेंगे।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से जांचकमेटी की मांग

(क) पेपरों में तीसरा समाचार दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी द्वारा समुचित उपाय लेने के लिये बुलाई गई कमेटी की रिपार्ट रूप से प्रगट हुआ है, जो ता. १० के 'डेली मेल' में प्रगट हुआ है। इस मीटिंग ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पास किया कि "महाराणा के पास एक डेप्यूटेशन भेजकर निष्पक्ष जाँच (Inquiry) करायी जाय और न्याय प्राप्त किया जाय।" इस मीटिंग में उक्त तीर्थक्षेत्र कमेटी के एक कार्यकर्ता ने अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध किया था कि (!) केशरियाजी का मंदिर दिगम्बरों ने ही बनाया था और वे ही उसके मालिक एवं व्यवस्थापक थे; और ये बातें शिलालेखों तथा मूर्तियों पर से निःशंक रूप से सबको समझ में आ जाती हैं। बाद में उदयपुर से आये हुए पूरी घटना को प्रत्यक्ष देखनेवाले गृहस्थ ने जो कुछ हुआ था सो सब कह सुनाया, जिससे घायल एवं मरनेवालों के कुटुम्बियों को सहायतार्थ एक फण्ड बनाया गया।

बम्बई समाचार :- (प्रत्यक्षदर्शी दिगम्बर का अहवाल)

(ख) ता. १० के 'बम्बई समाचार' ने उक्त प्रत्यक्षदर्शी दिगम्बर का कहा हुआ अहवाल प्रगट किया है। इस अहवाल में मंदिर का हक तथा हत्याकांड सम्बंधी सविस्तार विवरण प्रगट किया था और श्वेताम्बर अधिकारी ने लश्कर (फौज) का कैसी नृशंसता पूर्वक उपयोग किया था तत्संबंधी सब समाचार कहे थे, परन्तु इससमय तो श्वेताम्बर पक्ष को जो कुछ कहना है, उस सबको कहकर बाद में ही मैं दिगम्बर पक्ष का कथन वाचकों के समक्ष रखना चाहता हूँ; जिससे वाचकों के दिमाग में दोनों रिपोर्टों का घोटाला (सम्मिश्रण) न होने पावे। ऐसा करने का एक दूसरा कारण यह भी है कि श्वेताम्बरों की विविध रिपोर्टें स्वयं-बाधित (परस्पर-विरुद्ध) होने से उन रिपोर्टों को पूरी तरह जानने के बाद वाचक वर्ग को सत्य समझने में कोई कठिनाई न होगी। दिगम्बर अब कोई कैसा भी फेरफार नहीं कर सकते क्योंकि इनने सब हकीकतें (रिपोर्टें) प्रगट कर दी हैं और मुझे जो खबरें मिली हैं,

उनमें फेरफार करना उनके हाथ में नहीं है। इसके सिवाय जो श्वेताम्बर नेता मुंबई से वहाँ गये थे, उनने भी अपनी अंतिम रिपोर्टें प्रगट कर दी हैं और वे यहाँ लौट भी आये हैं। दिगम्बर नेताओं को तो क्या, परन्तु सामान्य जैनों को भी केशरिया जाने में रोकने का प्रबंध किया गया था, जो प्रतिबंध "सब कुछ ठीक-ठाक है" इस खबर के भेजने के बाद और उससमय भी एक 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' के बीच में पड़ने से दूर हुआ था और तभी दिगंबर नेता सर हुकमचंदजी इत्यादि वहाँ जाने के लिये रवाना हो सके। वे अभी तक पीछे लौटे नहीं है और इन शब्दों को लिखते समय तक उनकी तरफ से कोई कैसा भी वक्तव्य प्रगट नहीं हुआ है, इसलिये रिपोर्ट को इस लेख के अन्त में लेना विशेष उपयुक्त होगा।

ता.११.५.२७ विश्वमित्र : (ऑननेरी मजिस्ट्रेट डॉ. गुलाबचंद पाटणी के तार पर आधारित)

(ग) चौथी रिपोर्ट – "विश्वमित्र" नामक हिंदी पत्र की ता.११ के अंक में प्रगट हुई है, जिसमें उदयपुर से ता. ९ को अजमेर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट डाक्टर गुलाबचंद पाटणी द्वारा भेजा हुआ तार निम्नप्रकार छपा है :-

१. ऋषभदेव (केशरियाजी) का सब संबंध रोक रखा गया है।

२. महाराणा तथा रेसीडेन्ट साहब यहाँ नहीं हैं।

३. महाराजकुमार (**Prince**) को उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने भ्रम में डाल दिया था, इसकारण यद्यपि महाराजकुमार ने मुलाकात देने के लिये दो अपॉइन्टमेन्ट (अवसर) दिये थे। फिर भी जब उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्री तेजसिंहजी आये तो मुलाकात देने की मनाई की गई। चीफ मिनिस्टर ने मुझे केशरिया जाने की मंजूरी नहीं दी।

४. डाक्टरी रिपोर्ट अभी तक 'महकमा खास' में पहुँची नहीं है, जिससे जनता का संदेह और भी बढ़ गया है।

५. महाराणा कुम्बलगढ़ में है, वहाँ उनसे मिलने के लिये दिगम्बर गये हैं।

६. दिगम्बर लोग चाहते हैं कि सरकारी कमीशन द्वारा स्वतंत्र जाँच की जाय और 'मगरा' के हाकिम, जिसके ऊपर हत्याकांड की पूरी जिम्मेदारी है, उसको उसके पद से बर्खास्त किया जाय। श्वेताम्बर अफसरों का प्रभाव राज्य के अधिकारियों के ऊपर अधिक है। दिगंबर निःसहाय हैं, उनकी यहाँ कोई सुनता भी नहीं है।

७. श्वेतांबरों ने राज्य की आज्ञा के विरुद्ध ध्वजादंड क्रिया पूर्ण की है। [ता. ६ की घटना का यह उल्लेख है।] उससमय मंदिर के अंदर के द्वार बंद किये गये थे और दिगंबर यात्रियों को भी अन्दर प्रविष्ट नहीं होने दिया था। स्थानिक दिगंबरों को भी आज दिन तक दर्शनों के लिये भी अन्दर नहीं जाने दिया जाता है।

राजस्थान सेवासंघ (तार से आधारित)

(घ). 'राजस्थानसेवासंघ' का तार भी उसी के साथ प्रगट किया गया है, जिसमें लिखा है कि :-

१. 'महाराजकुमार' तथा राज्य के श्वेताम्बर हाकिमों के ऊपर पक्षपात से दिगम्बरों के ऊपर अन्याय करने का आरोप किया जाता है।

२. वायसराय तथा एजेंट को तार भेजे गये हैं;

३. उदयपुर महाराणा ने एक खास मजिस्ट्रेट द्वारा जाँच करने की स्वीकृति दी है।

४. दिगम्बरों को ऋषभदेव (केशरियाजी) नहीं ले जाने की सूचना टाँगा सवारी मालिकों को की गई है।

५. रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा (राजपूताने का इतिहास के रचयिता अजमेर निवासी अजैन महाशय) कहते हैं कि ऋषभदेव का मन्दिर दिगम्बरों का है।

प्रजामित्र (तार से आधारित)

(ड) ता. ११ के 'प्रजामित्र में' ऋषभदेव से मिला हुआ एक तार इसी आशय का प्रगट किया गया है कि "घायल होनेवालों मे से एक आदमी और मर गया है और दिगम्बर ब्रह्मचारी श्री चांदमलजी को गिरफ्तार किया गया है।"

इस तार की आवश्यकता के विषय में श्वेतांबर सोलीसिटर ऋषभदेव से ता. ८ को लिखकर भेजता है, जो ता. १२ को मुंबई के **"The Indian Daily Mail"** में छपा है उसकी सत्यासत्यता की जाँच आगे यथावसर करेंगे।

बाम्बे क्रानीकल ....(ता.१२.५.२७)

(च) ता. १२ को 'बाम्बे क्रॉनीकल' में भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी ने ता. ४ को मार पड़ने के कारण मरे हुए ५ व्यक्तियों के नाम पूरे पते के सहित प्रगट किये हैं। अजमेर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट डॉ. गुलाबचन्दजी पाटणी घायलों की सेवा-सुश्रुषा एवं उपचार के लिए जाते हुए रोके गये हैं। साथ ही साथ तमाम दिगंबर यात्रियों को तथा उदयपुर के नागरिकों को ऋषभदेव जाने से रोका गया है।

यह खबर मिलते ही तीर्थक्षेत्र कमेटी ने श्वेताम्बरों के धार्मिक भावों को दुःख पहुँचानेवाले उपन्यासों के रचयिता श्री मुन्शी के विरुद्ध उचित कार्यवाई करने के लिए जो ४ मेम्बरों की कमेटी श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने नियत की थी और बाद में इस लेखक के आग्रह से उक्त दिगम्बर संस्था ने सौहार्दभाव से उक्त कमेटी में अपने ४ सभ्य भेजे थे, उनको वापिस खेंच लिया।

यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि स्थानकवासी (अमूर्तिपूजक श्वेतांबर) कॉन्फरेन्स ने भी इस लेखक के आग्रह से अपनी तरफ से ४ सभ्य, श्वेताम्बर कमेटी की मदद से भेजे थे और वे दिगंबर भाइयों के त्यागपत्र देने का अनुकरण नहीं करेंगे। स्थानकवासियों के लिये तो मूर्तिपूजक श्वेतांबर और दिगंबर दोनों ही भाई हैं और इन दोनों के झगड़े के समय किसी एक का पक्ष न लेते हुए स्थानकवासी कॉन्फरेन्स तो तटस्थ ही रहेगी और यदि हो सकेगा तो इन दोनों में पुनः ऐक्य स्थापित करने का पूर्ण प्रयास करेगी।

"आज से लगभग १ मास पहिले जब इस लेखक ने उक्त स्थानकवासी एवं दिगंबर सर्वोपरि संस्थाओं को अपनी मदद श्वेताम्बर मूर्तिपूजक कॉन्फरेन्स को देने के लिए समझाने का प्रयत्न किया था, उससमय मुझे स्वप्न में भी यह ख्याल न आया था कि बिना माँगे ही मदद देने के उत्सुक सहधर्मी समाज को शीघ्र ही इतनी नृशंसतापूर्वक पुरस्कार दिया जायेगा और यदि यह घटना अकस्मात् भी हो गई थी तो क्या श्वेतांबर कॉन्फरेन्स खेद एवं सहानुभूति न दिखाकर ऊपर से ऐसा व्यवहार करेगी ? ऐसी कल्पना करने की शक्ति अपेक्षा मैं तो कसाई बन जाने की शक्ति विशेष वांछनीय समझूँगा।'

जिस ग्रन्थ के विषय में श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने कानूनी कार्रवाई से प्रस्ताव पास किया है उस ग्रन्थ का नाम 'पाटननी प्रभुता' है, जो कि एक ब्राह्मण विद्वान का लिखा हुआ उपन्यास है, जिसमें पाटन के राज्य में श्वेतांबर जैनों का कितना जोर है। इसका दिग्दर्शन कराया गया है और जिसमें जैन-धर्म को राजधर्म बनाने के लिये एक श्वेतांबर यतिने राज्य परिवार के एक पुरुष की हत्या की थी। ऐसा उल्लेख उस पुस्तक में किया गया है। इस उल्लेख का आज श्वेतांबर जैनी घोर विरोध कर रहे है। यहाँ तक कि ग्रन्थकार ब्राह्मण वकील महाशय उनको विचार करने के लिये आमंत्रण देते हैं तब भी उसकी उपेक्षा करते हुए कानून का डर बता रहे हैं, किन्तु आजतक वे कोई भी कानूनी कारवाई नहीं कर सके हैं। उसी पाटन के एक गृहस्थ श्री **पूनमचन्द करमचन्द कोटावाले को केशरियाजी में श्वेतांबर-विधि से ध्वजादंड चढ़ाने भेजा गया था और उसी पाटन निवासी ने दुनिया को यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि श्वेतांबर जैनी अपने हाथ से वहाँ तक किसी को नहीं मारते, जहाँ तक राज्य के कर्मचारी अथवा दूसरे कोई माध्यम (Medium) मिल सकते हैं।**

जैनगजट (ता.१३.५.२७)

(छ) ता. १३ को प्रगट हुए साप्ताहिक 'जैन गजट' में उदयपुर तथा अजमेर से ता. ९ को भेजे गये दो तार प्रगट हुए हैं जिनसे उपरोक्त प्रायः सभी खबरों के सिवाय निम्नलिखित

और ज्यादा हकीकतें मालूम पड़ती हैं :-

(१) ता. ३ को उदयपुर के स्थानीय दिगंबर पंच महाराजकुमार से मिले थे और ता. ४ को श्वेतांबरो द्वारा होनेवाली ध्वजादंड क्रिया के प्राप्त हुए समाचार कहे थे। उन पंचों में से दो पंचों का बयान लिख लेने के लिये कुमार ने पुलिस को हुक्म दिया था। ऐसा सुना गया है कि पुलिस ने उन्हें खूब धमकाया और ३ घंटे तक दोनों को पुलिस कस्टडी **(Custody)** में रखा था।

(२) तार आफिस में जाते हुए एक दिगंबर को गिरफ्तार किया गया था और उसे भी पुलिस के हवाले कर दिया गया।

(३) पोस्ट मार्टम **(Post Marteum)** रिपोर्ट अबतक 'महकमा खास' (राजसभा) में भेजा नहीं गया है।

(४) कुम्बलगढ़ में महाराणा दिगंबरों से मिले, तब भी महाराणा ने यही विश्वास दिलाया कि श्वेतांबरोंको ध्वजादंड चढ़ाने की बिलकुल आज्ञा नहीं दी गई है।

(५) महाराणा एवं कुमार दोनों पक्षों की अर्जियों का जबतक फैसला न हो जाय, तबतक कोई भी क्रिया न करने देने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध थे।

(६) दिगंबर महाराजकुमार पर विश्वास भंग करने और खास करके श्वेतांबरों का पक्ष लेने के आरोप करते हैं। श्वेतांबरों का कुमार पर अधिक प्रभाव है। उनमें से अधिकांश राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी हैं, 'मगरा' का हाकिम (इसी परगने में श्री ऋषभदेवजी का मंदिर है) और देवस्थान हाकिमा (मंदिरों की देखरेख के लिये राज्य की तरफ से खास नियुक्त अधिकारी) दोनों ही श्वेतांबर जैन हैं, उन दोनों पर इस घटना का विशेष आरोप है। (ये दोनों परस्पर में ससरा –जमाई लगते हैं)

(७) ता. ९ तक दिगंबरों को दर्शन के लिये भी मंदिर में नहीं घुसने दिया गया। ता. ६ को श्वेतांबरों ने **राज्य की आज्ञा के बिना** राज्य की फौज की सहायता से जब क्रिया की, तब मन्दिर के अन्दर के किवाड़ बन्द कर लिये थे और दिगम्बर यात्रियों को भी अन्दर नहीं आने दिया था।

"इंन्डियन डेली मेल" (ता.१२.५.२७)

(ज) ता. १२ के **"इन्डियन डेली मेल"** एवं मुंबई समाचारों में अंग्रेजी एवं गुजराती भाषाओं में मुंबई के श्वेतांबर सॉलीसिटर द्वारा पूरी जाँच (?) के बाद केशरियाजी से ता. ८ को भेजी हुई रिपोर्टें प्रगट हुई हैं और तारीख १३ को मुंबई के श्वेतांबर जौहरी ने केशरियाजी से वापस लौटकर "सांज वर्तमान" के रिपोर्टर (संवाददाता) को इन्टरव्यू **(Interview)** दिया। वे लेख ध्यान खींचनेवाले हैं इसलिये उन्हें यहाँ अक्षरशः उद्धृत करता हूं।

सॉलीसिटर का अंग्रेजी लेख बाँचने के बाद उनका गुजराती लेख तो बाँचना ही पडेगा, क्योंकि एक ही तारीख को एक व्यक्ति द्वारा भेजे हुए अंग्रेजी एवं गुजराती रिपोर्टों में गम्भीर भिन्नता है।

"इन्डियन डेली मेल" में प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्ट --

THE JAIN FRACAS[1]

To the Editor, The "Indian Daily Mail."

1. Sir, In continuation of my telegram from Udaipur sent yesterday. I find the situation as under :-

2. In 1889 S. V. Dhwajadand was installed by the Bafna family members and inscription to that effect is found on the bronze wooden Span. Five years ago a new flag banner was prepared, when Digambers objected to the Swetambers installing the banner. In ordinary course the matter was referred to the Udaipur State.

3. This history is necessary to understand the real situation. Vaishakha Sud 5 (6th Instant) was fixed as the date therefore. On the 3rd in the morning they started holy Abhisheka ceremony for Dhwajadand.

4. Only 14 persons from Udaipur had come and outside piligrims including 75 Swetemberis were present at Dhulev on that day.

5. But in the meantime Digambers got scent of the matter, and by invitation assembled at Dhulev in a very great number. They were not less than 800. They very jealously watched besmearing ceremony of the 4th Inst., and at 12 noon Swetambaris left the place for dinner and other purposes, and only 2 Swetambaris were present in the temple when the following events took place. Digambaris then present were about 500. Mugat and Kundals were being adjusted and fixed by artists. One Digambari rushed to the Spot, broke two Mugats and created a row. All rushed to the spot. In the mean while State Police which were present in a good number called upon them to leave. There was a great rush back. In the thick entrance of about 10 steps they rushed down. One Digambar Muni of Indore stood against the entrance with hands off and remonstrated Digamberis not to be cowards and not to leave.

6. There was a rush inside from outside, and in the mellee several fell down and others rushed on their bodies. This way, four Digambaris expired,

---

1 आ खबर पत्रमां तेमज अन्य सर्व स्थलोना उतारामां अन्डरलाइनींग तथा ब्लेक करवानुं म्हारा हाथे थयुं छे, तेमज पेराने संख्या आपवानुं वा. मो. शाह.

under their own pressure, and at the time no Swetambari was present and none took part in the row.

7. Not a drop of blood was found on the spot or on the body of the dead. Post marteum shows no sign of use of any weapon or lathi.

8. At once a commission of inquiry has been started by the State. It lays all the biame for the incident upon the Digambaris.

9. ONE thing is absolutely CERTAIN, and it is this-- for this MISCHIEF Swetambaris are not at all responsible. No scufle ever took place between the Digambaris and Swetambaris on that day or thereafter in connection with Dhwajadand ceremony. NO DIGAMBAR HAS BEEN WOUNDED.

10. On the fixed date, with the assistance of the police Dhwajadand was installed by Sheth Punamchand Karamchand kotawalla.

11. The incident is to be deplored by Swetambaris who are not at all responsible for it. It was mischief created by Digambaris who had come there intentionally to flout the order of the State, and being cowards could not resist the rush of the State Police upon an order to withdraw.

12. This information I gathered from highly responsible persons on the spot, and you are at liberty to publish as you think fit. I have not written any other letter as I have not got sufficient writing materials here, but ill-placed Swetambar responsibility should be at once cleared by wide circulation. I am here for two days and a day more at Udaipur. You may write to me for any further information if doubts have to be cleared.

Yours etc.

Motichand Girdhar Kapadia,

[2]. Dhulev, 8th May 1927.

---

2. उदयपुर स्टटे के 'मगरा' परगने में धुलेव ग्राम है और इसी ग्राम में केशरियाजी का मंदिर है। श्री मोतीचन्द गिरधर कापड़िया सॉलीसिटरने बम्बई से वहाँ पहुँचकर तारीख ८ को यह पत्र बम्बई के अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशनार्थ भेजा था। ऊपर के एक पैराग्राफ में लिखा जा चुका है कि तारीख ७ को उनने उदयपुर से बम्बई को तार किया था।

उपरोक्त इनके कथन से निम्नलिखित ३ बातें स्पष्ट समझ में आ जाती हैं।

'मुंबई समाचार' (कापड़िया सॉलीसिटर की गुजराती रिपोर्ट)

(झ) "मुंबई समाचार' में प्रगट हुई श्री कापड़िया सॉलीसिटर की गुजराती रिपोर्ट :- केशरियाजी में ध्वजादण्ड का महोत्सव; दिगम्बर जैनों द्वारा मचाये हुए शोर-तूफान में ४ दिगम्बर मारे गये; जाँच करने से मिली हुई हकीकत/ कम तकरार में श्वेताम्बरों का हाथ नहीं है।

(१) हत्याकांड के स्थान से जब उनने यह रिपोर्ट समाचार पत्रों को भेजी थी, उससमय थोड़े ही घंटे पहिले वे वहाँ पहुँचे थे और इतने थोड़े समय में ही प्रकाशित करने योग्य तमाम जाँच वे कर सके थे।

(२) जाँच पूरी होने और समाचारपत्रों में रिपोर्ट भेजने के बाद भी २ दिन तक धुलेव में ठहर जाने की उनके कानूनी मस्तिष्क को जरूरत मालूम पड़ी और उसके बाद एक दिन उदयपुर में (जहाँ कि राजकुमार एवं श्वेताम्बर अफसरों की बड़ी संख्या मौजूद थी तथा महाराणा की गैरहाजिरी थी) ठहरने की आवश्यकता जान पड़ी। (३) उनने ता. ७ को उदयपुर से तार किया था, इससे सिद्ध होता है कि वे ज्यादा से ज्यादा ता. ७ को उदयपुर पहुँचे होंगे अर्थात् ता. ५ के बाद तो वे बम्बई से रवाना हुए ही नहीं होंगे। दिगम्बरों द्वारा प्रगट हुआ समाचार सबसे पहले ता. ६ के समाचार पत्रों में प्रगट हुआ है। सॉलीसिटर यह समाचार पढ़कर तो जाँच करने के लिये उदयपुर गया नहीं, परन्तु उदयपुर के श्वेताम्बरों ने ता. ४ को ही तार करके इस अचिन्त्य भीषण घटना की खबर देकर मदद के लिये नेताओं को बुलाया हो और इसलिये पाटण के नगरसेठ को पहले भेजकर ता. ६ को क्रिया करने के बाद ता. ७ को सॉलीसिटर को उदयपुर बुला भेजा हो – ऐसा सिद्ध होता है।

उदयपुर के श्वेताम्बरों ने ता. ४ को जो कुछ किया था, वह सब राजकुमार एवं श्वेताम्बर अफसरों के बल पर ही किया था। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि महाराजकुमार एवं महाराणा में तीव्र वैमनस्य और विरोध है। महाराणा पर ब्रिटिश सरकार की नाराजी भी है। फौज को दमदाटी देने के लिये पहले ही से मंदिर में बुलाकर रखा था, परन्तु परिणाम में जब ५ मनुष्य मर गये तो इस बात को दबा देने और प्रमाणों को नाश कर देने की आवश्यकता मालूम पड़ी - यह तो बिलकुल स्पष्ट बात है। उदयपुर के श्वेतांबर को दो प्रकार की मदद की जरूरत थी (१) बाहर गाँव के किसी धनवान की ध्वजादंड की अधूरी रही हुई क्रिया को पूर्ण करने के लिये और (२) ब्रिटिश् कानून के जानकार की सलाह और आन्दोलन के लिये। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि ध्वजादण्ड के उत्सव में भाग लेने के लिये बम्बई श्वेतांबर संघ अथवा कॉन्फरेन्स को आमन्त्रण देने की तथा क्रिया करने के लिये बाहर गाँव के गृहस्थ को आमन्त्रण देने की आवश्यकता उदयपुर के श्वेताम्बरों को नहीं हुई थी। आमंत्रण देने की आवश्यकता तो हत्याकांड के बाद ही हुई थी सो भी मदद के लिये, न कि उत्सव की शोभा बढ़ाने या दर्शन-करने के लिये। (डॉक्टर पाटणी के ता. १४ के तार से उदयपुर एवं केशरियाजी के बीच आना-जाना व्यवहार खुल गया है। यह समाचार जानने के बाद ही सर हुकमचन्दजी इत्यादि दिगम्बर नेताओं का डेप्यूटेशन उदयपुर जा सका था।)

१. वैशाख सुदी ५ के दिन केशरिया महाराज के मंदिर में श्वेतांबरों की तरफ से ध्वजादंड की क्रिया होनेवाली थी। इस सम्बन्ध में पुराना कुछ इतिहास जानना जरूरी है। संवत् १८८९ में बाफणा श्वेतांबर कुटुम्बियों ने इससे पहिले का ध्वजादण्ड चढ़ाया था। उसकी पाटली और लेखा मौजूद हैं। इस क्रिया को करानेवाले खरतर गच्छ के आचार्य का नाम भी उस पाटली में है। पाँच वर्ष पहले इस ध्वजादण्ड को जीर्ण हुआ जानकर नया चढ़ाने के लिये श्वेतांबरों ने प्रबंध किया, दिगंबरों ने झगड़ा किया, जिसकी उदयपुर नरेश ने जाँच की थी। श्री केशरियाजी तीर्थ के ऊपर उदयपुर का श्वेतांबर जैन संघ देख-रेख रखता है। वहाँ से केवल १४ श्वेताबंर जैन केशरियाजी में आये और दूसरे यात्रियों को मिलाकर कुल ७५ श्वेतांबर वहाँ थे।

२. वैशाख सुदी ३ के दिन प्रातःकाल अभिषेक होनेवाला था। चार घंटे तक यह क्रिया होती रही। दिगम्बरों ने आमंत्रण देकर लगभग ८०० जैनों को एकत्रित किया था। वे इस समस्त क्रिया को देख रहे थे। दोपहर के लगभग १२ बजे यह क्रिया समाप्त हुई और श्वेतांबर भोजन करने के लिये धर्मशाला में गये। उस समय मंदिर में केवल २ श्वेताम्बर हाजिर थे और सुनार प्रतिमाओं के ऊपर मुकुट-कुण्डल चढ़ा रहा था जो छोटे बड़े थे उनको ठीक-ठाक कर बराबर बिठाता था। लगभग १३ प्रतिमाओं को मुकुट चढ़ जाने के बाद एक दिगंबर ने धांधल और शोर मचाना शुरू किया और दो मुकुटों को तोड़कर फेंक दिया। दूसरे ४०० दिगम्बर भी शोर मचाने लगे और इसतरह धाँधल मच गई। स्टेट की पुलिस ने सबको एकदम बाहर जाने का हुक्म दिया और पकड़ो पकड़ो की आवाज की, इससे दिगम्बर टोली डर गई और दरवाजे की तरफ भाग खड़ी हुई। दरवाजे में जाने की १० सीढियाँ हैं, जो फिसलनी हैं। उन पर से दौड़ते हुए कुछ आदमी रपट पड़े। इतने में सामने के दरवाजे में एक दिगम्बर मुनि जो उदयपुर विद्यालय में गृहपति (अधिष्ठाता) का काम करता है, वह बाहर जाने के दरवाजे में आड़े खड़े होकर किसी को भी बाहर न जाने के लिये उत्तेजना देने लगा और आड़े हाथ फैलाकर बाहर जानेवालों को रोकने लगा। बाहर भी शोर मचा और बाहर के लोग अन्दर आने लगे। इस धमाल में कुछ लोग जमीन पर पड़ गये और उनके शरीर को खूँदते हुए पीछे के लोग निकल गये। इस धमाल में ४ दिगम्बरों के शरीर कुचल गये और दूसरों के बोझ से दबकर मर गये। इस उपद्रव में श्वेतांबरों का बिलकुल हाथ नहीं है। वे तो वहाँ हाजिर भी न थे और जो थे भी उनकी संख्या इतनी अल्प थी कि वे लड़ाई तो किसी भी प्रकार नहीं कर सकते थे। कोई भी घायल नहीं हुआ और खून की एक बूँद भी नहीं गिरी। हथियार या लकड़ी का उपयोग बिलकुल नहीं हुआ। जो

दुर्घटना हुई है, वह यद्यपि अत्यन्त खेदजनक है, परन्तु इसके लिये जवाबदार बड़ी संख्या में एकत्रित होकर हुल्लड़ मचानेवाले दिगम्बर भाई ही हैं।

३. स्टेट की पुलिस ने तुरन्त ही शान्ति फैलाई। मुर्दों की लाशों की जाँच की गई; उनके शरीर पर किसी भी प्रकार का एक भी घाव नहीं पाया गया, बोझ से दबकर श्वांस रुकने से मरण हुआ है - ऐसा अभिप्राय डाक्टरों ने दिया है।

४. पंचमी के दिवस - नियत समय पर सेठ पूनमचंद करमचंद कोटावालों ने ध्वजादंड चढ़ाया था। यह क्रिया करने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई।

५. उदयपुर स्टेट की तरफ से जाँच करने के लिये कमीशन नियत किया है, उसकी जाँच में भी किसी श्वेताम्बर को जवाबदार नहीं माना गया। केशरियाजी का प्रबन्ध उदयपुर स्टेट के हाथ में है, वहाँ पर कोई भी कार्य स्टेट के हुक्म के सिवाय नहीं हो सकता। यह तीर्थ श्वेताम्बरों का है, इसमें किसी भी प्रकार की शंका नहीं है। मुकट-कुण्डल भी स्टेट के हुक्म से चढ़ाये जा रहे थे। हाल ही में लगभग २॥ लाख की आंगी तैयार की गई है, उसका खर्च भी नामदार उदयपुर महाराणा ने दिया है। स्थानं पर जाकर जांच करने से मालूम पड़ता है कि घायल होनेवालों की जो संख्या बताई गई है, वह असत्य है। कोई किसी भी प्रकार की तकरार या फिसाद दिगम्बर और श्वेताम्बरों के बीच में नहीं हुई। इस सम्बन्ध में कौम - कौम के बीच में वैमनस्य फैलानेवाली खबरों को प्रगट करने के पहले प्रत्येक जैन का कर्तव्य है कि वे स्वयं जाँच करके हकीकत को प्रगट करें। पंचमी के दिन सभी प्रतिमाओं पर मुकुट-कुण्डल चढ़ा दिये गये हैं।

धुलेव ता. ८-५-२७ सही - मोतीचन्द गिरधर कापडिया

'सांजवर्तमान' [रणछोड़भाई का इंटरव्यू / २५ सवाल और जवाब]

(य) 'सांज वर्तमान' में श्वेताम्बर जौहरी रणछोड़भाई रायचंद मोतीचंद का इन्टरव्यू का रिपोर्ट इसप्रकार प्रगट हुआ है घ:-

१. सवाल- - केशरियाजी में किस कारण मारामारी हुई थी, सो आप कृपया बतलायेंगे क्या ?

जवाब- - केशरियाजी के मंदिर में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर जैनों में [4]

---

[3] ता. ११ को जौहरी मुंबई लौटे थे।

[4] आश्चर्यकारी रिपोर्ट

श्वेताम्बर सॉलीसिटर कहता है कि ता. ४ को तो ध्वजादण्ड चढ़ाना ही न था, उसको ता. ६ को चढ़ाने का ही निश्चय हुआ था; श्वेताम्बर जौहरी कहता है कि ता. ४ को ध्वजादण्डके

ध्वजादंड चढ़ाने के हक के सम्बन्ध में मारामारी हुई थी। यह ध्वजारोहण का अधिकार श्वेतांबर जैनों का होने पर भी दिगम्बर जैनों ने अपना हक्क का दावा किया था और इसी पर से झगड़ा खड़ा हुआ था।

२. सवाल -- ध्वजादंड चढ़ाने का अधिकार श्वेतांबर जैनों का है - इसका क्या प्रमाण है ?

जवाब -- पहले के ध्वजादंड की पाटली पर के लेख से यह सिद्ध हुआ है कि पहले का ध्वजांदड संवत् १८८९ में चढ़ाया गया था और वह पुराना होने से नया चढ़ाने के लिये यह क्रिया हुई थी। यह पुराना ध्वजादंड बाफणा गोत्र के सुलतानचन्द नामक श्वेतांबर ने चढ़ाया था।

३. सवाल -- इस सबंध में श्वेतांबर एवं दिगंबर में झगड़ा कब से हुआ?

जवाब - सन १९२३ से।

४. सवाल -- इस अवसर पर जैनों की कितनी हाजिरी थी ?

जवाब -- ८०० से १००० तक की।

५. सवाल -- उसमें किस पक्ष की संख्या ज्यादा थी, दिगंबरों की या श्वेतांबरों की ?

जवाब -- दिगम्बरों की। श्वेतांबरों की संख्या तो मात्र ७०-७५ थी और दिगम्बरों की संख्या ८००-९०० थी।

६.सवाल -- दिगम्बरों की इतनी बड़ी संख्या जमा होने का कारण आपकी समझ में क्या है ?

जवाब -- इस ध्वजादंड को चढाने की क्रिया को रोकने के लिये और उस क्रिया में विघ्न डालने के लिये इरादापूर्वक इतनी बड़ी संख्या को वहाँ के पंचों ने एकत्रित की होगी- ऐंसा मुझे मालूम होता है।

७. सवाल -- वहाँ का मामला कैसा है ? और तूफान पैदा कैसे हुआ, वह जो कुछ आपने वहाँ जाकर जाना हो सो बतलाओगे ?

जवाब -- हाँ जरूर ! हम ता. ७ को वैशाख सुदी ६ के दिन केशरियाजी पहुँचे और इस हुल्लड़ की खबर सुनते ही उसकी जाँच करने से मालूम पड़ा कि वैशाख सुदी ३ के दिन (४ मई) ध्वजादंड की क्रिया थी। वह क्रिया ४ घंटे चलनेके

लिये ही मारामारी हुई थी। सॉलीसिटर कहता है "मारामारी तो क्या ,बोलचाल तक भी नहीं हुई" और झवेरी कहता है कि "सचमुच मारामारी हुई थी"। ये दोनों श्वेताम्बर स्वयं जाँचकर रिपोर्ट लिखते हैं।

बाद पूरी होने के बाद श्वेताम्बर भोजन करने के लिये धर्मशाला में गये थे। केवल २ श्वेताम्बर जैन पूजन कार्य में लगे होने से मंदिर में थे और सुनार पुजारी इत्यादी प्रतिमाओं को मुकुट - कुंडल ठीक करने में लगे हुए थे। इससमय दिगम्बर जैन भी वहाँ उपस्थित थे। लगभग १३ प्रतिमाओं पर मुकुट- कुंडल चढ़ाये जाने के बाद दिगम्बर जैनों ने मुकुट- कुंडल चढ़ाने के संबंध में विरोध किया था। जिनकी संख्या उससमय लगभग ४०० थी। इसतरह दिगम्बर विघ्न डाल रहे थे कि एक दिगम्बर जैन ने दो प्रतिमाओं के मुकुट तोड़ डाले और शोर मचा डाला। इसतरह का मंदिर में तूफानी वातावरण देखकर राज्य की पुलिस ने इसतरह हुल्लड़ न मचाने और शान्त रहने की सूचना दी। सूचना मिलने पर भी दिगम्बर हुल्लड मचाते रहे, जिससे पुलिस को अपने बड़े अफसरों को खबर देनी पड़ी, जिससे हाकिम ने तूफान करनेवालों को गिरफ्तार करने का हुक्म दिया। गिरफ्तार करने का ऐसा हुक्म होने पर भी यद्यपि पुलिस ने किसी को पकड़ा न था फिर भी कुछ पुलिसमैनों के बाहर से मंदिर के अंदर आने के कारण भगदड़ पड गई। दिगम्बर टोले में इसतरह भगदड होती देखकर एक दिगम्बर पंडित ने मंदिर के दरवाजे में आड़े हाथ फैलाकर दिगंबरों को बाहर जाते हुए रोका और हाथ से लड़ने के लिये उत्साहित किया। मंदिर के बाहर एक दिगम्बर ने जाकर वह ढोल पीटा था, जो हुल्लड़ होने पर ही इस देश में बजाया जाता है।

८. सवाल -- इस ढोल के बजाने का क्या असर हुआ ?

जवाब -- इस ढोल के बजने से हुल्लड़ होने का समाचार आसपास के प्रदेश में फैल गया और दिगंबर तथा अन्य कौमों के आदमी वहाँ दौड़ आये और बाहर के आदमी मंदिर के अंदर जाने और अंदर के आदमी बाहर आने की कोशिश करने लगे, जिससे दरवाजे में जबर्दस्त धक्का-मुक्की होने लगी।

९. सवाल – दिगम्बरी पंडित का मरण किस कारण से कैसे संयोगों में हुआ ?

जवाब – दिगम्बरी पंडित दरवाजे में खड़े होकर दिगम्बरों को मंदिर के बाहर निकलने से रोक रहा था, इतने में अन्दर के आदमियों ने बाहर जाने और बाहर के आदमियों ने अन्दर आने की कोशिश की, जिससे भारी धक्का – मुक्की हुई। उनके प्रवाह को रोक न सकने के कारण मंदिर के अन्दरवालों की तरफ से धक्का लगने से वह एकदम नीचे पड गया और मन्दिर की सीढ़ियां फिसलनी होने से वह उन पर फिसल पड़ा था। पीछे उसके ऊपर से भारी भीड़ होने से अन्दर के आदमी निकल गये, जिससे श्वास रुक जाने

के कारण वह मर गया।

१०. सवाल – दूसरे कितने आदमी मरे थे ?

जवाब – पंडित के सिवाय दूसरे ३ आदमी भी श्वास रुक जाने से मर गये थे।

११. सवाल – इन आदमियों के घायल होने की उड़ी हुई बात क्या झूठी है ?

जवाब -- बिलकुल झूठी है। इन लाशों की जाँच करने के लिये धुलेव के और खैरवाडा के डॉक्टर भी आये थे।

१२. सवाल – डॉक्टरों ने क्या अभिप्राय दिया था ?

जवाब – उन्होंने इन मरे हुए आदमियों की लाशों पर जूरी (jury) भरी थी और यह अभिप्राय दिया था कि लाशों पर किसी भी प्रकार की चोट का चिह्न[5] नहीं है और खून की बूँद भी नहीं निकली है परन्तु श्वाँस घुट जाने से इन आदमियों की मृत्यु हुई, ऐसा हमारा मत है।

१३.सवाल – इन लाशों पर जब जूरी (jury)भरी गई, उससमय वहाँ दिगम्बर उपस्थित थे क्या ?

जवाब – उससमय दिगंबरों को हाजिर रखा गया था।

१४. सवाल– क्या दिगम्बरों ने जूरी के इस अभिप्राय के विषय में कुछ विरोध किया था ?

जवाब – हाँ

१५.सवाल – किसप्रकार का विरोध किया था ?

जवाब – उनने इसप्रकार का विरोध किया था कि मरनेवालों की लाशों की अंदर की पसली टूट जाने से उनकी मृत्यु हुई है।

१६.सवाल – इस विरोध की शांति के लिये क्या काम किया गया ?

जवाब -- दिगम्बर जैनों के इस विरोध को देखकर डाक्टरों ने लाशों को चीरकर यह बता दिया था कि मरनेवालों की सभी पसलियाँ एवं हड्डियाँ ठीक हैं। इसतरह विरोध को शांत करने के बाद डाक्टरों ने लाशों को मृतकों के सम्बन्धियों को दे दी थीं।

---

5. केवल मरे हुए आदमियों की ही नहीं परन्तु मरे हुए एवं घायलों की डाक्टरी जाँच का परिणाम इस लेख में आगे दिया गया है, जिससे मालूम हो जायेगा कि एक-एक आदमी पर ३६-३६ तक घाव हुए हैं, जिससे मन्दिर और उनका शरीर रक्तारक्त (लहूलुहान) हो गया था। संभव है कि ता. ८ मई को डॉक्टरी जाँच का परिणाम प्रगट करनेवाले श्वेताम्बर सॉलीसिटर तथा जौहरी ने जैसी रिपोर्ट डॉक्टरों द्वारा चाही थी, वैसी अन्त में नहीं मिल सकी।

१७.सवाल -- इस सम्बन्ध में उदयपुर स्टेट की तरफ से कोई स्टेप (Step) लिया गया है क्या ?

जवाब -- हाँ ! इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए उदयपुर स्टेट की तरफ से तुरंत ही एक कमीशन नियत किया गया था और उसने भी जाँच करके रिपोर्ट की है। उसने भी उपरोक्त कारणों से मृतकों के मरण होने का अभिप्राय दिया है, ऐसा मालूम होता है।

१८.सवाल - केशरियाजी में जाने की मनाई होने की खबर सत्य है क्या?

जवाब - नहीं, वहाँ जाने को किसी को भी मनाई नहीं की गई। यह बात सत्य है कि वैशाख सुदी ३ के दिन जिससमय मामला गंभीर तूफानी था; उससमय बाहर के लोगों को मंदिर में दाखिल करने की केवल एक दिन के लिए मनाई की गई थी। इसके बाद तो किसी भी प्रकार की मनाई किसी को नहीं की गई।

१९. सवाल - एक स्त्री के मरण होने की खबर के विषय में क्या कहते हो ?

जवाब-- इस तूफान के परिणाम स्वरुप किसी भी स्त्री का मरण हुआ ही नहीं सच्ची बात तो यह है कि यह मारामारी पुरुषों के बीच में ही हुई थी...। यह भी संभव है कि इसी गाँव की कोई स्त्री इसी अरसे में मर गई हो और उसको तूफान के कारण मर गई - ऐसा मान लिया गया होगा।

२०. सवाल -- केशरियाजी में जाने की मनाई नहीं की गई - इसका कोई उदाहरण दे सकते हो क्या?

जवाब - हां ! इस तूफान के बाद वैशाख सुदी ५ के दिन सेठ पूनमचंद करमचंद कोटावालों की तरफ से ध्वजादण्ड चढ़ाने की क्रिया की गई थी। श्री कोटावाला एक श्वेतांबर पाटण निवासी जैन हैं। मैं भी वहाँ गया था। इससे सिद्ध हो जाता है कि मनाई होने की खबर झूठी है।

२१. सवाल- सेठ पूनमचन्दजी की तरफ से ध्वजादंड चढ़ाने के समय क्या दिगम्बर वहाँ थे।

जवाब- हां! थे।

२२. सवाल - तो इससमय उनने उसे चढाने के अधिकार का विरोध नहीं किया था ?

जवाब - बिलकुल ही नहीं। उनकी उपस्थिति थी परन्तु इस ध्वजारोहण के लिये किसी ने विरोध नहीं किया था।

२३. सवाल - इस मारामारी में लाठी अथवा हथियारों से कोई घायल हुआ

था क्या ?

जवाब – नहीं; कोई भी घायल नहीं हुआ, क्योंकि उसमें तो लाठियों अथवा हथियारों का उपयोग ही नहीं किया गया था।

२४.सवाल -- तो फिर तरह-तरह की खबरें क्यों फैलाई जा रही हैं ?

जवाब - कौम-कौम (सम्प्रदायों) के बीच में विरोध कराने और बढ़ाने के लिये ये कोशिशें हो रही हैं, जो वस्तुतः खेदकारक हैं। मरे हुए दिगंबर जैनों के मरण के लिए मुझे और हमारे श्वेतांबर जैनों को वस्तुतः खेद है, परन्तु इसतरह दोनों कौमों को लड़ाने की कोशिशें हों – यह सर्वथा अनिष्ट है और तरह- तरह की फैलाई हुई इन अफवाहों में कुछ भी सत्य नहीं है।

२५.सवाल – श्वेतांबर जैनों ने क्या इस तूफान में दिगंबरों का सामना किया था?

जवाब – इस अवसर पर श्वेतांबर जैनों की संख्या ही कुल ७५ की थी ,जबकि दिगम्बरों की संख्या ७००-८०० जितनी थी। इसलिये तूफान होने पर श्वेतांबर उनका सामना करने की स्थिति में थे ही नहीं।

बम्बई से गये हुए श्वेतांबर नेताओं का कथन ब्यौरे-वार अक्षरशः ऊपर दिया गया है। मैं नहीं सोचता कि अब इसमें श्वेताबरों को कुछ बढ़ाना-घटाना बाकी रहता हो। यदि वस्तुतः उन्हें कुछ कहना ही होता तो वे ता. १३ से १८ (कि जिस तारीख को मैं यह लेख लिख रहा हूँ) ५ दिन तक चुपचाप न बैठे रहते।

इन रिपोर्टों पर यहाँ टीका-टिप्पणी करना मैं उचित नहीं समझता। जनता को अब दिगम्बर पक्ष का भी कथन सुनने का अवसर मिलना चाहिये। अभी तक दिगम्बरों की तरफ से मात्र दो रिपोर्ट प्रकाशित हुई हैं, (अ) एक तो – उदयपुर से आये हुए दिगंबर की रिपोर्ट और (ब) दूसरी – अजमेर डेप्युटेशन का ता. १४ का तार, जो ता. १६ के 'बम्बई समाचार' में प्रकट हुआ था ; वह है। परन्तु दोनों को उपस्थित करने के पहले केशरियाजी के भूगोल, इतिहास, और व्यवस्था के सम्बन्ध में एक अजैन पुरातत्व शोधक एवं इतिहासज्ञ **रायबहादुर पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा**, जिन्होंनें राजपूताना के समस्त ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थलों में जाकर मूर्तियों, शिलालेखों आदि की स्वयं जाँच करके **'राजपूताने का इतिहास'** नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है और सौभाग्य से आज भी जीवित हैं, उनके इतिहास में से निम्नलिखित विवरण अक्षरशः उद्धृत करता हूँ, जिससे वाचक वर्ग उस स्थान की कल्पना ठीक तरह अपने मन में कर सकें ; क्योंकि (१) **केशरियाजी का मन्दिर है क्या, (२) उसकी महत्ता कितनी और किस प्रकार**

की है, (३)उसकी रचना कैसी है और कब-कब बनाई गई, (४) अजैन जनता का सम्बन्ध इस मंदिर से किसप्रकार हुआ, (५) इसकी मूर्तियों की रचना मूल से ही दिगंबर सम्प्रदायानुसार है अथवा और प्रकार की (६) ध्वजादंड क्रिया एवं मुकुट-कुण्डल क्रिया क्या चीज हैं, तथा इन क्रियाओं का रहस्य क्या है ? (७) फिर इन क्रियाओं के साथ मालिकी के हक्क से क्या संबध हो सकता है, (८) इन क्रियाओं की मंजूरी राज्य से लेने का कारण क्या हो सकता है ? (९) दिगंबर-श्वेतांबरों के बीच में मंदिर की मालिकी संबंधी झगड़ा वस्तुतः कब से और कैसे पड़ा ? (१०) इस झगड़े से उदयपुर राज्य के इतिहास के साथ क्या संबंध है ? (११) उदयपुर राज्य की आधुनिक परिस्थिति क्या है और इस मंदिर के ऊपर उसका कैसा असर पड़ता है ? इत्यादि सब बातें वाचकों के समक्ष उपस्थित किये बिना किसी भी पक्ष की रिपोर्ट सत्य घटना का तादृश्य चित्र खड़ा नहीं कर सकती और ऐसा चित्र खड़ा होने के पहले दोनों पक्षों की रिपोर्ट पर सत्य या असत्य होने की टीका-टिप्पणी करने से कुछ लाभ नहीं होगा। एकबार ऐसा चित्र सांगोपांग खड़ा हो जाय तो कानून, धर्म एवं आधुनिक उच्च-शिक्षण - इन तीनों के मूर्तिमंत प्रतिनिधि स्वरूप भाई मोतीचंद कापड़िया ने मरनेवालों और घायल होनेवालों के ऊपर जो 'Cowards'(नामर्द) होने का आरोप कर अपने विकास एवं उक्त तीनों तत्वों की योग्यता सिद्ध कर दिखाई है, वह आरोप वस्तुतः किसको लागू होना चाहिये, यह भी जनता देख सके। मैं बहुत सोचने पर भी यह नहीं समझ पाता कि अंग्रेजी लेख में **Coward** शब्द का प्रयोग करने पर भी गुजराती भाषान्तर में लिखने की **Cowardice** (नामर्दाई) क्यों कर और कैसे की होगी? यह बहादुर (?) श्वेताम्बर जैन किस प्रकार के आचरण को **Cowardice** (नामर्दाई) बताता है और किस प्रकार के आचरण को 'बहादुरी' समझता है, यह देखने की भी जरूरत है और इस बात की जाँच इनके लेख की टीका करते समय करेंगे

३.पढ़नेवाले विचारकों को एक खास सूचना

यहाँ यह विशेष सूचना करने की खास आवश्यकता है कि पूरा लेख पढ़ते समय यह बात क्षणभर के लिये भी भूल न जाना चाहिये । हाल का मुख्य सवाल और इसी को यदि और भी स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो केवल एक प्रश्न यही है कि दिगम्बर एवं श्वेताम्बरों के बीच में लड़ाई हुई थी या नहीं और यदि हुई थी तो --

१. श्वेतांबरों के द्वारा (भले ही वह नागरिक रूप से हुई हो या अमलदार तरीके से हुई हो) , दिगम्बरों की हत्या एवं चोट पहुँचाई गई है या नहीं ? २. श्वेतांबर लोग यह तो स्वीकार करते हैं कि चार दिगंबर मरे हैं। ३. ये मौतें खुद दिगम्बरों ने की हैं या किसी और ने ? ४. यदि किसी और ने की हैं तो उसने सामान्य नागरिक (प्रजा) की हैसियत से की हैं या शान्ति के रक्षक और प्रजा का वेतनभोगी नौकर तरीके से ? ५. नागरिक श्वेतांबर की अपेक्षा वेतनभोगी श्वेताम्बर दुगुना गुनहगार (दोषी) गिना जाय या नहीं ? ६. और यदि नामदार महाराणा के खास हुक्म की उपेक्षा करके ही राजकुमार को उल्टे मार्ग में प्रेरित कर इस दोष को करने का दोषी यदि श्वेताम्बर अमलदार सिद्ध हो जाये तो उसका यह दोष चौगुना भयंकर हो जाता है या नहीं? ७. यदि ऐसा हो तो तमाम उदयपुर की प्रजा को इस दोष के करनेवाले अमलदार को देशद्रोही तरीके समझना चाहिये या नहीं ? ८ . यदि ऐसा है तो इस राज्य में जैन अथवा अजैन प्रजा सुरक्षित है क्या ?

इत्यादि मुख्य प्रश्न हैं ! मंदिर की मालिकी का प्रश्न गौण है और उस पर यहाँ विचार करने का आशय यही है कि श्वेताम्बर नेताओं ने मारामारी को गौण रूप देकर मंदिर की मालिकी को महत्व दिया है । मुझे तो चारों तरफ की जाँच एवं मनन के बाद पूर्ण विश्वास हुआ है कि यह मंदिर अकेले दिगम्बरों का है, परन्तु फिर भी मैं इस प्रश्न पर भार देना नहीं चाहता, क्योंकि स्थान का मालिक भले ही कोई हो; परन्तु किसी को मार डालने का हक तो कोई भी कानून, कोई भी धर्म या सिरिश्ता (रीति) नहीं देता !

स्वामित्व एवं क्रिया सम्बन्धी हक की जाँच में यदि कहीं दोष भी रह जाय तो इससे खून करने के प्रश्न की गंभीरता को जरा भी बाधा नहीं आ सकती । यह बात स्मरण के लिये भी ध्यान से बाहर न रहे, इसका ख्याल रखना चाहिये । मालिकी और पूजा के हक को सबसे आगे रखना यही श्वेताम्बरों के आन्तरिक भय का एक श्रेष्ठ प्रमाण है ।

४.रायबहादुर पंडित ओझाजी का "राजपूताने का इतिहास"

इसमें पृष्ठ ३४४ से ३४९ तक इस मंदिर का वर्णन इसप्रकार करता है :-

उदयपुर से ३९ मील दक्षिण में खैरवाड़े की सड़क के निकट कोट से घिरे हुए धुलेव नामक कस्बे में ऋषभदेव का प्रसिद्ध जैन मंदिर है। यहाँ की मूर्ति पर केशर बहुत चढ़ाई जाती है, जिससे इनको 'केशरियाजी' या 'केशरियानाथजी' भी कहते हैं। मूर्ति काले पत्थर की होने के कारण भील लोग इनको कालाजी कहते हैं। ऋषभदेव के विष्णु २४ अवतारों में से ८ वें अवतार होने से हिन्दुओं का भी यह पवित्र तीर्थ माना जाता है। भारतवर्ष भर के श्वेताम्बर[6] तथा दिगम्बर जैन एवं मेवाड़, मारवाड़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, ईडर आदि राज्यों के शैव, वैष्णव आदि यहाँ यात्रार्थ आते हैं। भील लोग 'कालाजी' को अपना इष्टदेव मानते हैं और इन लोगों में इनकी भक्ति यहाँ तक है कि **'केशरियानाथ'** पर चढ़े हुए केशर को जल में घोलकर पी लेने पर चाहे जितनी विपत्ति उनको सहन करनी पड़े,झूठ नहीं बोलते।

हिन्दुस्तान भर में यही एक ऐसा मन्दिर है, जहाँ पर दिगम्बर तथा श्वेताम्बर, जैन और वैष्णव,शैव, भील एवं तमाम सच्छूद्र स्नान कर समान रूप से मूर्ति का पूजन करते हैं।
१. प्रथम द्वार से, जिस पर [7]नक्कारखाना बना है, प्रवेश करते ही बाहिरी परिक्रमाका चौक आता है;

---

6 श्वेतांबर तथा दिगम्बर समाज इस तीर्थ को एक सामान्य मंदिर तरीके से नहीं, बल्कि 'अतिशय क्षेत्र'(जहाँ पर देवों द्वारा चमत्कार हुए हों - ऐसा क्षेत्र) मानते हैं; और इसीलिये देश-देशान्तर से हजारों यात्री यहाँ आते रहते हैं। मन्दिर की आमदनी भी बहुत होती है - इसलिये तो 'मालिकी' सिद्ध-करने की भरसक चेष्टा की जा रही है।

7. इस ऐतिहासिक उद्धरण के पैरा नं. २० से मालूम होगा कि यह 'नक्कारखाना' दिगम्बरों द्वारा बनाये गये और दिगम्बरों द्वारा ही कोट इत्यादि से बढ़ाये गये इस मंदिर में श्वेतांबरों द्वारा बनाई हुई सबसे प्रथम वस्तु है और वह संवत् १८८९ (ई.सन १८३२) में जबकि उदयपुर स्टेट के तत्कालीन महाराणा को रुपया कर्ज देकर राज्य को अपने यहाँ गिरवी रखनेवाले जैसलमेर निवासी श्वेतांबर बाफणा ने उदयपुर स्टेट का मुख्य प्रधान और विधाता कर्ताहर्ता (सर्वेसर्वा) बन बैठने के बाद 'राज्य के अधिकारी' की हैसियत से ध्वजादण्ड करने का प्रसंग प्राप्त किया। दिगम्बरी इस मन्दिर के साथ महाराणा को कर्ज देने और राजकीय निकट सम्बन्धों के कारण श्वेतांबरों का इस के साथ सबसे पहला सम्बन्ध संवत् १८८९ (आज से कुल ९५ वर्ष पहले) में हुआ, जिस घटना को बार-बार आगे धरकर मुंबई श्वेतांबर नेता उछल कूद मचा रहे हैं। पहिले श्री झवेरी ने जैसा कहा था (यद्यपि मोतीचन्द गिरधर कापडिया सॉलीसिटर वैसा नहीं कहते) कि दिगम्बरों ने ढोल

२. वहाँ दूसरा द्वार है, जिसके बाहर दोनों ओर काले पत्थर का एक एक हाथी खड़ा हुआ है। ३. उत्तर के हाथी के पास एक **हवनकुण्ड**[8] बना है, जहाँ नवरात्रि के दिनों में दुर्गा का हवन होता है। ४. उक्त द्वार के दोनों ओर के ताके में से एक में ब्रह्मा की और दूसरे में शिव की मूर्ति है, जो बाद में[9] स्थापित की गई हों - ऐसा जान पड़ता है। ५. इस द्वार से दस सीढ़ियाँ चढ़ने पर मन्दिर में पहुँचते हैं और उन सीढ़ियों के मंडप में मध्यम करके हाथी पर बैठी हुई 'मरुदेवी' की मूर्ति है। सीढियों से आगे बाईं ओर श्रीमद् भागवत का

बजाया जो हुल्लड़ होने की सूचना देने के लिये ही इस देश में बजाया जाता है – वही यह ढोल या 'नक्कारखाना' है। दूसरे की संपत्ति को हड़प जाने के इरादे से बनाये हुये इस नक्कारखाने के बनानेवालों को जरूर ही ऐसा भय था कि इस मन्दिर पर मालिकी जमाने में मारामारी ठन जायेगी और दिगम्बरों की संख्या अधिक होने से आसपास के भीलों की मदद लेनी पड़ेगी।

[8] **इस हवनकुण्ड में ब्राह्मण काष्ठ, घृतादिक होमते हैं, परन्तु इन जैनों ने तो आज मनुष्यों को, खुद अपने स्वधर्मी बंधुओं को, मंदिर में विराजमान मूलनायक को यहाँ लाने एवं पूजनेवालों को ही होम दिया ! और सो भी यज्ञ के लिये लाई हुई लकड़ियों से मार मार कर !! इस 'नरमेध' यज्ञ के लिये तो श्री पूनमचन्द करमचन्द कोटावाला अपना आन्तरिक हर्ष एवं खुशाली प्रगट (जाहिर) करते हैं। काठियावाड़ के बोटाद ग्राम में अहिंसा धर्म के पूजक इन श्वेताम्बरों ने बहुत से आदमियों को मार मार कर लहुलुहान कर डाला था – जिससे स्टेट ने उन्हें दंड भी दिया था।** इसीतरह अहमदाबाद के श्वेतांबर जैनों में वीतराग भगवान के समक्ष पढ़ने के स्तोत्र में अपने एक स्वधर्मी सम्प्रदाय को निकृष्ट गालियाँ देने का रिवाज था। हाल ही में पालीताना स्टेट के अन्तर्गत ऋषभदेव तीर्थ पर, जहाँ कि श्वेतांबरों ने राज्य के साथ भारी झगड़ा मचा रखा है और यात्रा का बहिष्कार किया है, वहाँ पर एक श्वेतांबर यात्री के साथ मारपीट की है और मारने वाले पर फरियाद हुई है। शान्ति के बाहरी बहाने के नीचे आक्रमण करना, क्या यही पूजन का गुप्त आशय है ?

[9] ये ब्राह्मण धर्मानुयायी पंडित (श्री ओझाजी) एक इतिहासकार की सच्चाई से यह कहते हैं कि 'ब्रह्मा एवं शिव की मूर्तियाँ बाद में स्थापित की गई हैं। संवत् १८८९ में श्वेताम्बर दीवान ने प्रवेश करके 'नक्कारखाना' बनवाया और ध्वजादण्ड की क्रिया की, उसीसमय से आज तक के ९५ वर्षों में श्वेताम्बरों की संख्या उदयपुर में बढ़ती गई '(यद्यपि धुलेव एवं मंदिर के आसपास के सैकड़ों ग्रामों में तो मात्र दिगम्बरों की ही बस्ती है, जिनकी संख्या २०-२५ हजार के लगभग है। जब यह मंदिर बनाया गया था, उससमय तमाम राज्य में दिगम्बरों की ही बस्ती थी और उन्हीं की दर्शन करने की आवश्यकता पूर्ति के लिये यह भव्य मंदिर का निर्माण किया गया था। कम से कम ६५० वर्षों तक इस मंदिर पर दिगम्बरों की अखण्ड सत्ता चली आने के बाद श्वेताम्बरों का राज्य में प्रभाव बढ़ने से उनने इस मंदिर में प्रवेश किया और केवल ६५ वर्षों के बीच में ही

चबूतरा बना है ।जहाँ पर चातुर्मास में भागवत की कथा बँचती है । यहाँ से ३ सीढियाँ चढ़ने पर एक मंडप आता है, जिसको ९ स्तम्भ होने के कारण 'नौ चौकी' कहते हैं । यहाँ से तीसरे द्वार में प्रवेश किया जाता है । (६) उक्त द्वार के बाहर उत्तर के ताक में शिव की और दक्षिण के ताक में सरस्वती की मूर्ति स्थापित है । इन दोनों के आसनों पर विक्रम संवत्[10] १६७६ के लेख खुदे हैं । (७) तीसरे द्वार में प्रवेश करने पर 'खेला मंडप' (अन्तराल) में पहुँचते हैं।

धीरे–धीरे इनने जहाँ-तहाँ थोड़ी-सी श्वेताम्बर मूर्तियाँ स्थापित कर दीं और भविष्य में इस मंदिर पर अपना पूरा अधिकार जमाने के इरादे को पूर्ण करने के लिये एक भारी चालबाजी यह चली कि श्वेताम्बर मूर्तियों के प्रवेश के साथ-साथ इनने ब्राह्मणों के इष्टदेवों की मूर्तियां भी इसमें घुसा दी, जिससे यदि कभी दिगम्बर श्वेतांबरों के विरुद्ध आवाज करें तो अजैन जनता भी श्वेतांबरों का पक्ष ले ! यदि यह चालबाजी नहीं है तो श्वेतांबरों ने अपने मंदिरों में हिन्दू-मुस्लिम इष्ट देवताओं को स्थान क्यों नहीं दिया, इस प्रश्न का वे क्या उत्तर दे सकते हैं ? सबसे प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट बात तो यह है कि धुलेव के इस मंदिर में मूलनायक की मूर्ति तथा अन्य मूर्तियों में अधिकांश की बनावट निःशंकरूप से दिगम्बर (नग्न) होने की बात को आज भी क्या वे इन्कार कर सकते हैं ? जैन देव को छोड़कर अन्य तमाम देवों को 'कुदेव' कहने वाले और उनके पूजनेवालों को 'मिथ्यात्वी' माननेवाले क्या अपने सिद्धान्तों की मान्यता के अनुसार अपने मंदिर में अन्य देवताओं को मूर्तियों की स्थापित करा सकते हैं ? परन्तु इस मंदिर में तो उनने अन्य जैनेतर मूर्तियों को स्थान दिया -- क्या यह इनके भारी षड्यंत्र को सूचित नहीं करता है ?

10. सामान्य तौर से यह संवत् मेरी उपर्युक्त टिप्पणी का शायद विरोधी जान पड़ेगा परन्तु ऐसा नहीं है । रा.ब. ओझाजी आगे चलकर लिखते हैं कि 'मूलनायक' ऋषभदेव की मूर्ति भी डुंगरपुर के मंदिर में से लाई गई थी । इसतरह जब श्वेतांबरों ने इस मंदिर में प्रवेश करना शुरु किया होगा, तब उनने हिन्दु देवताओं की मूर्तियों को बाहर से लाकर अथवा खास बनवाकर स्थापित कर दी होगी और उनका संवत् भी मनचाहा डाल दिया होगा, क्योंकि पूजा करनेवाले कहीं सन् सवंत् तो वाँचने बैठते ही नहीं हैं और वे प्रायः वाँच सकते भी नहीं हैं । आज १२ लाख संख्यावली तमाम जैन समाज में यदि ३-४ भी शिलालेख पढ़ने वाले निकल आवें तो भी बस है । ५०० वर्ष पहले का स्थापना संवत् डालकर कोई मूर्ति ५० वर्ष पहिले स्थापित की जाय और आज श्री ओझाजी पुरातत्व विषयक खोज करने के लिये निकलें तो उनको तो यही विश्वास करना पड़ेगा कि यह मूर्ति ५०० वर्ष पहले स्थापित की गई थी । ऐतिहासिक क्षेत्र में ऐसे घोटाले होने के बीसों उदाहरण मौजूद हैं । अन्य विषयों की तो बातें जाने दीजिये, शास्त्रों में भी ऐसा घोटाला करने में चालबाज नहीं चूके – जिनकी जालसाजी का भंडा-फोड़ पाश्चात्य साहित्यिकों ने डंके की चोट कियाहै ।

वहाँ से आगे 'जिन मंदिर' (गर्भगृह) में 'ऋषभदेव' की प्रतिमा[11] स्थापित है। (८) गर्भगृह के ऊपर ध्वजादण्ड सहित विशाल शिखर है; और खेलामंडप, नौ चौकी, तथमरुदेवीवाले मंडप पर गुम्बज है। मन्दिर के उत्तरी, पश्चिमी, और दक्षिणी पार्श्व में देवकुलिकाओं की पंक्तियाँ हैं; जिनमें से प्रत्येक के मध्य में से मंडपसहित एक-एक मंदिर बना है। देव कुलिकाओं और मंदिर के बीच 'भीतरी परिक्रमा है।'

(९) इस मंदिर के विषय में यह प्रसिद्धि है कि पहले यहाँ ईंटों का बना हुआ एक जिनालय था, जिसके टूट जाने पर उसके जीर्णोद्धार रूप पाषाण का यह नया मन्दिर बना। यहाँ के शिलालेखों से पाया जाता है कि इस मन्दिर के भिन्न-भिन्न विभाग अलग-अलग समय के बने हुए हैं। खेला मंडप की दीवालों में लगे हुए दो शिलालेखों में से एक विक्रम संवत् १४३१ वैशाख सुदी ३ बुधवार का है, जिसका आशय यह है कि दिगम्बर सम्प्रदाय के काष्ठा संघ के भट्टारक श्री धर्मकीर्ति के उपदेश से साह (सेठ) बीजा ->

11 भारत की केवल प्राचीन शिल्पकला ही नहीं, परन्तु संगीत एवं व्याकरण, गणित सरीखे विषय भी अध्यात्म की नींव पर ही खड़े किये गये हैं -- यह बात संदेह रहित है। भारतीय संस्कृति (Culture) एक ही स्तम्भ पर खड़े किये गये एक महल के समान है। इस मंदिर की रचना भी अध्यात्म की नींव पर ही की गई है। तीन लोक (तीन भुवन) और तीन भाव (जागृत, स्वप्न और सुशुप्ति) पार करने के बाद ही प्रभुता सन्मुख होती है, यह अनुभव (ज्ञान) करने के लिये ही तीन द्वार और तीन परिक्रमा रखने का विधान किया गया है। स्थूल भाव, सूक्ष्म भाव और कारण भाव को पार कर जाने के बाद ही स्वाभाविक एवं आनन्दरूप अस्तित्व अनुभव होता है और यही 'प्रभु-प्रतिमा' का संकेत है।"प्रभु-प्रतिमा" जहाँ विराजमान है, उस स्थान को 'जिन मंदिर' कहने में भी यह भव्य--संकेत छिपा हुआ है कि जब आत्मा अपने 'निज' स्वरूप में आता है, तभी 'प्रभुत्व' की प्राप्ति होती है। मूलनायक भगवान की जो मूर्ति है, वह चमकते हुए काले पत्थर की है, इसमें भी-- वेदानुयायियों ने भगवान् के अवतार कृष्ण को जिस कारण से 'काला' माना है-- वही कारण अन्तर्हित है। अर्थात् समस्त रंगों को खाने (छिपाने) वाला और समस्त भावों को अदृश्य करनेवाला यही एक रंग है और इसीलिये यह रंग गुणातीत होने का एक चिह्न है। भगवान् की मूर्ति को श्यामवर्णी रखने में भी उनके गुणातीतपने एवं अलौकिकता को सूचित करना ही एकमात्र आशय है। 'नौ चौकी' को पार करके देवाधिदेव का दर्शन होता है और ये 'नौ चौकी' ही जैनियों के 'नव तत्व' और योगियों के 'नव नाथ' और महान विचारक नित्से का नौ कुमारिकाओं का नाच (See page 126.' **Thus spoke , Zarathustra:--"As soon as the Maidens recognised Zarathustra, they ceased dancing. And I say. Since then they are transformed into 'स्तंभ' Steady pillars only in the eye of the knowing one; for all others, they are eternally playing and hence is the place called. 'खेलामंडप' --V.M. Shah.**

के बेटे हरदान ने इस जिनालय का प्रथम जीर्णोद्धार करवाया। (१०) इसी मंडप में लगे हुए विक्रम संवत् १५७२ वैशाख सुदी ५ के शिलालेख से ज्ञात होता है कि काष्ठसंघ के अनुयायी काछलू गोत्र के कडिया पोइयां और उसकी स्त्री 'भरमी' के पुत्र 'हांसा' ने धुलेव गाँव में श्री ऋषभदेव को प्रणाम कर भट्टारक श्री जसकीर्ति (यशकीर्ति) के समय 'मंडप' तथा 'नौ चौकी' बनवाई। (११) इन दोनों शिलालेखों से ज्ञात होता है कि 'गर्भगृह' (जिन मन्दिर) तथा उसका आगे का 'खेलामंडप' विक्रम संवत् १४३१ में ('आज से ५५० वर्ष पहिले) और' नौ चौकी' तथा एक और 'मंडप' १५७२ (ईस्वी सन् १५१५) (आज से ४५० वर्ष पहले) में बने, ये सब महत्वपूर्ण भाग अकेले दिगम्बरों ने ही बनाये थे। (१२) देवकुलिकाएँ बाद में बनी हैं, क्योंकि दक्षिण की देवकुलियों की पंक्ति के मध्य में मंडप सहित जो जैन मंदिर [१२] है, उसके द्वार के समीप दीवाल में लगे हुए शिलालेख से स्पष्ट है कि दिगम्बर काष्ठासंघ के नंदीतट अच्छे और विद्यागण के भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति के समय में बघेरवाल जाति के गोवाल गोत्री संघवी (संघपति) आल्हा के पुत्र भोज के कुटुम्बियों ने यह मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठा महोत्सव किया। [१३]

(१३) इस मंदिर से आगे की देवकुलिका की दीवाल में भी एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसका आशय यह है कि संवत १७५४ पौष वदी ५ को दिगम्बर काष्ठसंघ के नंदी तट गच्छ और विद्यागण के भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति के उपदेश से हूमड जाति के वृद्ध शाखावाले विश्वेश्वर गोत्री साह आल्हा के वंशज सेठ भूपत के वंशवालों ने यह लघुप्रासाद बनवाया।

(१४) इन चारों शिलालेखों से ज्ञात होता है कि ऋषभदेव के मन्दिर तथा देवकुलियों का अधिकाँश दिगम्बर काष्ठासंघ के भट्टारकों के उपदेश से उनके दिगम्बरी अनुयायियों

---

12 ध्वजादंड क्रिया का महत्व समझने के लिये यह बात ध्यान में रखनी चाहिये की जहाँ मूलनायक हो उसी जगह के ऊपर ही शिखर होता है और वहीं ध्वजादंड होता है। यह ध्वजादंड ही इस मूल नायक की प्रतिमा का चिह्न है। इस मंदिर में मूलनायक तरीके दिगम्बरमूर्ति है यह बात तो दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं तो इससे यह भी सिद्ध होता है कि इस दिगम्बर मूर्ति को दिगम्बरों ने ही स्थापित किया था और इसके शिखर पर दिगम्बर ही ध्वजादंड चढ़ाते थे।

आज से केवल ९५ वर्ष पहिले केवल पहली बार और सो भी महाराणा की तरफ से उनके नौकर की हैसियत से एक श्वेताम्बर के हाथ से ध्वजादंड चढ़ाया गया था, इससे कोई मन्दिर श्वेताम्बरों का सिद्ध नहीं हो जाता।

13 यह शिलालेख प्राचीन इतिहास के लिये बड़े काम का है। (ओझा)

ने बनवाया था, शेष सब देवकुलिकाएं किसने बनवाई, इसका कुछ लेख नहीं मिला।[14]

(१५) (मूलनायक) श्री ऋषभदेव की वर्तमान मूर्ति बहुत प्राचीन होने से उसमें कई जगह खड्डे पड़ गये हैं, जिससे उनमें कुछ पदार्थ भरकर उनको ऐसे बना दिये हैं कि वे मालूम नहीं होते। यह प्रतिमा डूंगरपुर राज्य की प्राचीन राजधानी 'बड़ौदे' (वटपद्रक) के जिन मन्दिर से लाकर यहाँ पधराई गई है। बड़ौदे का पुराना मंदिर गिर गया है और उसके पत्थर वहाँ वटवृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर चुने हुए हैं।

(१६) ऋषभदेव की प्रतिमा बड़ी भव्य और तेजस्वी है। इसके साथ के विशाल परिकर में इन्द्रादि देवता बने हैं और दोनों पार्श्व पर दो नग्न काउसग्गियां (कायोत्सर्ग स्थितिवाले पुरुष) ध्यानस्थ खड़े हुए हैं।[15]

---

[14] मतलब यह है कि केवल देवकुलिकाओं को किसने बनाया ,इस विषय में ही अनिश्चितता है और वह भी देवकुलिकाओं में से बहुत थोड़ी-सी देवकुलिकाओं के लिये ही है। सो भी जिस तीर्थंकर के नाम से मंदिर बनवाया गया है, उस तीर्थंकर के साथ इनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह अनिश्चितता कोई मंदिर के विषय में नहीं है, बल्कि एक भाग में विराजित कुछ मूर्तियों के विषय में है, जिनपर कुछ भी लेख न होने से निश्चय करने का कोई साधन ही नहीं है। आगे चलकर ओझाजी लिखते हैं कि बहुत से लेखों पर चूना लगा होने से वे पढ़े नहीं जाते और कुछ म ूर्तियों पर तो कोई कैसा भी लेख नहीं।

[15] जैसा पहले लिखा जा चुका है कि मूलनायक की प्रतिमा काले पत्थर की है। इस मूर्ति के लिये ही यह मंदिर है। यह मंदिर आज से ५५० वर्ष पहिले सं. १४३१ में दिगम्बर सम्प्रदायानुयायी श्रावक ने बनवाया था और वह भी उसी स्थान पर टूटे हुए मंदिर के जीर्णोद्धार तरीके अर्थात ५५० वर्षों से भी ज्यादा पुरानी यह मूर्ति की प्राचीनता ६५० वर्षों से ज्यादा ही सिद्ध होती है, क्योंकि यह मूर्ति डूंगरपुर के मंदिर में सेयहाँ लाई गई थी, जहां वह कम से कम १०० वर्ष तो जरूर ही रही होगी। सारांश यह है कि इस मूर्ति की प्राचीनता कमसे कम ७५० वर्ष जरुर ही है। फिर भी इसपर कोई किसी भी प्रकार का लेख अथवा संवत् लिखा हुआ नहीं है। सौभाग्य से मूर्ति की बनावट में चक्षु और लंगोट का अभाव ही उसे दिगम्बर आम्नाय की स्वयं-सिद्ध करता है। नहीं तो लेख एवं तारीख (संवत्) के अभावों में श्वेतांबर लोग इस मूर्ति को श्वेतांबरों द्वारा स्थापित कह सकते और एक झूठा प्रमाण खड़ा करके – यह मूर्ति इस मंदिर में है, इसलिये यह मंदिर भी श्वेताम्बरों का बनवाया हुआ है – ऐसा दावा करते। मूर्ति के आसन के नीचे ही संवत् आदि लिखने का रिवाज अथवा इच्छा एक समय न होने के परिणाम में एक घटना का कितना दुरुपयोग होना सम्भव है -- यह भी इस पर से विचारणीय है। मंदिर में किसी भी जगह इच्छानुसार संवत् एवं नाम खुदाकरधातु या पत्थर की

(१७) ऋषभदेव की मूर्ति के चरणों के नीचे छोटी–छोटी नौ मूर्तियाँ हैं, जिनको लोग 'नवनाथ' या 'नवग्रह' बतलाते हैं। नवग्रहों के नीचे १६ सपने (स्वप्न) थफ खुदे हुए हैं, जिनके नीचे के भाग में हाथी, सिंह, देवी आदि की मूर्तियाँ और उनके नीचे दो बैलों के बीच में देवी की एक मूर्ति [17] बनी हुई है।

मूर्ति को स्थापित कर देना – यह तो बच्चे भी कर सकते हैं। कुछ भी गड़बड़ होती रहे, परन्तु मूर्ति की बनावट में फेरफार कर देना शक्य नहीं है और दिगम्बर आम्नाय की मूर्ति श्वेतांबर आम्नाय की मूर्ति से स्पष्ट जुदी प्रकार की होती है। जिसतरह दोनों आम्नायों के नामों में भी असामान्य विषमता है, उसीतरह उनके आशय के स्थूल चिह्नरूप मूर्ति की बनावट में भिन्नता है। दिगम्बर भावना एवं मूर्ति नग्न है और श्वेतांबरों की भावना एवं मूर्ति को नग्नता असह्य है। यही कारण है कि दिगम्बर मूर्ति के माथे पर मुकुट और कानों में कुण्डल अथवा कोई किसी भी प्रकार के श्रृंगार या आभूषण नहीं होते, और तो क्या गुह्य स्थानों पर लँगोट तक का चिह्न नहीं होता तो और वस्त्रों की तो बात क्या? श्वेतांबर मूर्ति की बनावट में लँगोट खुदा हुआ होता है। कान में कुण्डल और सिर पर मुकुट चढाये जाते हैं। दिगम्बर भावना में स्थूल सृष्टि की तरफ उपेक्षा भाव झलकता है, इसलिये उनकी मूर्ति में स्थुल चक्षु नहीं चढ़ाये जाते। श्वेतांबर मूर्ति में चक्षु लगाने के लिये आँख के चारों तरफ गड्ढा रखा जाता है और चक्षु (आँख) की जगह एक चमकीला काँच जड़ा जाता है। दोनों आम्नायों की भावना में भिन्नता होने से उनकी मूर्ति की बनावट में भी स्वभावतः भिन्नता होती है। केशरियाजी के मूलनायक की प्रतिमा आज ६५० वर्षों के बाद भी (और ता. ४-६ मई को फौज की जबर्दस्ती मुकुट-कुण्डल पहिना देने पर भी) लँगोट एवं चक्षु रहित ही है - यह सत्यता तो इनके पीरों द्वारा भी छिपाई नहीं जा सकती।

[16] इन स्वप्नों के विषय में फुटनोट लिखते हुए श्री ओझाजी सूचित करते हैं कि तीर्थंकर की माताएँ महापुरुष के गर्भ में आने के पहिले हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, सूर्य, चन्द्र आदि १६ स्वप्न देखती हैं, जो किसी महापुरुष (तीर्थंकर) के जन्म होने की सूचना देते हैं। ये स्वप्न जैनों में बहुत पवित्र समझे जाते हैं। दिगम्बर स्वप्नों की संख्या १६ मानते हैं और श्वेतांबर कुल १४ ही मानते हैं। श्वेतांबरों के आबू-देलवाडा के मंदिर द्वार में १४ स्वप्न खुदे हुए हैं। और १६ स्वप्नों की १६ मूर्तियाँ भी हैं। १६ और १४ का भेद भी इस मंदिर को दिगम्बरियों का ही सिद्ध करता है।

[17] मूर्ति ऋषभदेव की है, उनके आसन के नीचे के पट्ट में दो बैलों के बीच में देवी को अंकित करने का आशय यह है कि 'अस्ति' और 'नास्ति' नामक दो प्रबल बाह्य भावों केबीच में रहनेवाली और इन भावों को अस्तित्व तथा बल देनेवाली मध्यवर्ती चेतना शक्ति –यही तो महापुरुष (**Superman**) का आसन है।

(१८) जिन मंदिर की बाहरी पार्श्व के उत्तर और दक्षिण के ताकों तथा देवकुलिकाओं के पृष्ठ भाग में भी नग्न मूर्तियाँ[18] विद्यमान हैं।

(१९) (इस मंदिर की हद बनाने के विषय में) इस मन्दिर के चारों तरफ एक पक्का कोट मूलसंघ के बलात्कार गणवाले कमलेश्वर गोत्री गाँधी विजयचन्दने विक्रम संवत् १८६३ (ईस्वी सन १८०६ में आज से कुल १२१ वर्ष पहिले) में बनवाया।

मन्दिर के तमाम भाग और अन्त में कोट भी बँध जाने के पीछे श्वेतांबरों का प्रवेश कब और कैसे हुआ?

(२०) विक्रम संवत् १८८९ (ईस्वी सन् १८३३ आज से कुल ९५ वर्ष पहले, किन्तु मंदिर निर्माण के ५५० वर्षों और कोट बनने के २६ वर्षों बाद) में जैसलमेर निवासी (उससमय उदयपुर में रहनेवाले) ओसवाल जाति के बाफना गोत्री सेठ गुमानचन्दजी के पुत्र बहादुरमल के कुटुम्बियों ने प्रथम द्वार पर का 'नक्कार खाना' बनवाकर वर्तमान ध्वजादंड चढ़ाया।[19]

(२१) इस मंदिर के 'खेला मंडप' में तीर्थंकरों की २२ और देवकुलिकाओं में ५४ मूर्तियाँ विराजमान हैं। देवकुलिकाओं में से एक में अनुमान ६ फुट ठोस पत्थर का एक मंदिर- सा बना हुआ है, जिस पर तीर्थंकरों की बहुत-सी छोटी-छोटी मूर्तियाँ खुदी हैं; इसको लोग 'गिरनारजी का बिम्ब' कहते हैं।

---

[18] यदि मंदिर श्वेताम्बरों का होता तो इन नग्न मूर्तियों को वे क्यों अंकित करते। इन मूर्तियों की नग्नता ही मंदिर को दिगम्बरियों का होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

[19] यहाँ से ही श्वेतांबरों का सच्चा – झूठा, कम या ज्यादा इस मंदिर के साथ सम्बन्ध शुरू हुआ अर्थात् आज से केवल ९५ वर्ष पहले और मन्दिर बनने के ५५० वर्ष बाद तथा परकोटा बनने के भी २५ वर्ष बाद शुरू हुआ। इसमें शंका को स्थान नहीं है। यह सम्बन्ध भी किसतरह हुआ, वह भी जरा विचारिये। मंदिर में प्रवेश करने के द्वार पर (मंदिर बीच में नहीं) नक्कारखाना बनाया गया है कि जिसकी प्रारम्भ से ५५० वर्षों तक कोई कैसी भी जरूरत नहीं पड़ी थी। मुंबई निवासी श्वेतांबर झवेरी हाल में कह निकले हैं कि 'यह तो उस देश का रिवाज है कि जब कभी उपद्रव हो, तब-तब ढोल बजाया जाता है, जिससे जनता मदद को आ जाये। मंदिर के बनानेवाले दिगम्बरों को उपद्रव हो जाने का भय न था, इसलिए उनने मंदिर में नक्कारखाना बनाने की कोई जरूरत नहीं देखी। नक्कारखाने की जरूरत तो श्वेतांबर बाफणा को ही मालूम पड़ी – यह तो ऐतिहासिक बात है नक्कारखाना रखने का आशय लड़ाई हो जाने के बाद भी एक श्वेतांबर नेता द्वारा इसप्रकार प्रगट किया जाता है तो क्या इससे यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि अन्त में मालिक बन जाने के दाँव-पेंच खेलने का पहले ही से निश्चय कर लेते हैं और ऐसे

उपर्युक्त ७६ मूर्तियों में से १४ पर लेख नहीं हैं। लेखवाली मूर्तियों में से ३८ दिगम्बर सम्प्रदाय की और ११ श्वेतांबरों की हैं। शेष पर लेख अस्पष्ट होने या चूना लग जाने के कारण उनका ठीक-ठाक निश्चय नहीं हो सका। लेखवाली मूर्तियाँ विक्रम संवत १६११ से १८६३ तक की हैं और उनपर खुदे हुए लेख जैनों के इतिहास के लिये बड़े उपयोगी हैं।[20]

(२२) 'नौ चौकी' के मंडप के दक्षिणी किनारे पर पाषाण का एक छोटा-सा स्तंभ खड़ा है, जिसके चारों तरफ तथा ऊपर-नीचे छोटे-बड़े दस ताक खुदे हुए हैं। मुसलमान लोग इस स्तंभ को मस्जिद का चिह्न मानते हैं और नीचे की परिक्रमा में खडे रहकर वे लोबान जलाते ,शीरनी (मिठाई) चढ़ाते और धोक देते हैं।

निश्चयवालों को उपद्रव का भय तो सदैव ही लगा रहता है और उसी भय के कारण से इस मंदिर में भी यह नक्कारखाना बनवाया गया हो - ऐसा मालूम होता है। इस तर्क को इस बात से और भी ज्यादा पुष्टि मिलती है कि नक्कारखाने को दाखिल करते समय ही मंदिर पर इसी श्वेतांबर ने ध्वजादंड चढ़ाया। नक्कारखाना बनवाना,पुराने ध्वजादंड के स्थान पर नया ध्वजादंड चढ़ाना और इसके ऊपर से एक शिलालेख खोदकर लगा देना तथा उससे ९० वर्ष बाद (अर्थात् आज से केवल ५ वर्ष पहले) मंदिर पर अपनी मालिकी का हक्क होने का दावा खड़ा करना इत्यादि बाते क्या रहस्यमय षडयंत्र को सूचित नहीं करती ?

परन्तु 'इस श्वेतांबर (बाफणा) ने ध्वजादण्ड चढ़ाया' – इसमें भी एक रहस्य छिपा हुआ है, जिसको उदयपुर से आये हुए दिगम्बर की उलट-पलट जाँच में आगे प्रगट किया जायेगा, जिससे यह बात बिलकुल स्पष्ट रूप से समझ में आ जायेगी कि बाफणा श्वेतांबर ने ९५ वर्ष पहले ध्वजादण्ड चढ़ाया था , **वह एक श्वेतांबर की हैसियत से नहीं, परन्तु राज्य के दीवान तरीके,** सो भी एक दिगम्बर भट्टारक के हाथ से चढ़ाया था। ९५ वर्ष पहले तो श्वेतांबरों का मंदिर में प्रवेश होना शुरू हुआ और यदि प्रारम्भ में ही मूर्तियों में फेरफार करने की हिम्मत की जायेगी तो हुल्लड़ (उपद्रव) हो जायेगा , **इस भय से उससमय तो मुकुट-कुण्डल चढ़ाने की हिम्मत स्वयं दीवान और स्टेट का लेनदार होने पर भी बाफणा कर नहीं सका था। बाद में वह हिम्मत गत ता. ४ मई को लश्कर (फौज) की मदद से की जा सकी और उसीसमय मुकुट-कुण्डल सबसे पहली बार मूर्ति पर चढ़ाये जा सके। इसी से सिद्ध होता है कि मंदिर को हजम कर जाने का षडयंत्र श्वेतांबरों की तरफसे बहुत वर्ष पहिले से युक्तिपूर्वक कियाजा रहा था।**

[20] **मूलनायक की मूर्ति पर तो कोई कैसा भी लेख ही नहीं है तो भी दोनों पक्ष यह तो स्वीकार करते ही है कि यह मूर्ति दिगम्बर आम्नाय की है** । उसीतरह 'खेला मंडप' और देवकुलिकाओं में विराजमान ७६ मूर्तियों में से १४ पर लेख नहीं है; १३ पर लेख चूना लगा होने से बाँचा नहीं जाता । वे बहुत प्राचीनकाल की होनी चाहिये और इसलिये मूलनायक के समान

(२३) उदयपुर राज्य के अधिकार मे जो विष्णु मंदिर हैं, उनके समान यहाँ भी विष्णु के जन्माष्टमी, जलझूलनी आदि त्यौहार मंदिर की तरफ से मनाये जाते हैं। चौमासे में इस मन्दिर में श्रीमद् भागवत की कथा होती है, जिसकी भेंट के निमित्त राज्य की तरफ से ताम्रपत्र कर दिया गया है और ऋषभनाथजी के भोग के लिए एक गाँव भी भेंट हुआ था। [21]

(२४) मन्दिर के प्रथम द्वार के पास खड़े हुए महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) के शिलालेख में बेगार की मनाई करने, ऋषभदेव की रसोई का काम नाथजी के सुपुर्द करने तथा उस सम्बन्ध का ताम्रपत्र अरबेहजी नाथजी (भंडारी) के पास होने का उल्लेख है। पहले अन्य विष्णु मंदिरों के समान यहाँ भोग भी लगता था और भोग तैयार होने के स्थान को

दिगम्बर आम्नाय की ही होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त ३८ मूर्तियों के लेख पर से वे दिगम्बराम्नायी सिद्ध होती हैं। सारांश यह है कि ७६ मूर्तियों में से ६५ तो दिगम्बर आम्नाय की हैं और शेष ११ श्वेताम्बर आम्नाय की हैं। श्रीयुत ओझाजी लिखते हैं कि लेखवाली मूर्तियाँ विक्रम संवत १६११ से १८६३ तक की हैं, इससे पुरानी नहीं। इससे केवल एक ही अनुमान होना शक्य है कि विक्रम संवत् १८८९ में बाफणा नामक श्वेताम्बर गृहस्थ राज्य का दीवान और लेनदार हुआ, उसके बाद के अरसे में वैष्णवादि मूर्तियों के साथ में श्वेतांबर ११ मूर्तियाँ भी किसी दूसरे मंदिर से लाकर इस मंदिर में घुसा दी गईं और उससमय "यह मंदिर सब धर्मों के लिये खुला है"-ऐसा भाव प्रकट किया गया। अजैन राजा एवं अजैन जनता को यह भाव 'उदार' मालूम पड़ा और इसीलिए उससमय के दिगम्बर लोग श्वेतांबरों एवं अजैन जनता के संयुक्त बल के विरुद्ध खड़े न हो सके-- यह भी प्रत्यक्ष दिखलाई दे जाता है। दूसरी बात यह भी सिद्ध हो जाती है कि तत्कालीन दिगम्बर समाज में बिलकुल भी बल न था। यदि होता तो मंदिर की व्यवस्था दिगम्बर पंचों के बदले राज्य के हाथ में न चली जाती -- इस निर्बलता का इकरार दिगम्बर डायरेक्टरी में भी है।

[21] पेरा नं. २२-२३ भी उपरोक्त पेरा नं. २१ की मेरी टीका को सत्य सिद्ध करते हैं। अपना प्रवेश करने के लिए अंत में उन्हें मुसलमानों तक का प्रवेश मंदिर में कराना पड़ा और दोनों सम्प्रदायों के जैन शास्त्र में जिसको 'तीव्र मिथ्यात्व' कहते हैं, वही कार्य जैन मन्दिर में हमेशा के लिए घुसाया गया। क्या वैष्णव, मुसलमान या ईसाई धर्मस्थान में जैनमूर्ति देखी जाती है ? क्या उनमें जैन पूजन-विधि से पूजा की जा सकती है ? दूसरे के मन्दिरों में जाने के इच्छुक को उनके ही देवता का छत्रभंग - एक मस्तक परंतु पाँच सिरवाली मूर्ति उन्ही की रीति से पूजन (या वंदना) करना पड़ता है या किसी दूसरी तरह से ? यज्ञ का निषेध करनेवाले, भोग को महापाप समझनेवाले जैनों के मन्दिर में ये दोनों ही क्रियाएँ खुले तौर पर हों, इसका मतलब क्या ? जब अयोग्य लाभ लेना होता है, तभी दूसरे सबको प्रसन्न करना पड़ता है, अन्यथा बिल्कुल नहीं। मुर्शिदाबाद के श्वेताम्बर जैनों ने अंग्रेजों के हाथों में भारत का राज्य इसीतरहतो दिला डाला।

'रसोड़ा' कहते थे। अब तो इस मंदिर में पहले की तरह भोग नहीं लगता और भोग के स्थान में, भंडार की तरफ से होनेवाले स्तोत्र-पूजन में फल और सूखे मेवे आदि के साथ कुछ मिठाई रख दी जाती है।

छत्रभंग- एक सिर वाली एक मूर्ति

(२५) महाराणा साहब इस मंदिर में द्वितीय द्वार से नहीं, किन्तु बाहिरी परिक्रमा के पिछले भाग में बने हुए एक छोटे से द्वार से प्रवेश करते हैं, क्योंकि दूसरे द्वार के ऊपर की छत में **पाँच शरीर और एक सिर वाली एक मूर्ति**[22] खुदी हुई है, जिसको लोग 'छत्रभंग' कहते हैं। इसी मूर्ति के कारण महाराणा साहब इसके नीचे होकर दूसरे द्वार से मंदिर में प्रवेश नहीं करते।

---

[22] **छत्रभंग में छुपा हुआ भविष्य कथन अथवा होशियार रहने की सूचनाः-**

६००० वर्ष पहले भारत में ऐसे अनेक शुद्ध चारित्रवाले गुप्तदृष्टा पड़े हुए थे, जो भविष्य की सब बात जान सकते थे और अन्तरंग में जरा-सा विचार करने से ही वे आकाश और पृथ्वी पर की घटनाओं का ज्ञान कर सकते थे। जब कोई घटना समस्त जनता के लिये भंयकर सिद्ध होती थी या होनेवाली होती थी, तभी वे एक या दूसरे प्रकार से इशारा मात्र करते थे। केशरियाजी के मंदिर का जब मध्यभाग बन रहा होगा, तब ऐसा ही किसी भविष्यदृष्टा आचार्य ने शिल्पी को अमुक प्रकार की मूर्ति छत में अंकित करने के लिए कहा होगा और इस मूर्ति की विचित्रता पर से कभी कोई होशियार राजा या प्रवीण प्रधानमन्त्री इसका अन्तरंग रहस्य समझाने का प्रयास करेगा - ऐसी आशा बाँधी होगी।

एक शरीर पर अनेक मस्तक की कल्पना को मूर्ति में प्रगट करने के दृष्टांत तो हिन्दूधर्म में विद्यमान हैं, परन्तु एक ही सिर के नीचे अनेक धड़ होने की कल्पना किसी भी धर्म में न होने से इस मूर्ति को देखकर तो कोई भी विचारवान पुरुष कौतूहल किये बिना रह नहीं सकता। राजा में तो शौर्य एवं टेक (वचन निवाहना) - ये गुण होने की आशा रखी जा सकती है, परन्तु प्रधानमन्त्री में तो बुद्धि-वैभव होना ही एक मुख्य गुण है और यदि ऐसे बुद्धिशाली प्रधानमंत्री उदयपुर महाराणा को मिले होते तो इस राज्य की अन्तःस्थिति आज जैसी कभी नही होती। महाराणा को स्वाभाविक रीति से यह मूर्ति भय पैदा कर रही है और यह इसी बात से भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि आप नामदार इस मूर्ति के नीचे से कभी भी नहीं निकलते। परन्तु यह भय - जो कि (Sub-concious Phenomena) है, उसका कारण शोधने की योग्यतावाला प्रधानमंत्री या दीवान महाराणा को कभी नहीं मिला। मुझे विश्वास है कि यदि महाराणा महोदय अब भी मूर्ति का रहस्य समझें तो वे अपने तमाम राज्य पर आनेवाले भय को जरूर ही नष्ट कर सकते हैं। मैं दृढ़तापूर्वक ऐसा मानता हूँ कि भारत भर में सबसे जयादा प्रतापी इस राज्य में एक छत्र होने पर भी जब ५ सत्तायें काम करने लगेंगी,

(२६) मंदिर का सारा काम पहिले भंडारियों के अधिकार में था और इसकी सारी आमदनी उनकी इच्छानुसार खर्च की जाती थी, परन्तु पीछे से राज्य ने मंदिर की आय में से कुछ हिस्सा उनके लिए नियम करके बाकी के रुपयों की व्यवस्था करने के लिए एक जैन कमेटी बना दी है और देवस्थान के हाकिम का एक नायब मंदिर के प्रबंध के लिए वहाँ रहता है।[23]

तभी छत्रभंग हो जायेगा और राज्य का अन्त हो जायेगा - इसी गुप्त रहस्य को प्रगट करने के लिए यह मूर्ति लगाई गई है और जिससमय की यह मूर्ति सूचना देती है वही समय आज आ उपस्थित हुआ है। किस-तरह से? (१) राज्य को कर्ज देने के बहाने से श्वेतांबर सत्ता घुसाकर राज्य सत्ता को दो भागों में विभक्त कर दिया गया (२) बाद में महाराज कुमार के पक्ष में रहकर उनको महाराणा की आज्ञा का भंग करने की शिक्षा दी गई, जिससे ब्रिटिश सरकार को दखलगिरी करनी पड़ी, (३) ब्रिटिश सरकार ने महाराणा की मौजूदगी होने पर भी राजकुमार को कुछ सत्तायें सौंप दीं सारांश यह है कि आज ब्यूरोक्रेसी (Buero-cracy), राजकुमार और जैन – ये सब मिलकर क्षत्रियकुल के एक मात्र इस दीपक को बुझाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। आज महाराणा, महाराजकुमार, ब्यूरोक्रेसी और श्वेतांबर ब्यूरोक्रेसी और श्वेतांबरों के प्रभाव में आये हुए अन्य अफसर लोग - ये पाँच सत्तायें उदयपुर राज्य में काम कर रहीं हैं। ये ५ शरीर हैं और महाराणा साहब सिर के स्थान पर हैं। महाराजकुमार, ब्यूरोक्रेसी और श्वेतांबर ब्यूरोक्रेसी इस राज्य में किसतरह अपना काम कर रही हैं– इसका एक ताजा नमूना तो यही है कि आज से लगभग ३-३।। माह पहले बिना हुक्म लिये ही इस मंदिर की १३ मूर्तियों को श्वेतांबरों ने मुकुट-कुण्डल पहिना दिये थे, जिनको महाराणा ने फौरन उतरवा दिये थे, तथा ध्वजादण्ड किसी भी पक्ष को न चढ़ाने देने का खास फरमान देवस्थान हाकिम को करने पर भी राजकुमार एवं श्वेतांबर हाकिम ने फौज के बल से उक्त दोनों आज्ञाओं को भंग कर डाला। क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि छत्र की आज्ञाओं का भंग उसके शरीरों द्वारा ही होने लगा? जैन मंदिर का भले ही कुछ हो जाए, परन्तु ऐसी परिस्थिति में भारत का यह अन्तिम दीपक बुझने न पावे -- इस प्रार्थना में तो प्रत्येक भारतवासी अन्तःकरण् पूर्वक भाग लेगा।

[23] राज्य के अन्तर्गत समस्त पवित्र स्थलों की रक्षा के लिए 'देवस्थान हाकिम' नामक एक स्वतंत्र अमलदार नियत किया गया है। उसके नीचे कई नायब हाकिम भी हैं, जिनमें से एक को केशरियाजी के कुल प्रबंध के लिये वहीं रखा जाता है। यदि मन्दिर श्वेतांबरों का होता तो कभी भी ऐसा नहीं हो सकता था, क्योंकि बाफणा प्रधानमंत्रित्व, तथा आज राज्य के तमाम बड़े पदों पर श्वेतांबरों का होना दोनों – बातों को ध्यान में लेते हुए यह बात फौरन ही समझ में आ जाती है कि श्वेतांबरों की मालिकी के इस मन्दिर में राज्य की इतनी विशेष सत्ता होना कभी संभव हीं नहीं है। एक बात और है कि तीर्थ की आमदनी की व्यवस्था केलिए राज्य द्वारा एक कमेटी नियत की जाय - ये भी कभी हो नहीं सकता था। इससे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि सत्ता एवं

(२७) मंदिर एवं जैन धनाढ्यों की तरफ से कई एक धर्मशालायें भी बन गई हैं, जिससे यात्रियों को धुलेव में ठहरने का बड़ा सुभीता रहता है। उदयपुर से ऋषभदेव तक का सारा मार्ग बहुधा भीलों ही की बस्तीवाले पहाड़ी प्रदेश में होकर निकलता है परन्तु वहाँ पक्की सड़क बनी हुई है और वर्तमान महाराणा साहब यात्रियों के आराम के लिए ऋषभदेव के मार्ग पर काया, बारापलि तथा टिड्डी गाँवों में पक्की धर्मशालायें बनवा दी हैं। परसाद में भी पुरानी कच्ची धर्मशालायें बनी हुई है। मार्ग निर्जन वन तथा पहाड़ियों के बीच में होकर निकलता है तो भी रास्ते में स्थान-स्थान पर भीलों की चौकियाँ बिठला देने से यात्रियों को लुट जाने का भय बिलकुल नहीं रहा। प्रत्येक चौकी पर राज्य की तरफ से नियत किये हुए कुछ पैसे ही देने पड़ते हैं। ऋषभदेव जाने के लिए उदयपुर में बैलगाड़ियाँ तथा ताँगे मिलते हैं और अब तो मोटरों का भी प्रबन्ध हो गया है।

व्यवस्था शक्ति रहित दिगम्बरों के इस मन्दिर पर श्वेतांबर प्रधान सबसे पहले राज्य- सत्ता जमाता है और आर्थिक व्यवस्था के लिए राज्य की तरफ से कमेटी नियत करने की प्रथा चालू कराता है; बाद में राज्य के मुख्य-मुख्य ओहदे श्वेतांबरों के हाथ में आते हैं और कमेटी में भी लगभग सभी श्वेतांबरों और केवल एक वैष्णव को (जो श्वेतांबरों की हाँ में हाँ मिलाता है) दाखिल किया जाता है और दिगम्बरों का सर्वथा बायकाट किया जाता है। इसके बाद सन् १९२७ में श्वेतांबरों की तरफ से मंदिर पर पूरा हक्क होने का दावा किया जाता है और वह भी राज्य की फौज के बल एवं बन्दूकों के कुन्दों द्वारा।

५. उदयपुर के दिगंबर की उलट-पुलट जाँच में मिली हुई हकीकतें

(४१ प्रश्न तथा उनके उत्तर)

उदयपुर से आया हुआ और केशरिया तीर्थ में होनेवाले हत्याकांड को जाननेवाला एक दिगम्बर भाई मुझसे ता. १३ मई को मिला, जिससे उलट-पुलट कर अनेक प्रश्न पूछने पर मुझे जो हकीकतें मालूम हुई हैं, उन्हें मैं यहाँ नीचे देता हूँ :-

१ प्रश्न -- ता. ४ मई को उदयपुर राज्य में एक भीषण दुर्घटना होने की खबर समाचार पत्रों में प्रगट हुई है और उसमें जगह-जगह धुलेव, ऋषभदेव, और केशरियाजी - ये तीन नाम पाये जाते हैं, सो यह क्या बात है?

उत्तर– व्यवहार रूप से ये तीनों नाम एक स्थान के हैं। उदयपुर स्टेट की राजधानी उदयपुर है। वहाँ से लगभग ४० मील दूर **धुलेव** नामक ग्राम है, जिस ग्राम में दिगंबरों का एक बहुत प्राचीन जैन मंदिर है। इस मंदिर में मूलनायक तरीके प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की एक अति प्राचीन प्रतिमाजी हैं, इसलिये इस मंदिर का वास्तविक नाम तो **ऋषभदेव ही है और शिलालेखों में सर्वत्र वही नाम पाया जाता है**, किन्तु बाद में अजैनो द्वारा मनौती में केशर बहुत चढ़ाई जाने के कारण इसी का लौकिक नाम **'केशरियाजी** भी प्रसिद्ध है। यह मंदिर **धुलेव ग्राम** में है, जो कि उदयपुर स्टेट के मगरा तालुका में है और तालुका का अमलदार श्वेताम्बर जैन है।

२ प्रश्न -- धुलेव ग्राम में या मगरा तालुका में अथवा उदयपुर राज्य में सब मिलाकर श्वेतांबरों की जनसंख्या दिगंबरों की अपेक्षा ज्यादा है क्या ?

उत्तर -- आप अथवा अन्य कोई तटस्थ सज्जन जैसी कल्पना कर सकते हैं उससे ठीक प्रतिकूल परिस्थिति है। **अकेले धुलेव ग्राम में १५० घर दिगम्बरों के हैं और श्वेताम्बरों के कुल २-३ घर हैं**, जो कुछ दिन पहले दूसरी जगह से आकर यहाँ बस गये हैं। **धुलेव के आसपास अनेक छोटे-छोटे ग्राम हैं, जिनमें अकेले दिगम्बरों की ही बस्ती है, जिनकी लगभग २०-२५ हजार की संख्या है**; तमाम उदयपुर **स्टेट में श्वतांबरों की अपेक्षा दिगंबर जैन संख्या बहुत ज्यादा है;** और इस मंदिरवाले ग्राम के आसपास के बहुसंख्यक ग्रामों में तो मात्र दिगम्बरों की ही बस्ती है, जो कि प्रायः अशिक्षित हैं। **सारांश यह है कि दिगम्बरों की दर्शन करने की आवश्यकता की पूर्ति स्वरूप यह मंदिर धुलेव में बनवाया गया था।**

निःसंदेह राजधानी उदयपुर में दिगम्बर की अपेक्षा श्वेतांबर ज्यादा हैं; परन्तु उसका

कारण राज्य में उनकी राजकीय सत्ता ही कारण है, क्योंकि मुख्य- मुख्य सब ओहदे उनके हो हाथ में हैं। उदयपुर नगर में दिगंबरों के घर मात्र ३०० हैं; उनमें भी पोलीटिकल (राजनीति) या कानून का जानकर कोई भी नहीं है, **यह भी याद रहे कि खास उदयपुर शहर को बसे हुए तो मात्र ३५० ही वर्ष हुए हैं और उसके पहले सारे मेवाड़ में मात्र दिगम्बरों की ही बस्ती थी।** धुलेव के आसपास के ४० गाँवों में लगभग २९-३० दिगम्बर जैन मंदिर जीर्ण अवस्था में पड़े हुए हैं और श्वेतांबर मंदिर का तो कहीं भी नामोनिशान तक नहीं है। श्वेताम्बरों का उदयपुर में प्रवेश बहुत बाद हुआ है और सो भी तब, जबकि दिगम्बर लोग अवनत अवस्था में थें।

३ प्रश्न – बंबई श्वेताम्बर नेता ऋषभदेव पहुँचकर वहाँ से लिखते हैं कि मंदिर संबंधी ध्वजादंड क्रिया आज से ५ वर्ष पहले श्वेताम्बर करने के लिये तैयार हुए थे, जिसपर दिगम्बर जनता महाराणा के पास दौडी गई थी और विरोध किया था, क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर– यदि यह बात ठीक होते तो भी इससे केवल यही एक बात सिद्ध हो सकती कि आज श्वेताम्बर जिस हक्क को अपना कह रहे हैं, वह झूठा था, इसीलिये तो दिगम्बरों को विरोध करना पड़ा, परन्तु वस्तुस्थिति दूसरी है। **असली बात यह है कि ५ वर्ष पहले जीर्णोद्धार की जरूरत मालूम पड़ने पर और प्रत्येक जीर्णोद्धार खुले तौर और उत्सव के साथ करने की प्रथा होने से और मंदिर पर कुल सत्ता बहुत वर्षों से राज्य की होने से दिगम्बरों ने राज्य से प्रार्थना की थी कि ध्वजादंड चढ़ाने की आज्ञा उनको दी जाय।**

४ प्रश्न -- तो राज्य ने मंजूरी दी होगी ?

उत्तर– इससवाल का उत्तर समझने के लिये 'राज्य' शब्द को ही पहले समझना पडेगा। आप शायद यह समझते होंगे कि नामदार महाराणा का नाम लिया जाता है, इसलिये राज्य की संपूर्ण सत्ता इनके हाथ ही में होगी। अनेक राजकीय कारणों (कि जिनको मैं महाराणा की वफादार प्रजा के तौर पर प्रगट करने में असमर्थ हूँ) से हमारे महाराजकुमार के हाथ में भी बहुत कुछ सत्ता चली गई है और उनका खुदाविंद महाराणा के साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार नहीं है। वस्तुत: स्टेट के सारे मुख्य महकमें श्वेतांबरों के हाथों में हैं और उन श्वेताबंरों ने अजैन अमलदारों को भी अपनी मुट्ठी में कर रखा है, यही नहीं ....।

५ प्रश्न -- ठहरो, ऐसा दुखड़ा रोने का यह प्रसंग नहीं है। राज-कुटुम्बों की अन्दरूनी खटपट, उसका लाभ उठाने की ब्यूरोक्रेसी की तत्परता और धन-लोलुप आदमियों की चालाकी इत्यादि सब बातें अकेले तुम्हारे उदयपुर

राज्य में ही हों, सो बात नहीं है । तमाम देशी राज्यों में थोडे-बहुत अंश में यही परिस्थति है, और प्रबल पक्ष अपने ही पक्षवालों को मुख्य-मुख्य ओहदों पर नियुक्त करते हैं यह प्रथा तो देशी राज्यों ;ब्रिटिश तथा अन्यान्य राज्यों में भी खूब ही प्रचलित है, इसलिये इस बात को छोड़कर मेरे प्रश्नों का सीधा उत्तरदो।

उत्तर– सीधा उत्तर दिया तो जा सकता है, परन्तु उस उत्तर को कैसे समझा जा सकेगा ? उदाहरण के तौर पर अभी हाल के झगड़े में ही नामदार महाराणा कहते हैं कि उनने नियमानुकूल हुक्म हाकिम को भेज दिया था कि ५ वर्ष पहले दिगम्बरों द्वारा दी गई अर्जी का फैसला अभी तक न होने के कारण एक भी पक्ष को ध्वजादंड क्रिया मत करने दो - "फिर भी आज श्वेतांबर खुलें तौर से कहते हैं कि उनको **महाराजकुमार ने हुक्म दिया था और जब उनसे महाराजकुमार की ही लिखित आज्ञा दिखाने को कहा जाता है तो वे उसे दिखाने के बदले राज्य के लश्कर को शिकारी कुत्ते की तरह से हम पर छोड़ देते हैं** । क्या हम पर शिकारी कुत्ते को छोड़ देना ही राज्य का हुक्म है ? आप मुझसे पूछते हो कि राज्य ने मंजूरी दी या नहीं, इस प्रश्न का सीधा उत्तर दो," परन्तु महाशय! यदि आप ही ऐसे संयोगों में हो तो आप भी कौनसे शब्दों में सीधा उत्तर दे सकेंगे?

६ प्रश्न -- तो आज से ५ वर्ष पहले दी गई अर्जी का फैसला अभी तक मिला नहीं है, क्यों ठीक है न ?

उत्तर -- हाँ, अभी तक नहीं मिला । लश्कर के जोर से श्वेतांबरों ने हाल में फैसला न होने पर भी , इतना ही नहीं बल्कि महाराणा साहब की आज्ञा को ठुकराकर और दो दो मनाहियों की कुछ भी परवाह न करके ध्वजादंड की क्रिया कर डाली और दिगम्बर मूर्ति पर मुकुट-कुण्डल भी चढ़ा दिये ।

७ प्रश्न -- दो दो मनाहियाँ किसतरह ?

उत्तर– गत भाद्रपद महिने में श्वेतांबरों ने स्वेच्छाचारिता से इस मंदिर की फक्त १७ मुर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़ा दिये थे, तब महाराणा साहब को इस पर अर्जी दी गई। महाराणा ने श्री अमरसिंह जी राणावत रेवेन्यू मेम्बर और मोतीलालजी बोहरा श्वेतांबर – इन आदमियों को संयुक्त जाँच करने के लिये भेजा । **बाद में मुकुट-कुण्डल उतरवा दिये और बाद में हुक्म दिया था कि ५ वर्ष पहले की अर्जियों का निर्णय हुए बिना कोई भी पक्ष मंदिर में किसी प्रकार की नई कार्रवाई न करे और न पुरानी वस्तुस्थिति में फेरफार ही करे । तथा अमलदारों की भी कोई प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये । महाराजकुमार ने भी ऐसी ही आज्ञा दी थी ।** यह घटना तो केवल ८ महीने पहले की है , परन्तु हाल में महाराणा एवं रेजीडेन्ट साहब की अनुंपस्थिति का लाभ लेकर और मगरा के एक अजैन अमलदार की जगह श्वेतांबर हाकिम को नियत कराकर ता. ४

मई को १७ मूर्तियों पर ही नहीं, किन्तु ५२ ही मूर्तियों पर श्वेतांबर मुकुट- कुण्डल चढाने लगे थे और महाराणा साहब के ८ महने पहले के तथा अप्रैल अन्त में दिये गये ताजे हुक्म- इन दोनों की याद दिलाकर जब दिगम्बरों ने पूछा कि ' यदि इनके सिवाय कोई ऊपरी सत्ता का तुम्हारे पास आर्डर हो तो दिखाओ, अन्यथा मुकुट-कुण्डल मत चढ़ाओ', **इस पर तो मगरा के हाकिम ने हाकिम की हैसियत से नहीं, बल्कि श्वेतांबर जैन तरीके दिगम्बरों पर आक्रमण करने का हुक्म दे दिया और Might is right का एक क्रियात्मक उदाहरण करके बता दिया ।**

८ प्रश्न –गत अप्रैल के अन्त में महाराणा को हुक्म देना पड़ा ऐसा जब तुम कहते हो तब तो वैशाख सुदी ३ (ता. ४ मई) को श्वेतांबर यह उत्सव करनेवाले हैं – यह बात महाराणा को जरूर ही मालूम होगी – ऐसा अनुमान किया जा सकता है । यह बात महाराणा ने कैसे जानी – यह बात मैं जानना चाहता हूँ । क्या श्वेतांबरों ने प्रथा के अनुसार इस उत्सव की आमंत्रण पत्रिका गाँव को भेजी थी ? क्या उनने महाराणाश्री को यह क्रिया करने की आज्ञा देने के लिये प्रार्थना की थी ?

उत्तर -- दोनों मे से एक भी कल्पना ठीक नहीं है; महाशय ! श्वेताम्बरों ने कोई किसी भी प्रकार की कुंकुम-पत्रिका प्रगट नहीं की । यद्यपि ऐसे अवसरों पर कुंकुम-पत्रिका निकालने का इन लोगों के यहाँ ख़ास और पुराना रिवाज है । इसी अरसे में इस मंदिर से थोड़ी दूर करेठा पार्श्वनाथ के मंदिर के ऊपर ध्वजादंड क्रिया होनेवाली थी, जिसकी कुंकुम-पत्रिका प्रकट की गई थी और लगभग ३००० श्वेतांवर इस छोटे से सामान्य महत्व के स्थान पर एकत्रित हो गये थे । यदि धुलेव के केशरियाजी के उत्सव सम्बन्धी कुंकुम-पत्रिका प्रगट की जाती तो यह कोई सामान्य मंदिर नहीं, बल्कि तीर्थ एवं अतिशय क्षेत्र तरीके प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ तो हजारों दिगम्वर, श्वेताम्बर एवं अन्य धर्मी लोग अवश्य ही इकट्ठे हो जाते । उसकी जगह खुद श्वेतांबर समाचार पत्रों में सूचित करते हैं कि ४ तारीख को कुंल ७५ श्वेतांबरों और ८००–९००.दिगम्बरों के सिवाय और दूसरा कोई हाजिर न था ।

इन लोगों ने यह संख्या भले ही किसी भीतरी उद्देश्य से रखी हो, **परन्तु उससे यह एक बात तो सिद्ध हो ही जाती है कि ध्वजादंड क्रिया के लिये उदयपुर के श्वेताम्बरों ने छुपी तौर से तैयारियाँ की थी और इसीलिये कुंकुम-पत्रिका प्रगट नहीं की गई थी और महाराणा से भी इजाजत नहीं माँगी थीं ।** इस छुपी तैयारी की गंध (sent) तीन दिन पहिले ही दिगम्बरों को लग गई और इससे.........।

९. प्रश्न -- जरा ठहरो, छुपी बात की गंध दिगम्बरों को पहुँच जाय - यह बात श्वेतांबर सत्ताधीशों की चालाकी को देखते हुए यकायक मानी नहीं जा सकती ?

उत्तर- ऐसी छुपी बातकी गंध श्वेतांबरों के मुख्य अड्डे उदयपुर में से फूट नहीं सकती है, यह अनुमान आपका ठीक है, परन्तु साथमें आप यह भी न भूल जाइये कि धुलेवमें १५० घर दिगम्बरों के होने से मन्दिर में कैसी भी चोरी-चुपके से होनेवाली तैयारियों की खबर दिगम्बरों को पहुंचे बिना नहीं रह सकती और फिर वहाँ से उदयपुर के दिगम्बरों को खबर दी जा सकती है और ऐसा ही हुआ भी था।

श्री मोतीचन्द सॉलीसिटर (श्वेतांबर वकील) की ता. ८ को 'डेलीमेल' में प्रकाशनार्थ भेजी हुई रिपोर्ट पर से उनकी इच्छा न होने पर भी यह सत्य प्रगट हो जाता है। उनने उसमें एक जगह लिखा है कि **"In the meantime Digambers got a scent of the matter."** इतने में दिगम्बरों को कार्रवाई की बू आ गई) इससे यह तो सिध्द ही है कि 'सेन्ट' शब्द छुपी रखने की या छुपी हुई बात की खबर किसी को न लगे, उसी सम्बन्ध में प्रयुक्त किया जाता है। यदि यह सर्व सामान्य उत्सव ही था तो फिर विपक्ष को सेन्ट अर्थात रहस्य की खबर लग गई- यह कहने का अवकाश ही कहाँ रहता है ?

१०. प्रश्न -- ठीक, उदयपुर के दिगम्बरों को थोडे ही दिन पहले इस बात की खबर लगी, फिर उनने क्या किया ?

उत्तर - ता. २८ अप्रेल को उदयपुर के दिगम्बरों को पता चला कि उदयपुर के श्वेतांबर महाराजकुमार की खानगी मुँह-जबानी सम्मति लेकर वैशाख सुदी ३ के दिन यकायक एवं शीघ्रता से ध्वजादण्ड क्रिया करेंगे और इस बात का एक और शिलालेख लगानेवाले हैं कि जिससे भविष्य में इनकी मालिकी के हक को और भी ज्यादा पुष्टि मिले। इसपर से स्थानीय १० दिगम्बर जैनों का एक डेप्युटेशन महाराजकुमार के पास गया और सुनी हुई खबर जाहिर कर पूछा कि यह बात ठीक है या नहीं ? ५ वर्ष पहले अर्जी दी गई है, परन्तु उसका अभी तक कोई फैसला नहीं मिला , फिर भी यदि नामदार इस क्रियाकी जरूरत देखते हैं तो इसका हुक्म तो दिगम्बरों को ही मिलना चाहिये।

महाराजकुमार ने जवाब दिया कि उनने इस विषय में किसी को कैसी भी परवानगी (आज्ञा) नहीं दी है और न्यायतः अभी दी भी नहीं जा सकती। फिर उनने गुस्से के साथ पूछा कि तुमको जिस आदमी ने यह खबर दी हो, उसका नाम बताओ कि जिससे स्टेट को अपमानित करनेवाले व्यक्ति को ऐसी अफवाह फैलाने का समुचित दंड दिया जाये।

पंचों का डेप्यूटेशन लौट आया और फिर बारीकी से इसकी जाँच करना शुरु की। एक अत्यन्त विश्वासपात्र स्थान से इस खबर का अनुमोदन मिला। फिर तो पंचों को नामदार महाराणा से ही मिलने की जरूरत दीख पड़ी। उससमय महाराणा साहब ४० मील दूर कुंभलगढ़ में थे। पंच वहीं गये। महाराणा ने जोर देकर कहा कि ऐसा हुक्म अभी किसी को भी दिया ही नहीं जा सकता है और अभी तक हक किसी को दिया भी नहीं गया है। उसपर भी नामदार महाराणा ने उसीसमय **पंचों की समक्ष में देवस्थान हाकिम को यह हुक्म लिख भेजा कि किसी भी पक्ष को ध्वजादंड क्रिया करने का हुक्म नही दिया गया है और पुरानी अर्जियों का फैसला जल्दी हो जाय - ऐसी हमारी इच्छा है।** (यहाँ यह याद रखना चाहिये कि इस केस के लिये महाराणा ने ८ आदमियों की एक कमेटी नियत कर रखी थी, जिसमें २ दिगम्बर, २ श्वेतांबर और ४ अजैन राजकीय मेम्बर थे। राज्य की तरफ के मेम्बरों में से एक का नाम **फतहलालजी** है, जिसका पुत्र इस विवादास्पद मंदिर पर देख-रेख रखनेवाला हाकिम है। पिता तो केस चलानेवाली कमेटी का मेम्बर है और पुत्र विवादास्पद मंदिर का हाकिम है! तालुका का और फौज का अधिकारी भी श्वेताम्बर जैन हैं।)

नामदार महाराणा का ऐसा निश्चयात्मक जवाब पाकर पूर्ण संतोष के साथ पंच वापिस लौट आये और उनने विश्वास किया कि अब तो श्वेतांबर अपना विचार कार्य-परिणत नहीं केरेंगे, परन्तु श्वेतांबर लोगों ने तो अपना विचार छोड़ा न था। मगरा के श्वेताम्बर हाकिम और फौज के हाकिम लक्ष्मणसिंह को फौज के साथ में धुलेव की तरफ़ कूच करने की खबर दिगम्बरों को मिली, फिर ये लोग दौड़े-दौड़े महाराणा की सेवा में हाजिर हुए और इस लश्करी हालचाल का मतलब पूछा, तब नामदार महाराणा ने देवस्थान के हाकिम देवीलालजी के ऊपर लिखे हुए हुक्म का आया हुआ जवाब पंचों को बताया, जिसका मतलब यह था कि "चरणारविन्द (महाराणा) विश्वास रखें कि उनके हुक्म के विरूद्ध कुछ भी काम नहीं किया जाएगा!" उसमें यह खास तौर पर लिखा गया था कि **"दिगंबर आप नामदार के पास झूठी-झूठी खबरें देकर आपको व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हैं और यहाँपर (धुलेव में) एक भी फौज का सिपाही नहीं है।" (यह पत्र ता. ४-५-२७ को लिखा गया था और हत्याकांड भी उसी तारीख को मन्दिर में स्थित इसी लश्कर द्वारा ही हुआ था।)**

ता. ३ को जयपुर के प्रसिध्द जौहरी सेठ बनजी ठोल्या (जो महाराणा एवं महाराजकुमार के खास परिचितों में से एक हैं) का कार्यवशात् उदयपुर में आना हुआ और हमेशा की प्रथा के अनुसार उनने कुमार की मुलाकात ली। वार्तालाप के बीच में जौहरीजी ने उदयपुर में फैली

हुई अफवाहों का जिक्र किया। कुमार ने जवाब में कहा कि 'ऐसी कोई भी बात उनको मालूम नहीं है, फिर भी 'महाराणा ने कोई मंजूरी दी हो तो उसको वे जानें।"

फिर ता. ४ (वैशाख सुदी ३) के दिन केशरियाजी के दिगम्बर संघ का संदेशा उदयपुर संघ को मिला कि श्वेतांबर लोग थोड़ी ही देर में ध्वजादंड चढ़ाने ही वाले हैं।

११.प्रश्न -- उससमय संदेशा मिलते ही दिगम्बर पंच तुरन्त महाराणा के पास पहुँचे होंगे ?

उत्तर -- महाराणाजी ने इस बात का दो बार उत्तर दे दिया था कि हमने कोई भी हुक्म नहीं दिया है, इतना ही नहीं , बल्कि मनाई भी दो बार लिखकर भेज दी है, अब फिर इनके पास जाने की क्या जरूरत ? कुंवर के पास तो पहले एक बार दिगम्बर पंच हो आये थे और उनका जवाब भी सुन लिया था फिर जयपुर निवासी दिगम्बर जौहरी को दिया हुआ पेचीदा उत्तर भी उनने सुन ही लिया था - ऐसी परिस्थिति में उनके पास जाने की कुछ भी जरूरत न थी।

१२.प्रश्न -- तो क्या वे लोग रेसीडेन्ट साहब के पास गये थे ?

उत्तर-- खून हो गये हों और राज्य सुनता न हो, तभी लाचारी से राजभक्त देशी प्रजा को रेसीडेन्ट साहब के पास जाना पड़ता है, फक्त धार्मिक क्रिया सरीखे सामान्य विषय में और खासकर जब केस का फैसला हुआ नहीं था, ऐसी स्थिति में रेसीडेन्ट के पास दौड़ते जाना नियमानुकूल नहीं कहा जा सकता था और दूसरी रेसीडेन्ट के पास जाना नामदार महाराणा का अपमान करने के समान होता।

प्रश्न १३-- परन्तु तुमने तो श्वेतांबर हाकिम को फौज के साथ केशरियाजी जाने का समाचार सुना था न ?

उत्तर-- उसके बाद ४-५ मौतें हुई- यह हकीकत आपकी नजरों में घूमती होने से आप यह प्रश्न अभी करने के लिए प्रेरित हुए हैं, परन्तु असली हकीकत इसप्रकार है कि जब ता. ४ को उदयपुर संदेशा पहुँचा, उससमय किसी को भी यह कल्पना तक न थी कि लश्कर का हत्या कराने में उपयोग किया जाएगा। ज्यादा से ज्यादा सबका अनुमान यही था और यही हो भी सकता था कि लश्कर दिखाकर दिगम्बरों को डरा दिया जायगा और श्वेतांबरों के हाथों से ध्वजादण्ड क्रिया करा दी जायेगी। हम लोगों ने भी यही अनुमान किया था और इसलिए १० दिगम्बर पंच इस निर्णय के साथ मोटर द्वारा केशरियाजी गये थे कि लश्कर के दृश्य से न डरकर यदि क्रिया की जायेगी तो क्रिया करने का महाराणा साहब का लिखित हुक्म दिखाने का श्वेतांबरों को आग्रह किया जाये। इन पंचों में प्रशस्त विद्वान न्यायतीर्थ पं. गिरधारीलालजी भी एक थे।

१४. प्रश्न -- तुम तो कहते हो कि मात्र १० दिगंबर पंच ही उदयपुरसे धुलेव गये थे और श्वेतांबर नेता कहते हैं कि तुम्हारी ८०० से १००० तक की संख्या थी ?

उत्तर-- महाशय , यही तो इन लोगों की खूबी है । **झूठ बोलने में वे लोग इतने अभ्यस्त हैं कि शायद वे लोग सच्चा तो कभी रोये भी नहीं होंगे ! इनका ध्येय (भगवान) ही दुनिया अथवा दुनियावी लाभ की तरफ सदा खुली आँखें रखता है - यह क्या सिद्ध करता है ? हमारा ध्येय (भगवान) दुनिया या दुनियावी लाभों की तरफ से आँखें बंद रखता है और अन्तरंग दृष्टि अथवा अदृश्य राज्य की तरफ दृष्टि रखता है ।** हमारा ध्येय ही हममें झुठ, छल-प्रपंच की तरफ स्वाभाविक रीति से घृणा पैदा कराता है । इन बातों को जाने दीजिये, क्या आप इस मंदिरजी में इतनी बड़ी संख्या में एकत्रित होने के किसी कारण की कल्पना कर सकते हो ? फौज और तोपखाना तक केशरियाजी पहुँचने की बात क्या हम नहीं जानते थे ? क्या वह बात हम ही लोगों ने महाराणा को विदित नहीं की थी ? तो क्या श्वेतांबर यों कहना चाहते हैं कि लश्कर और तोपों के विरूद्ध हम लोग लड़ने गये थे ? थोड़ी देर के लिए ऐसा मान भी लिजिये कि हम लोग लश्कर और तोपों के विरूद्धा हम लोग लड़ने गये थे ? थोड़ी देर के लिए ऐसा मान भी लीजिये कि हम लोग शांत नहीं थे, फिर भी तोपों और फौज के सामने हमारा कितना बल ? ५५० वर्षों का उदयपुर स्टेट का प्राचीन इतिहास क्या हमारे उत्पात करने का एक भी उदाहरण दे सकता है ?

आठ मास पहले जब श्वेतांबरों ने १७ मूर्तियोंपर मुकुट-कुण्डल चढ़ा दिये थे, उससमय भी हम लोगों ने कोई भी प्रकार का उत्पात न कर शांतिपूर्वक नामदार महाराणा के पास जाकर क्या अर्ज नहीं की थी ? तो फिर आज तो फौज और तोपों के सामने लड़ने के लिए हम जायेंगे, इस बात की क्या आप कल्पना कर सकते हो ? फिर यह भी मान लीजिए कि हम दिगम्बर अशान्ति या उपद्रवी तरीके वहाँ एकत्रित हुए थे, तो क्या किसी अधिकारी ने हमारे ऊपर मारामारी करने का आरोप रखा है ? खुद श्वेतांबर सॉलीसिटर, अमलदारों से मिलने के बाद कहता है कि 'मारामारी तो एक भी पक्ष ने या लश्कर ने नहीं की थी ।" हमारे किसी भी आदमी पर गाली देने, मारने या अनुचित व्यवहार करने का आरोप नहीं रखा गया है, किसी को पकड़ा नहीं गया । क्या हमारी निर्दोषता के इससे भी अधिक प्रमाणों की जरूरत है ? महाशय, हमें तो किसी तरह का उपद्रव करना ही न था इतना ही नहीं, परन्तु उपद्रव होता भी तो उसमें शमिल भी नहीं होना था । शामिल होने में हमें कोई लाभ न था. यह बात हमें भली प्रकार विदित थी ।

पहली बात तो यही थी कि फौज और उसका श्वेतांबर अफसर केशरियाजी में ही था, और दूसरा कारण यह कि उदयपुर स्टेट की आधुनिक परिस्थिति में हमको न्याय एवं रक्षा मिल जाना मुश्किल था, इसलिये हम लोगों का वहाँ न जाना ही हम लोगों के लिये सब प्रकार से हितकारक था। हम लोग कुल १० आदमी वहाँ गये थे और सो भी कायदेसर और शांति से महाराणा की आज्ञा का स्मरण कराने के लिये ही। और कुछ थोड़े से दिगम्बर हमेशा के अनुसार धुलेव गांव में से आये होंगे और शेष श्वेतांबर लगभग २००-३०० उदयपुर से आये थे।

उनने कुंकुमपत्रिका तो कहीं बाहर भेजी ही न थी, जिससे बाहर के भी लोग आ सकते। उदयपुर से जो श्वेतांबर गये थे, वे भी सिर्फ लश्कर का भय बताकर हम लोगों के समक्ष ध्वजादण्ड क्रिया कर मुछों पर ताव देने के लिये ही गये थे। इसकारण वे नहीं गये थे कि उनकी वहाँ खास आवश्यकता थी (क्योंकि लश्कर तो उन्हीं का था)।

१५ प्रश्न -- दिगम्बर पंच ने वहाँ जाकर क्या देखा और क्या कहा?

उत्तर - देखा कि श्वेतांबर लोग बावन मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़ा रहे हैं। आठ महीने पहले मात्र १७ मूर्तियोंपर चढ़ाये गये मुकुट-कुण्डलों को महाराणाजी ने उतरवा दिया था और भविष्य में मुकुट-कुण्डल न चढ़ाने की सख्त हिदायत की थी। फिर उसके बाद भी दो बार उनने लिखित हुक्म देकर ऐसा करने की मुमानियत (मनाई) थी। इसी बात को एक पंच ने याद कराकर पूछा कि इतने हुक्म होने पर यदि इससे उल्टा कोई हुक्म अब श्वेतांबरों को मिल गया हो तो वे दिखावें अथवा मुकुट-कुण्डल न चढ़ावें।

इसके बाद उपस्थित श्वेतांबर जनता से मुकुट-कुण्डल उतार देने का निवेदन किया था। जवाब देने और मुकुट-कुण्डल उतारने के बदले वे लोग दूसरी मूर्तियों पर भी मुकुट-कुण्डल चढ़ाते रहे और मनमाने शब्द बोलने लगे। **तुरन्त ही मगरा के हाकिम 'लक्ष्मणसिंह (जो लश्कर का अफसर था) ने बिगुल बजाकर बाहर के सिपाहियों को अन्दर बुलाया। सिपाहियों की संख्या लगभग २५० थी। उनने अन्दर आतेही श्वेतांबरों के हुक्म के अनुसार द्वार बन्द कर दिया। लश्कर की एक टुकड़ी को श्वेतांबरों की रक्षा के लिये उनके चारों तरफ तैनात कर दिया गया और बाकी का लश्कर यज्ञ-निमित्त एकत्रित लकड़ियों और बंदूकों के कुंदों से दिगम्बरों को मारने लगा। इस मार में उदयपुर के कुछ श्वेतांबरों ने भी क्रियात्मक भाग लिया था। परिणाम यह हुआ कि दिगम्बर वहीं मर गये; १५० आदमी घायल हुए जिनमें से १५ की हालत गम्भीर है।**

एक दिगम्बर घोड़े पर बैठकर खैरवाड़ा पहुँचा, जहाँ पर ब्रिटिश छावनी है। वहाँ उसने अधिकारियों को उपरोक्त सभी घटना कह सुनाई।

१६ प्रश्न -- मन्दिर के द्वार फिर किसने और कब खोले और बचे हुए दिगम्बरों एवं श्वेतांबरों ने क्या किया ?

उत्तर- लश्कर को हथियार बनाते समय श्वेतांबरों को ख्याल भी नहीं होगा कि इसका परिणाम इतना भीषण आवेगा, परन्तु भील आदि अनपढ़ लोगों के बने हुए सैन्य में कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कहाँ से आवे ? ऊपराऊपरी मुर्दों को पड़ते देखकर श्वेतांबरों की आँखें खुलीं; उन्हें रेसीडेन्ट और महाराणा का ख्याल आया। इतने मनुष्यों की भीषण हत्या किसी तरह भी छिपाई नहीं जा सकती थी, यह भय इनके हृदय में पैदा हुआ और तुरन्त द्वार खोलकर भाग खड़े हुए। हाकिम भी वहाँ से चला गया, मात्र सिपाही मुर्दों की चौकीदारी पर रह गये। **ध्वजादण्ड की क्रिया का प्रयत्न भी मौकूफ रखा गया।**

१७. प्रश्न -- परन्तु ध्वजादण्ड क्रिया का मुहूर्त तो उनने पंचमी (ता. ६) का ही निश्चित किया था और पहले से नियत तारीख को ही श्वेतांबरोंको ने निर्विघ्नतया आनन्द के साथ क्रिया पूरी की थी - ऐसा मोतीचन्दभाई सॉलीसिटर कहते हैं, सो ठीक है न ?

उत्तर- महाशय! उस पहेली को तो मैं भी नहीं सुलझा सकता ! सॉलीसिटर दूसरों को असत्य बुलवाते है- यह बात तो मेरी समझ में आ सकती है, परन्तु स्वंय कायदा जानते हुए भी असत्य बोलने की हिम्मत करे-- यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। मैंने सुना है कि यह सॉलीसिटर तो श्वेतांबर समाज में शास्त्रनिपुण तरीके प्रसिद्ध है और आनन्दघनजी जैसे नग्न साधु के पदों पर उनने एक टीका लिखी है -- ऐसा मैंने सुना है। ऐसा पुरुष जानते हुए भी असत्य कैसे बोलता होगा। यह बात मेरी समझ में नहीं आती। फिर भी इनका ही साथी श्वेतांबरों का नेता जवेरी श्री रणछोड़भाई रायचन्द इस सॉलीसिटर को असत्य ठहराते हैं। वे कहते हैं कि --**वैशाख सुदी ३ के दिन ध्वजादण्ड की क्रिया होनेवाली थी।** इन दोनों रिपोर्टों में से एक पर भी प्रूफरीडिंग या कम्पोज की गलती होने का बहाना नहीं चल सकता।

१८. प्रश्न -- धाराशास्त्री, न्यायाधीश, पुलिस, राजा और सेठ लोगोंपर दोष लगाने से मतलब सिद्ध नहीं होगा, यह शायद तुम नहीं जानते। ये लोग तो दोष करते ही नहीं हैं, अथवा सब दोष करने का इनको अधिकार है।जब तुम उदयपुर दरबार में न्याय लेने के लिये जाओगे तो वहाँ आटे - दाल की खबर हो जायेगी। महाराणा अपनी सत्ता के जन्म-सिद्ध अधिकार का उपयोग करने में

असमर्थ सिद्ध होने से जब तुम्हें रेसीडेन्ट साहब के पास जाना पड़ेगा तो पूजा करना तो दरकिनारे रहा, परन्तु गाँव नही स्टेट भर में रहना भूल जाओगे । इसी का नाम 'दुनिया' है और दुनिया के इस स्वरूप को अनुभव करके ही तो ज्ञानियों को दुनियाँ की तरफ से बिलकुल उपेक्षित होकर मौन धारण करना पड़ा था। पहले के जमाने में सादी समझ से और उसके बाद शास्त्र अथवा अंग-बलसे प्रत्येक मनुष्य अपना रक्षण कर सकता है, परन्तु उसके बदले में आज की नकली सुधारणा (उन्नति) ने कानून, वकील, पुलिस आदि का एक लफंगा डालकर जीवन को इतना कठिन एवं विकृत बना दिया है कि सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने के इच्छुक को तुम्हारे उदयपुर राज्य में तो क्या, बल्कि किसी भी राज्य के नगर या ग्राम में रहना असम्भव हो जाता है । यही तो कारण था ,जिससे तुम्हारे मन्दिर पहाड़ों के बीच एकान्त में बनाये गये थे और तुम्हारे साधु भी शहरों के बाहर एकांत जंगलों में रहते थे । अस्तु परन्तु मन्दिर का द्वार खुलने के बाद दिगम्बर पंचों ने क्या किया ?

उत्तर-- वे लोग उदयपुर गये और वहाँ से कुम्भलगढ़ में महाराणासाहब को सब हकीकत कह सुनाई । परन्तु यह मुझे खबर नहीं है कि उनको जाने या आने में किसी ने गिरफ्तार कर लिया हो । ३ दिन तक वे लोग वापस लौटे न थे, इसके बाद मैं बम्बई आ गया ।

१९ प्रश्न -- महाराणा को फरियाद करने के लिये पंच लोग गये और तुम बम्बई आये, उसके बीच में क्या- क्या हुआ ?

उत्तर - पंचमी (ता. ६) को ध्वजादण्ड क्रिया लश्कर की उपस्थिति में बाहर से बुलाये हुए एक श्वेतांबर श्रीमन्त पूनमचन्द करमचन्द कोटावाला (पाटणनिवासी) द्वारा यकायक कर डाली गयी । मैंने सुना है कि पाटण नगर राजनैतिक खटपट एवं धर्म-जुनून (उन्माद) के कार्यों में सैकड़ों वर्षो से पहिले नम्बर रहा है । राजा जयसिंह के जमाने में श्वेतांबर जैन राज्य के कर्ता- हर्ता बन बैठे थे और राजा को कठपुतली की तरह अपने हाथों में नचाते थे । श्वेतांबर मन्त्री ने तो राजमाता के साथ भी अनुचित सम्बन्ध करने की धृष्टता की थी । और मुसलमानों के घर-बारों को श्वेतांबर अधिकारियों ने जला डाला था - इस आशय का उल्लेख बम्बई सरकार की धारासभा के एक मेम्बर की बनाई हुई पुस्तक में है, जिसको बम्बई यूनिवर्सिटी ने पाठ्य पुस्तक तरीके नियत की है, श्वेतांबर इस उल्लेख के विरुद्ध बड़ा आन्दोलन एवं विरोध प्रदर्शित कर रहे हैं । और ये शब्द वापिस ले लेने के

लिये कई धमकियाँ भी दे चुके हैं, परन्तु वह मस्ताना लेखक इनकी जरा भी सुनता नहीं है और सरकार ने भी उसे पठनक्रम में से रद्द नहीं की है। इससे मालूम पड़ता है कि केवल देशी राज्यों में ही इन श्वेताम्बरों का जोर चल जाता है ब्रिटिश या ब्राहमणों के आगे इनका जोर कुछ भी नहीं चलता।

महाराणा की आज्ञा को तोड़कर पंचमी की क्रिया को करने के लिये न तो उदयपुर का ही और न ब्रिटिश प्रान्त का ही एक ऐसा धनाढ्य श्रीमन्त पसन्द किया गया, यह कानूनी चालबाजी ही दिखाई देती है। बम्बई का श्वेतांबर सॉलीसिटर भी पंचमी की क्रिया के बाद तुरन्त ही धुलेव आता है और ता. ९ तक धुलेव में कोई न जा सके - ऐसा प्रबन्ध किया जाता है और बाहर के दिगंबर नेताओं को वहाँ आने देने के पहले तो कमीशन की रिपोर्ट और मजिस्ट्रेट की जाँच आदि नाटक खतम कर दिया जाता है और इन सबके बाद धुलेव जाने का प्रतिबन्ध उठा लिया जाता है। श्वेतांबर सॉलीसिटर बम्बई के लिये रवाना होता है और व्यापक आन्दोलन मचाता है तथा पाटण निवासी श्वेतांबर धनाढय तार द्वारा जगह-जगह शान्ति एवं आनन्दपूर्वक (!) क्रिया के हो जाने की खुशखबर फैला देता है (!) इत्यादि चालबाजियाँ खेलकर और घटना को सब तरह दबाकर पीछेसे महाराणा को खबर दी जाती है, ऐसी हालत में नामदार महाराणा भी कुंवर द्वारा रक्षित श्वेताम्बर अमलदारों का क्या कर सकेंगे ? यदि नामदार महाराणा अपनी प्राचीन हिन्दु राजवंशीय पद्धति के अनुसार स्वतंत्र न्यायबुद्धि से न्याय करें, तभी श्वेताम्बरों तथा इन अमलदारों की बुद्धि ठिकाने आ सकती है। ऐसा होना आज की परिस्थितियों में सम्भव नहीं है, इसी ख्याल से तो श्वेताम्बर सॉलीसिटर और जौहरी उदयपुर में आकर मनमाना कार्य करने के बाद मामला साफ कर गये। आश्चर्य की बात तो यह है कि ता. ५ को कुमार ने अपने आप डॉक्टर तथा फौजदारी हाकिम को केशरियाजी भेजा था ! और उनकी रिपोर्ट अबतक छुपाकर रखी है और महकमा खास में भी नहीं भेजी है।

२०. प्रश्न -- परन्तु श्वेतांबर सॉलीसिटर तो कहता है कि उसने Highly responsible persons (उच्च जिम्मेदार आदमियों) से ये खबरें पाई हैं और यह कमीशन की रिपोर्ट तथा मजिस्ट्रेट की जाँच का परिणाम जानता है। दूसरा श्वेतांबर गृहस्थ श्री रणछोड़भाई जवेरी भी इस परिणाम को जानने की स्वीकृति देता है तो फिर तुम क्यों कहते हो कि रिपोर्ट छुपाकर रखी गई थी ? इसमें सत्य क्या माना जाय ?

उत्तर -- महाशय ! इन लोगों का यह कथन भी इनकी भारी चालबाजी सिद्ध करता

है। क्या अजमेर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट सदृश व्यक्तिने कुंवर से मिलकर अखबार में समाचार भेजते हुए यह नहीं लिखा कि रिपोर्ट को महकमा खास में अभी तक नहीं भेजने के कारण शंका बढती जा रही है। स्थानीय दिगम्बरों और अजमेर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट सरीखे व्यक्तियों को भी रिपोर्ट देखने तक को न मिली और श्वेताम्बर सॉलीसिटर और झवेरी को मिल जाय,क्या यह बात ही इनके गाढ़ सम्बन्ध का परिचय नहीं देती ? देशी राज्य की तो बात ही क्या, क्या ब्रिटिश राज्य में भी आपने इतनी जल्दी जाँच कर लेना सुना है। यह असाधारण जल्दी ही क्या कम अर्थसूचक है ? हत्याकाण्ड के समय से ता. ९ तक बाहर तथा उदयपुर के दिगम्बरों को धुलेव में न घुसने देकर सब कुछ कर डालना यह क्या कम घटना का रूप बताता है ?

२१. प्रश्न -- परन्तु श्वेताबंर नेता तो कहते हैं कि केवल मारामारी के दिन ही एक दिन के लिये (अर्थात् ता. ४ को ही) यह रुकावट की गई थी और ऐसी रुकावट क्या उससमय परिस्थिति की दृष्टिमें कानूनन आवश्यकता न थी? उन लोगों का कहना है कि यदि रुकावट चालू होती तो वे और श्री कोटावाला वहाँ कैसे आ गये ?

उत्तर-- कृपाकर ऐसा प्रश्न पूछ कर हमारे जले हुए घावों पर नमक मत छिड़को। रुकावट तो श्वेतांबरों के सिवाय दूसरे आदमियों के लिए थी। भला श्वेतांबर अधिकारी श्वेतांबरों के लिये ऐसी रूकावट क्यों कर डालेंगे ? आप ही सोचो कि जहाँ पर लश्कर मौजूद हो , फिर जो घटना होनेवाली थी वह भी अर्थात् ४ आदमी मर भी गये थे, ऐसी दशा में एक भी दिवस की रुकावट रखने की क्या जरूरत थी ? क्या यह रुकावट शांति बनाये रखने के उद्देश्य से थी? क्या इस लश्कर ने ता. ४ के दोपहर को शांति रक्षा नहीं की थी ? महाराणा के हुक्म का स्मरण दिलानेवाले दिगम्बर पंडित श्री गिरधारीलालजी न्यायतीर्थ को वहीं मार डाला गया - क्या यह शांति रक्षा का काम था? उसके दो दिन बाद तक लश्कर वहाँ मौजूद रहा है, फिर दरवाजा बन्द करने की क्या जरूरत थी ?

२२. प्रश्न -- परन्तु वह तो धक्काधक्की में कुचलकर मर गये थे न ?

उत्तर-- ऐसा कहनेवाले के मुँह पर खाक पड़े। ३० वर्ष का हट्टा-कट्टा युवक इतनी छोटी सी भीड़ में कुचल कर मर गया ? और दूसरे भी मरे सो भी भीड़ के द्वारा दबकर ही? श्वेतांबरों अथवा सिपाहियों में से एक भी कुचलकर न मरा ? इतने बड़े विशाल मन्दिर मे केवल ८००-९०० आदमियों के समा जाने का श्वेतम्बर लोग कहते हैं और उनमें से भी केवल ४०० आदमी उपरोक्त घटना में सम्मिलित हुए थे, ऐसा वे कहते हैं ! मन्दिर के अन्दर की विशालता देखने से मालूम हुए बिना न रहेगा कि मात्र ४०० आदमियों की

छोटी सी भीड़ ४ मनुष्यों को कुचल कर जान से नहीं मार सकती है।

फिर श्वेतांबरों की सच्चाई की तो बात ही क्या ? सॉलीसिटर का पत्र कहता है कि "दिगम्बर लोग शोर मचाने लगे जिससे कोलाहल मच गया। स्टेट की पुलिस ने सबको एकदम बाहर जाने का हुक्म किया और पकड़ो, पकड़ो की आवाज की। दिगम्बर डर में पड़ गये और बाहर जाने के लिये दरवाजे की तरफ दौड़े ! एक ही पंक्तिमें यह कहता है कि बाहर जाने का हुक्म दियां और पीछे से कहता है कि पकड़ने की आवाजें कीं ! बस पकड़ने की आवाज निकालना था कि तमाम दिगम्बर भय में पड़ गये और दौड़ पड़े! यहाँ यह ध्यान में रहे कि श्वेतांबर तो वहाँ बिलकुल थे ही नहीं -- ऐसा सॉलीसिटर के कहने का आशय है, वहाँ तो सिर्फ ४०० दिगम्बर थे जो आवाज़ होते ही सबके सब डर से गिर पड़े ! यह बात ठीक परन्तु जब वे लोग गिर पड़े तो दरवाजे की तरफ दौड़ा कौन! दुनियां भर को धोखा देने और सच्चाई की आँख में धूल झोंकते हुए भले ही कोई उनसे न रुकता हो, परन्तु दूसरों को उल्लू बनाने में वह स्वयं उल्लू बन रहा है, - इस बात का तो सॉलीसिटर को ध्यान रखना चाहिए था ? उसकी गुजराती रिपोर्ट और उसी तारीख की अंग्रेजी रिपोर्ट कई बातों में एक दूसरे से बिलकुल विरुद्ध जाती है। अंग्रेजी रिपोर्ट के एक पेरेग्राफ में वह लिखता है कि उससमय कुल दो श्वेताम्बर मौजूद थे और फिर अगले पेरेग्राफ में ही वह कहता है कि उससमय एक भी श्वेताम्बर मन्दिर में न था। इसलिये आप कृपया इन लोगों की सच्चाई के विषय में मुझसे सवाल-जवाब न पूछिये। ४ जवान आदमी मात्र पाव घण्टे में ही एक साथ मर जायें और वे भी अकेले दिगम्बर पक्ष के ही और इसी पक्ष के १५० आदमी घायल हों और दूसरे पक्ष के किसी भी आदमी का बाल तक बाँका न हो, कुचला भी न जाय, मार भी नहीं पड़े और लश्कर भी अपने ऊपर या श्वेतांबर पक्ष पर दिगम्बरों द्वारा आक्रमण की शिकायत न करे- इन सब प्रश्नों का उत्तर क्या केवल "कुचल जाने से" इस एक शब्द में आ गया? कोई घायल नहीं हुआ, किसी भी प्रकार की लड़ाई दिगम्बर-श्वेतांबरों के बीच में तो क्या; दिगम्बर और पुलिस के बीच में भी नहीं हुई। अरे! किसी भी प्रकार की बोलाचाली (**dispute**) ही नहीं हुई- ऐसे शब्द सच्चे गुरु के चेले इस श्री मोतीचन्द सॉलिसिटर ने लिखे हैं तो फिर घायलों में से पीछे से दो और मर गये, वे भी क्या कुचलकर मर गये थे ?

२३. प्रश्न -- परन्तु श्री मोतीचन्दभाई तो अंग्रेजी पत्र में लिखते हैं (यद्यपि गुजराती में तो जानबूझकर वैसा नहीं लिखा) कि तुम लोग Cowards(नामर्द) थे, उसी का यह सबकुछ परिणाम है। वे लिखते हैं कि तुम लोग तो अपने हाथ से ही मरे हो और सरकारी कमीशन ने भी ऐसी रिपोर्ट की है।

उत्तर -- हमारी मरने की इच्छा हुई थी इसलिये हम अपने हाथ से ही मर मिटे और इसके लिए हमें अपने पूज्य मन्दिर को छोड़कर और कोई दूसरा स्थान भी नहीं मिला ! सरकारी रिपोर्ट तो कोई सॉलीसिटर खुद लिखे तो क्या हानि है ? परन्तु रिपोर्ट में क्या लिखा है यह तो उसके प्रगट होने से जाना जा सकता है। आरोपी पक्ष के एक सॉलीसिटर के कहने मात्र से उसे थोड़े माना जा सकता है और यह श्वेतांबर सॉलीसिटर समाचार पत्रों में हम लोगों को Cowards (नामर्द) लिखता है, परन्तु उनका यह लिखना ही एक Cowards का कृत्य है, यह कौन नहीं देख सकता ? अपने भाइयों के हाथों से दूसरे भाइयों को पिटते देखकर पीड़ितों को सहायता करने के बदले मदद के लिए आनेवाले डाक्टरों को भी रोक रखना, इससे अधिक निंद्य नामर्दी का काम दुनिया में और कहाँ देखोगे ? उच्च कहलानेवाली आधुनिक सभ्यता जन्य कानून के सिर्फ वकीलों को छोड़कर तमाम जनता के ऊपर जबर्दस्ती से नामर्दी का टीका ठोक दिया है। एलीजाबेथ के समय का इंगलैंड या गत शताब्दि का फ्रान्स या ऋषियों के युग की हिन्दू संस्कृति का यदि आज भारत होता तो 'नामर्द' शब्द लिखनेवाले और जिनके लिये यह शब्द प्रयोग किया गया, उन दोनो में वस्तुतः कौन "नामर्द" है कौन असली बहादुर है ? इसका निर्णय दुनिया कर सकी होती। जिन लोगों का अपने रक्षण करने का भी हक्क जहाँ कानून द्वारा छिन गया हो, वैसे गुलामों में से एक आदमी दूसरे को कानून-पालने के लिये 'नामर्द' कहे, इससे ज्यादा 'नामर्दी' की कल्पना करना तक मुश्किल है। यदि ये लोग वस्तुतः बहादुर हैं तो उनके आचार्योंपर कुठार मारनेवाले मि. मुन्शी के आगे ये लोग बकरी क्यों बने फिरते हैं? क्या यह 'नामर्द' होने का परिणाम नहीं है ? ये शमशेर बहादुर और कानून बहादुर कर्नल वाट्सन के आगे क्यों बकरी बन गये थे ? सो भी इतने ज्यादा कि इनकी वकालत करने के लिये उन्हें एक अजैन बैरिस्टर की शरण लेनी पड़ी ! अब आप ही कहो कि हम लोग नामर्द हैं या ये लोग ? आज कानूनों एवं परिस्थितियों ने हमें लाचार बना दिया है। इसीतरह एक दिन सम्मेदशिखरजी केस को आपस में निपटा लेने के लिये आपने समझाया था और श्वेताबंरों ने उसे स्वीकार किया था, परन्तु बाद में उनने भारी धोखा दिया था सो क्या आप भूल गये ? इसतरह भारी धोखा देनेवाले तो 'नामर्द' नहीं हैं, बल्कि वीरशिरोमणि हैं ! महात्मा गांधी ने राजनैतिक कार्यों से और आपने जैन समाज के कामों से इतने अधिक वर्षोंतक रात-दिन घोर परिश्रम करने के बाद क्यों अपना हाथ खींच लिया ? क्या यह आपकी क्षत्रीयता 'नामर्दी' का परिणाम था ? मुझे हाल में एक फारसी कवि का शेर याद आ गया :--

नौवतें मर्दा गुजश्त, दौरेब अन्नं रसीद ।
कुब्क हमां गुम शुदन, जागे जगन सरकशी ।।
साद्र दशीन शुद सिगार, तरकशे रूबाए बस्त ।
आदमियत गुम शबद,मुल्क खुदा खर गिरफ्त ![24]

ईश्वरीय प्रदेश पर गधों का अधिकार ! धर्म, इन्साफ और शिक्षणइत्यादि सभी क्षेत्रों में जहाँ गधों का ही साम्राज्य हो वहाँ **Coward (नामर्द) एवं Brave (बहादुर) इनकी व्याख्या भी गधों द्वारा ही तो करानी पड़ेगी । ब्रह्मचारी के लिए वेश्या के शब्दकोष में 'नामर्द' ही शब्द मिलेगा या और कुछ?** अध्यात्मशास्त्र के समस्त व्याख्या आधुनिक सभ्यता के कोष में बिलकुल उल्टे स्वरूप में की जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

२४. प्रश्न-- तो तुम भली प्रकार समझे मालूम पड़ते हो ! ऐसी ही समझ दिगम्बर जनता को देकर प्रत्याघात वृत्तिपर जय-प्राप्ति का पुरुषार्थ उनमें जागृत करोगे तो इस धर्मोन्माद के युग में एक सुन्दर एवं अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित कर सकोगे । तुम्हारे शब्दों से सिद्ध होता है कि तुम में शक्ति है; तुम्हारी अक्रियता निर्बलता का परिणाम नहीं है, परन्तु विचारों के अंकुश का फल है । इस विचार के अंकुश में लड़ने की प्रेरणा के बल की अपेक्षा ज्यादा बल की जरूरत है । तुम सरीखे आदमियों को इस प्रसंग से क्रोधाविष्ट बनी हुई दि. जैन समाज को शांति का पाठ पढ़ाना चाहिए ।यद्यपि मैं यह नहीं कहता कि लड़ना नियम से कसूर, पाप या कायरता है; नामदार महाराणा की जग-विख्यात टेक की रक्षा के लिये यदि वैसा प्रसंग आ पड़े तो उससमय यज्ञ में

---

[24] भावार्थ-- मर्द लोगों के जीने का जमाना तो अब गुजर गया हैं, क्योंकि सब जगह हिजड़ाओं का दौर - दौरा है । जिसकी छाया मात्र पड़ने से पथिक को गद्दी मिल जाती है, ऐसे हुमां पक्षी तो अब गुम हो गये हैं और उनका स्थान कौ : और चीलों ने ले लिया है । अर्थात् आकाश में उड़ने के लिए पैदा हुए मुनष्य **Intellectual** भी पथिककी आँखों में धूल झोंककर छल एवं त्वरा से लूटकर **Intellectual prostitutions** (बुद्धिविषयक व्यभिचार) कर रहे हैं ।गद्दीपति (अर्थात् सच्चे ज्ञानी और सच्चे राज्य नेता) घर पकड़कर बैठ गये हैं और लुच्चे गीदड़ोंने लड़ाई के हथियार बाँधना सीखा है । और ज्यादा क्या कहूँ ? आदमियत (मनुष्यत्व) ही लुप्त हो गया है और ईश्वर के मुल्क पर गधों ने अधिकार जमा लिया है ।

जरूर कूद पड़ना ,महाराणा तुम्हारी राजभक्ति की पहचान करें या न करें तुम इसकी परवाह मत करना । उदयपुर के गौरव के लिये जरूर लड़ना, परन्तु धर्मस्थान के लिए मत लडना । हिन्दु-मुसलमान के बीच में इतना ही अन्तर है कि हिन्दु अपने धर्म की उदार शिक्षाओं के कारण शांत रहना सीखता है तो मुसलमान अपने धर्म के कारण उन्मत्त् बन जाता है..—.। अच्छा यह तो बताओ कि केशरियाजी सम्बन्धी फाइलें महाराणा के पास रहती हैं या महाराजकुमार के पास ?

उत्तर -- महाराणा के पास। मुख्य- मुख्य सभी केस अन्त में इन्हीं के पास जाते हैं।

२५. प्रश्न -- तो तुम इन्हीं महाराणा के पास जाओ और अपनी अखंड टेक को अपने, राज्य में चलाने की प्रार्थना करो । दिगम्बर जैनों की मृत्युओं से भी यदि नामदार पिता-पुत्र में प्रेम स्थापित करने की जरूरत समझें तो तुम यह समझकर संतुष्ट हो जाना कि छत्रभंग की सूचना का सदुपयोग हुआ है, और छत्रभंग हो जाने का डर दूर हो गया है । महाराणा के दिल में यह बात बैठाओ कि जिस बल से गजकेशरी को हाथ से चीर डालते हो और तमाम भारतीय स्टेटों से अलग रहकर भी ब्रिटिश सरकार की गुलामी नहीं; बल्कि मैत्रीपूर्ण समानता निभा सके हो, उसी बल से उसी इच्छा-शक्ति एवं प्रेरणा से अपने कुटुम्ब में एकता स्थापित करो । इस एकता की सिद्धि में आनेवाले नीच आदमियों को निकाल कर फेंक दो और संयुक्त कुटुम्ब द्वारा 'छत्र' को और भी सुरक्षित, चिरंजीवी एवं बलवान बनाओ । ऐसा करने से तुम अकेली उदयपुर की स्टेट को ही नहीं, परन्तु भविष्य के हिन्दी साम्राज्य को भी बचा सकोगे और ऐसा न करने से, न चाहने पर भी भारत में से क्षत्रिय वंश का अंत लानेवाले हो जाओगे। आज उदयपुर की शासनप्रणाली ५ हाथों में बिखर गई है, उसको समेट कर एक करने की सुबुद्धि एवं बल नामदार महाराणा के हृदय में इस अमानुषिक घटना एवं प्रपंच से भी पैदा जो जाये तो दिगम्बरों ने मरकर भारत के सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय राज्य की और सीसोदिया वंश की रक्षा की -ऐसा समझकर उत्सव मनाना।

उत्तर-- आपका आभार मानता हूँ, परन्तु लड़ने के बल के साथ इतनी समझ नहीं होती और समझवालों (बुद्धिमानों) में लड़ने की शक्ति नहीं होती, यह सामान्य अनुभव है और यही मुझे आपकी सलाह को कार्य परिणत नहीं करने देता, फिर भी मैं एकबार विचार करूँगा और ऋषभदेवजी से प्रार्थना करूँगा कि वे इस प्रयत्न के लिये हम में समुचित बल देवें ।

२६. प्रश्न -- ठीक, परन्तु दिगम्बर मूर्ति को आंगी आदि आभूषण सजाने,केशर आदि से लादने से तथा भोग धरने से श्वेतांबरो को क्या लाभ है और दिगम्बरों को हानि क्या है ?

उत्तर -- महान,अतिमहान हानि है । मैं आपसे पहले कह चुका हूँ कि श्वेताम्बरों का ध्येय सांसारिक लाभ है और दिगम्बरों का ध्येय आत्मिक विकास का है । श्री ऋषभदेव की मूर्ति दुनिया की तरफ देखने के लिये आँखें खुली नहीं रखती है और इसी देव के अनुयायी तरीके खड़े हुए दोनों ध्यानस्थ पुरूष अथवा 'काउसग्गियाओं की' भी सांसारिक विषयों को देखने के लिये आँखे खुली नहीं है इस बात का उपदेश ये मूर्तियाँ हमको सदैव देती रहती हैं । सांसारिक प्रलोभन एवं मान-सन्मान स्वरूप "अलंकार" हमारे सामने हमारे इष्टदेव के द्वारा ही उपस्थित होते रहें और इससे हमारे आदर्शों एवं चारित्र पर भ्रष्ट असर होता रहे - इसकी अपेक्षा तो हम उस मूर्ति की बिलकुल पूजा ही न करें -- यह विशेष इष्ट है । दिन पर दिन ज्यादा ज्यादा भ्रष्ट होती जाती जनता के बीच में विकास का केवल एक ही स्थान बचा है और यदि वह भी भ्रष्ट किया जाय तो हमको असह्य हानि एवं दुःख हो- इसमें आश्चर्य ही क्या है?

तमाम राज्य के लुट जाने के बाद यदि टूटी-फूटी झोपड़ी भी सुरक्षित न रहने दी जाय और दुश्मन लोग उसमें टट्टी फेंके तो एक राजा को कितनी तकलीफ हो सो आप जरा विचार कर देखें ! जिस ईसा के हाथ में शांति की चिह्न रूप जैतून (Olive)की डाली रहती थी उसके बदले कोई गिरजाघर में उसकी छबि के हाथ में तलवार लटका दे तो सच्चे ईसाई को कितना दुःख हो ? रामचन्द्र की बगल में यदि कोई वेश्या को बिठला दे तो तमाम हिंदू समाज को कितना दुःख हो ? पाठशाला में यदि कोई घूस लेने, शराबखोरी या व्यभिचार या हत्या करने की शिक्षा दे तो क्या कोई भी सरकार उसे सहन कर सकेगी ? विवाह के समय मरने का गीत अथवा मृत्यु प्रसंग पर विवाह समय का गीत गानेवाले की कृतिको क्या कोई सहन कर सकेगा? और ज्यादा क्या कहूँ 'अतिथि' बनकर आनेवाले अब मालिक बन जाने का दावा कर और घर के मुख्य मालिक को ही जबर्दस्ती से भ्रष्ट करने लग जायें तो दुनिया का नीच से नीच या उदार से उदार आदमी भी क्या इस धृष्टता को सहन कर सकेगा.......?

अब रहा यह प्रश्न कि ऐसा करने से श्वेतांबरों को क्या लाभ है ? यह लाभ भी सांसारिक ही है । ऋषभदेव का मन्दिर "अतिशय तीर्थ"की तौर पर सारे भारत में प्रसिद्ध

है, और प्रतिवर्ष लाखों यांत्री इसके दर्शनार्थ यहाँ आते हैं। जहाँ मनुष्य के वजन के बराबर केशर सरीखी महंगी वस्तु एवं बड़ी-बड़ी रकमें चढ़ाई जाती हैं। यह सब आमदनी श्वेताम्बरों के ही हाथ में जाती है और इसका २५-३० प्रतिशत भाग मन्दिर के लिये खर्च किया जाता है, शेष सभी रकम श्वेताम्बर सत्ताधिकारियों के तले बिना के पेट में हजम हो जाती है - यह क्या कम सांसारिक लाभ है? फिर मन्दिर को सत्ता का केन्द्र बनाने के उदाहरण कहाँ कम हैं?रोमन चर्चो(Church) ने बादशाहों की सत्ता को नष्ट कर डाला - क्या यह बात इतिहास में नहीं लिखी है ? पाटण के मन्दिर में क्या कम राजकीय दाँवपेंच होते थे ? दुनियावी लाभ की तरफ ही जिन लोगों की आँखें खुलीं रहती हैं, उन लोगों के लिये ऋषभदेव सरीखे विख्यात तीर्थ की मालिकी के समान और दूसरा कोई क्या लाभ हो सकता है ?

मालिकी के हक्क को साबित करने के लिये मूर्तियों एवं शिलालेखों में भी फेरफार करना अथवा अपनी सरदारी में उत्सव करने के यथाशक्य अधिक से अधिक प्रसंग खड़े करना और उनके द्वारा सरकारी प्रमाणों में वृद्धि करते जाना -इत्यादि बातें इनके लाभ के लिये नहीं हैं तो और क्या हैं ? ऋषभदेवजी का एक दूसरा तीर्थ पालीताणा स्टेट में है जहाँ श्वेतांबरों को १ लाख रुपया टेक्स पड़ता , और उदयपुर राज्यके ऋषभदेव तीर्थ के लिये तो कौड़ी भी टेक्स नहीं देना पड़ता, बल्कि बहुत कुछ आमदनी हो जाती है। इस बात के प्रमाण में श्वेताम्बर सॉलीसिटर मोतीचन्द का कथन याद आ जाता है कि 'राज्य की तरफ से २।। लाख का जेवर श्वेतांबर को दिया गया है'।

२७. प्रश्न -- आज इस मन्दिर में श्वेताम्बर पूजन करते हैं तो वे क्या चक्षु चढ़ाये बिना ही मूर्ति का पूजन करते हैं ?

उत्तर -- हाँ, इस मन्दिर में ५२ जिनालय हैं, जिनमें सबकी सब मूर्तियाँ चक्षु रहित अर्थात् दिगम्बर बनावट की हैं और श्वेतांबर लोग उन्हीं की पूजा करते हैं। चक्षु तथा लंगोटरहित मूर्ति का ही पूजन करते हैं।, जो कि उनके धर्मशास्त्रों एवं परिपाटी के सर्वथा विरुद्ध है। मतलब यह है कि स्वार्थ इनको अपने धर्म का द्रोह करने को बाध्य करता है और दिगम्बर शास्त्रों का भी द्रोह कराता है, क्योंकि दिगम्बर मूर्ति को मुकुट-कुण्डल चढ़ाना दिगम्बर शास्त्रों की आज्ञा के विरूद्ध है। इसतरह से ये लोग केवल दुनियावी लाभ के लिये ही दोनों शास्त्रों की अवज्ञा कर रहे हैं।

हम लोग हथियार रखनेवाले प्रदेश में रहते हैं, शरीरबल में भी इन लोगों से कम नहीं हैं और लगभग गत एक शताब्दि से घोर अन्याय सहन करते आ रहे हैं, फिर भी किसी प्रसंग पर हम लोगों ने कैसी भी उद्दंडता नहीं की। मन्दिर पर हक्क हमारा है और उसको छिनते

देखकर केवल महाराणा साहब को अर्ज करके हम चुपचाप बैठे हैं सो भी अपने उस धर्म पालने के लिये , कि जो दुनियावी लाभों का भोग नहीं चाहता है। मन्दिर की व्यवस्था के लिये राज्य ने अर्थात् तत्कालीन श्वेताम्बर हाकिम ने किसी भी प्रकार का झगड़ न होने पर भी एक कमेटी बना डाली और उसमें २ सभ्यों को नियुक्त करने पर भी एक भी दिगम्बर को नहीं लिया, यद्यपि मन्दिर के मालिक तो दिगम्बर ही थे, इस बात को थोड़ी देर के लिये स्थगित भी रखा जाय तो भी दिगम्बर,श्वेतांबर, अन्य हिन्दु जनता - इन सबके लिये खुले हुए मन्दिर की व्यवस्था में श्वेताम्बरों की जनसंख्या की अपेक्षा दिगम्बर जनता बहुत ज्यादा है। इसकारण से भी कमेटी में दिगम्बर प्रतिनिधित्व अधिक होना चाहिये था। उसके बदले में एक अजैन और शेष श्वेतांबरों को नियत कर दिगम्बरों को बिलकुल टाल दिया गया था , उससमय भी अपने अधिकार की रक्षा के लिये हमलोगों ने महाराणा को अर्जियाँ दी थीं, परन्तु हमारी उन अर्जियों का अभी तक कोई कैसा भी परिणाम नहीं निकला। श्वेताबरों की युक्ति यही है कि वे सबकुछ काम अपने आप करते हैं और उसकी जिम्मेदारी राज्य के सिर डाल देते हैं। इंगलैंड में जिसतरह कानून तो अमुक थोड़े से लार्ड बनाते हैं और पार्लियामेंट या लोकमत के नाम से काम होते हुए दिखाया जाता है, ठीक वैसी ही यहाँ भी महाराणा, कुमार या हाकिमों का नाम तो सुनाई देता हैं, परन्तु भीतर-भीतर काम श्वेताम्बर करते रहते हैं। महाराणा साहब की आज्ञा को भंग करने में कुमार को हथियार बनाया जाता है और 'कुमार' को बचाने के लिये 'राज्य का हाकिम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। पीछे इस हाकिम को श्वेतांबर होने से -बचाने के लिये 'गला घोंटकर मार डालने' की नीति सिखानेवाले सॉलीसिटर की सहायता ली जाती है और यदि जो कुछ सॉलीसिटर की कमी होती है, उसे बम्बई के झवेरियों से पूरी की जाती है। पोस्ट मार्टम (**Post mortem**) सम्बन्धी बात सॉलीसिटर से नहीं बन पाई तो क्या उसको जवेरी द्वारा नहीं बनाई गई? इस जवेरी के मुँह से कहलाया गया है कि चार शवों को दिगम्बरों के कहने से उनके सामने ही डॉक्टरोंने [25] चीरकर सन्तुष्ट करदिया था की है एक भी पसली टूटी नहीं है और इसलिये

---

[25] ये जवाब -सवाल हो रहे थे, तबतक अर्थात ता. १३ मई तक डाक्टरी सर्टिफिकेट का हाल मालूम नहीं हुआ था, परन्तु इस लेख का उपसंहार लिखने के पहले ही **Post mortem Report** और घायलों का डॉक्टरी जाँच का सार हमको मिला था, जो कि 'जजमेंट' के अन्त में दिया गया है, उनको देखने से मालूम होगा कि १-१ मनुष्यों को २९-२९ तक घाव हुए थे, फिर पसलियों की तो बात ही क्या है, सारे शरीर के तमाम अंगो-उपांगो पर घातक घाव एवं चोटें हुई हैं। हड्डियां

मार तो पड़ी ही न थी ! सबकी सब पसली निकाल- निकाल कर बताने की बात कहीं बन भी सकती है क्या ? और श्वास रुँध जाने से मरण होने का विश्वास शरीर के किस अंग की कौनसी स्थिति बताकर दिया गया, उसका नाम क्यों नहीं लिया गया ? इसके सिवाय जब शरीर पर मार का चिह्न ही नहीं था तो फिर शरीर को चीरकर पसली दिखाने की क्या जरूरत हो सकती थी ? और यदि कुछ हुआ ही नहीं था और शंका होने योग्य कुछ था ही नहीं तो फिर अजमेर के डाक्टर एवं ऑनरेरी मजिस्ट्रेट सरीखे सज्जन को डाक्टरी मदद के लिये उदयपुर आते हुए क्यों रोकना पडा ? तमाम दुनिया में राज्य को नीचा दिखाने का काम सो भी राज्य ही की जिम्मेदारी और खर्च से चुपचाप होते देखते-रहते स्टेट के भोलेपन की क्या सीमा ?

२८. प्रश्न -- अब थोड़ी देर के लिये राज्य की बात एक तरफ रखकर यह तो बताओ कि आज से ९५ वर्ष पहले (संवत १८८९ में) महाराणा जुवानसिंहजी के लेनदार तथा दीवान श्वेतांबर बाफणा ने ध्वजादण्ड की क्रिया की, उससमय किस धर्म के धर्मगुरु के हाथ से वह क्रिया की गई ?

उत्तर -- दिगम्बर भट्टारक के द्वारा की गई थी। राज्य के श्वेताम्बर दीवान ने राज्य आज्ञा के नाम से और राज्यकर्मचारी की हैसियत से वह क्रिया कराई थी।

२९ प्रश्न -- उसके बाद ९० वर्ष के लम्बे अरसे में क्या कभी भी ध्वजादण्ड चढाने की जरूरत नहीं हुई ?

उत्तर -- नहीं, आज से ५ वर्ष पहले ध्वजादण्ड के जीर्णोध्दार की जरूरत उससमय (९० वर्षों के बाद) दिगम्बरों ने यह क्रिया करने के लिये महाराणा की स्वीकृति के लिये सबसे पहिले प्रार्थना की थी, जिसके सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है।

३०. प्रश्न-- और संवत् १८८९ के पहले ?

उत्तर -- हाँ ! इससे पहले संवत् १७४६ और संवत् १८६३ में ध्वजादंड क्रिया करने के प्रसंग आये थे और उससमय ये क्रियाएँ दिगम्बर भट्टारकों द्वारा की गई थीं, जिनका उल्लेख शिलालेखों में मौजूद है। परन्तु आपने ठीक याद कराया, यदि आप वर्षो की संख्या के ऊपर यथेष्ट ध्यान देवें तो आपको मालूम हो जायेगा कि ध्वजादंड करने का प्रसंग थोड़े थोड़े वर्षो के अन्तर से नहीं प्राप्त हुआ करता। सं. १८८९ के ९० वर्ष

तोड़ी गई हैं। खोपड़ियाँ चकनाचूर की गई हैं, हाथ-पैर के बंधन तोड़े गये हैं, वहाँ पसलियों की तो गिनती ही क्या है ? सम्भव है कि बम्बई से गये हुए श्वेताम्बर नेताओं ने जो रिपोर्ट चाही थी, वह अन्त में टिक नहीं सकी, क्योंकि उनने ता. ८ मई को समाचार पत्रों में जो रिपोर्ट प्रकट की है, वह आज सरासर झूठ सिद्ध हो जाती है।

बाद यह प्रसंग मिला था , यह तो आप जानते ही हैं और संवत् १७४६ तथा १८६३ के ध्वजादंड उत्सव भी बताते हैं कि ११७ वर्षों के बाद ही ऐसा प्रसंग मिला था। अब आश्चर्य की बात तो यह है कि १८६३ के बाद १८८९ में केवल २६ वर्षों के बाद ही ध्वजादंड कैसे जीर्ण हो गया होगा और राज्य के लेनदार एवं दीवान श्वेतांबर बाफणा साहब को ध्वजादंड उत्सव क्यों कर करना पडा होगा और इसी अवसर पर नक्कारखाना दाखिल कर ऐसी क्षुद्र बात का शिलालेख कैसे दाखिल किया होगा ?

३१. प्रश्न-- कृपया मेरे प्रश्नों के उत्तर में मुझसे ही प्रश्न मत पूछो । यदि इन प्रश्नों का जवाब आप चाहते हो तो श्वेतांबर धर्मगुरुओं अथवा लेखकों से पूछो ! इनने तो खुद रावण के कपाल पर श्वेतांबर जैन होने का शिलालेख ठोंक दिया है तो फिर तुम्हारे शांत योगनिष्ठ देवता पर श्वेतांबर टीका लगाने की बात क्यों-क्यों बार - बार पूछते हो ? अरे ! ये श्वेतांबर तो अभी श्वेतांबर दुनिया, श्वेतांबर सरकार, श्वेतांबर यूनिवर्सिटी, श्वेतांबर जेल और तो क्या-श्वेतांबर नरक भी घड़े बिना नहीं मानेंगे? मुसलमान क्या मुस्लिम राज्य स्थापित करने की कोशिश नहीं करते ? नामदार मोन्टेग्यू हीं को मानपत्र देने के बहाने के नीचे, तमाम भारतवर्षीय जैन समाज के नाम से क्या बम्बई के मुट्ठीभर श्वेतांबरों ने धारासभा में जैनों के लिये कुछ खास हक्कों के माँगने का प्रस्ताव पास करने की कोशिश नहीं की थीं? कौमी प्रतिनिधित्व की माँग सबसे पहले श्वेतांबरों ने की जिसने भारतीय राजनैतिक क्षेत्रों को गंदा और संकुचित बना दिया है और भारत की रही सही एकता को भी नष्ट कर डाला है और उसका अनुकरण पीछे से मुसलमानोंने किया - इससे क्या सिद्ध होता है ? धर्म के उन्माद के बदले में जहाँ तीर्थंकर गोत्र और बहिश्त की परियाँ मिलती हैं, उन धर्मों के लोग धर्मोन्माद के लिये कौनसा अच्छा या बुरे से बुरा काम नहीं कर सकते ? सत्ता एवं धन का लाभ किसको धर्म का हथियार उपयोग करने के लिये प्रेरित नहीं करता ? मि. जिन्ना और पटेल सरीखे भी जब अपने हृदय को स्थिर नहीं रख सके तो बेचारे श्वेतांबरों की बात ही क्या है? आजकल छापे का जमाना है; प्रिन्टिंग मशीनों का सुकाल है; प्रत्येक वस्तु पर हर कोई आदमी आसानी से छाप लगा सकता है और छाप ही न्यायानुमोदित प्रमाण है ! मंदिर में एकाध नक्कारखाना या एकाध मूर्ति या कोठरी और बनानेवाला व्यक्ति इतने कार्य के निमित्त से अपनी छाप अपना शिलालेख या 'पाटली' ठोंक देता है और साथ - साथ में उत्सव करके जनता में जाहिरात फैलाता है,यही प्रथा (अपनी छाप ठोंक

देने की प्रथा ही) जब कभी मालिकी सम्बंधी झूठा-सच्चा दावा करने में सहायभूत होती है।

जिस मूलनायक देव की मूर्ति तमाम विशाल मंदिर की प्राण है, उसके ऊपर तो कोई कैसा संवत् भी नहीं है और न कोई जाहिरात का चिह्न ही है तो दूसरी तरफ मंदिर के ऊपर की एक ध्वजा के जीर्ण होकर टूट जाने का बहाना निकालकर ध्वजा दूसरी चढ़ाने जैसे बिलकुल नगण्य प्रसंग के ऊपर उत्सव करके इसके करनेवाले की 'पाटली' लगाई जाती है और नक्कारखाना जैसी क्षुद्र वृद्धि को भी पत्थर या धातु में खुदा कर 'शिलालेख' लगा कर इस बड़े महाभारत प्रसंग एवं इस व्यक्तियों को अमर बनाने का ढोंग किया जाता है ! इसका परिणाम यह होता है कि भले ही किसी का इरादा प्रपंच करने का न हो, परन्तु फिर भी ज्यों- ज्यों समय निकलता जाता है और प्राचीन चिह्न घिसते या नष्ट होते जाते हैं तथा नये-नये चिह्न बढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों अन्तिम चिह्नों के लगानेवालों का स्वामित्व सिद्ध होता जाता है यह प्रत्यक्ष ही है, परन्तु मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि संवत् १८८९ में नक्कारखाना बनाने और ध्वजादंड चढ़ाने का महोत्सव (?) हुआ, उसके बाद के गत ९५ वर्षों में क्या एक भी सम्प्रदाय की तरफ से ध्वजादंड चढ़ाया ही नहीं गया ?

उत्तर -- बिलकुल नहीं। फिर भी लगभग १०० वर्ष के बाद होनेवाले इस उत्सव की खबर दूसरे ग्रामों के श्वेतांबरों को बिलकुल नहीं दी गई, यह बात भी इनका गुप्त षडयंत्र सिद्ध करती है। एक शिलालेख एक शताब्दि पहले लगा दिया गया था, सो भी सत्ता को उपयोग में लाकर और नक्कारखाना बनाने के निमित्त से और अब यदि इसी आशय का दूसरा शिलालेख लगा दिया जाये तब तो कायम का प्रमाण हो जाने से मंदिर पर अपना स्वामित्व ही सिद्ध हो जायेगा - यही इनका गुप्त रहस्य था। दिगम्बरों की ५ वर्ष पहले की गई अर्जी का ५ वर्षों तक भी फैसला न होने देने में इनका यही हेतु था। अन्त में राज्य के इन्साफ को ताक में रखकर गंदे राजकीय दाव-पेंचों को काम में लाया गया, वह भी इसतरह कि मगरा के हाकिम (जो एक राजपूत था उस) को थोड़े समय के लिए और जगह बदल (Transfer) दिया और उसकी जगह एक श्वेतांबर अमलदार को नियुक्त किया। इस नियुक्ति को मुश्किल से एक मास हुआ होगा कि इतने में अपनी हद में आये हुए इस मंदिर पर बिना जाहिर किये ही चुपचाप और श्वेतांबर हाकिम के लश्कर रक्षण में ध्वजादंड चढाने की क्रिया कर लेने का इन लोगों ने निश्चय कर डाला। ऐसा करते समय लश्कर के रक्षण और इससे दिगम्बरों की अनुपस्थिति होने की आशा - इन दोनों का लाभ लेकर

साथ ही साथ यद्यपि महाराणा साहब ने ८ महीने पहिले मुकुट-कुण्डल उतरवा दिये थे, फिर भी मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़ाने की योजना कर डाली थी और वह भी तब, जबकि महाराणा एवं पोलीटिकल एजेन्ट - इनमें से एक भी अपने स्थान पर न थे। परन्तु इस योजना को कार्य परिणत करते समय ही एक अचिन्त्य विघ्न -- **दिगम्बरों का सत्याग्रह** रूप से आ गया। भय दिखाने से सत्याग्रह ढीला हो जायेगा - इस आशा से लश्करों को हाथ दिखाने की आज्ञा हुई, परन्तु अनपढ़ फौजियों ने भयंकर सीमा तक हाथ दिखाये। इस परिणाम को देखते ही उनको भागना पड़ा और क्रिया जहाँ की तहाँ पडी रह गई। अब तो दो प्रकार के कर्तव्य सामने रह गये। एक तो - हत्याकांड को दबा देने का और दूसरा--ध्वजादंड चढ़ा देने का। बाहर के श्वेतांबरों ने नेतृत्व लेकर कानूनी सलाह तथा श्वेतांबर प्रोपेगेन्डा (आंदोलन) करने की योजना तुरंत की और महाराणा को समाचार पहुँचाने में भी अवरोध (बाधा) डालकर फौजी पहरे के नीचे यह योजना अमल में लाई गई। खूबी तो यह की गई कि श्वेतांबर लोग तो पुलिस का नाम लेवें और पुलिस महाराजकुमार का नाम आगे करे कि जिससे सबके सिर पर से यह बला टल जाये और यह दोष महाराणा एवं कुमार के वैमनस्य पर डाल दिया जाये। दूसरी तरफ से यह भी ध्यान रखा गया कि महाराणा, महाराजकुमार या रेसीडेन्ट इनमें से यदि कोई भी जाँच करें तो लश्कर पर जरा-सी भी आँच नहीं आने पावें - ऐसे ऐसे प्रमाण .....!

३२. प्रश्न -- जल्दी न करो। सारी दुनिया की आँख में धूल थोडे ही झोंकी जा सकती है ? सम्मेदशिखरजी के मुकदमे में आखिर को श्वेतांबर करामात का बुरी तरह से भंडाफोड हो गया था और उनकी बुरी तरह से हार हुई थी - यह सत्य भूल मत जाओ। हाँ, पहले यह तो बताओ कि तीज के दिन तुम दिगंबर लोग किसप्रकार के हथियार लेकर गये थे और पंचमी के दिन किसप्रकार का विरोध तुम लोगों ने किया था ?

उत्तर-- पंचमी के दिन दिगम्बरों की हाजिरी (उपस्थिति) होने का कहना ही मूर्खता एवं शठता का द्योतक है। तीज के दिन इतनी अधिक मार पड़ी थी और मृत्युएँ भी हो गई थीं, फिर भी कहीं से कैसी भी मदद या रक्षण नहीं मिला था, इन संयोगों में केवल दो दिन बाद ही मारने और मरने के लिये तैयार लश्कर के विरुद्ध दिगम्बर जायें। यह कल्पना ही असंभव एवं अनुचित है; और लश्कर उन्हें खड़ा रहने दे, यह भी बुद्धि का दुरुपयोग मात्र है। भले ही यह कहनेवाला पागल या शठ (दुर्जन) हो परन्तु सुननेवाला यदि दुर्जन न हो तो उसे ऐसी असंभव बात पर विश्वास कर दीवाना नहीं बन जाना चाहिये। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि तीज के दिन लश्कर पहुँचने की खबर मिलते ही लगभग १० दिगम्बरों का

डेप्यूटेशन ऋषभदेवजी गया था। लश्कर के विरूद्ध हथियार उठाना कोई सामान्य से सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य भी क्या पसंद करेगा। हम लोग लकड़ी या छत्री भी जब मंदिर में नहीं ले जाते तो हम मुट्ठी भर अहिंसा धर्मी लोग लश्करवाले जुल्मियों के विरुद्ध लड़ने जायेंगे - यह बात ही हमारे शस्त्र का प्रकार समझ लेने के लिये यथेष्ठ है। सारांश यह है कि हम लोग शान्त रीति से दरबारी हुक्म मांगने और दरबारी आज्ञा का पालन शांत सत्याग्रह से कराने गये थे।

३३. प्रश्न -- तब तुम लोगों ने लश्कर द्वारा पकड़े जाने और जेलों में ठूँसे जाने की आशा रखी होगी ?

उत्तर-- ऐसे कष्ट उठाने की किसी को चाह नहीं होती, परन्तु फिर भी जिस उद्देश्य से वहाँ लश्कर रखा गया था, उसकी सिद्धि में हम दिगम्बरों की उपस्थिति बाधक जरूर थी, और इसकारण पकड़कर जेलों में ठूंस देने का भय तो हमको होना ही चाहिये था। अकालियों तथा दूसरे - दूसरे सत्याग्रहों के परिणामों को कौन भारतवासी नहीं जानता ? ब्रिटिश सरकार (जो कि एक परदेशी सरकार है) उसने भी सत्याग्रहियों को इनका दावा ठीक है या गलत है - इसका विचार न करके शांतिपूर्वक पकड़कर उन्हें जेलों में भेज दिया था, परन्तु कोई कहीं भी हत्याकांड तो किया न था। तो फिर देशी राज्य, देशी फौज और कैसा भी क्यों न हो, आखिर को था तो जैन अमलदार ही, फिर तीर्थस्थान के मंदिर में और सो भी धर्मोत्सव के समय, ऐसी मार और मृत्यु की कल्पना स्वप्न में भी हम कैसे कर सकते थे ? हम लोगों को तो यही कल्पना थी कि ज्यादा से ज्यादा हम लोगों को जेल में डाल दिया जायेगा, परन्तु यदि हम लोगों को जेल भी हो जायेगा तो इससे महाराणा महोदय हमारी ५ वर्षों से सडती हुई अर्जी का फैसला शीघ्र करेंगे - ऐसी हमें आशा थी।

३४. प्रश्न -- परन्तु तुम्हारी अर्जी का फैसला तो आखिर में पाटणवाले पूनमचन्द करमचन्द कोटावाले ने दिया न ?

उत्तर-- हाँ जी ! पाटण की ध्वजा उदयपुर पर चढ़ाने का काम बहुत कठिन पड़ेगा। उदयपुर में कहीं पाटण की मीनलदेवी का राज्य थोडे ही है। बड़े बड़े बलवान मर्दों और बब्बर शेरों को भी बिना हथियारों के ही चीर फाड़ डालनेवाले वीर केशरी और वर्तमान तमाम राजवंशियों में अपनी टेक को निवाहनेवाले एकमात्र नरपति को कोई आसानी से अपमानित कर सकेगा क्या? धर्म-उन्मादवाले श्वेतांबर हाकिम को यदि जरा भी अकल होती अथवा देशाभिमान, राज्यभक्ति इनमें से एक भी गुण होता तो उसने अपने अन्नदाता की आज्ञा के विरुद्ध ध्वजा फहराने का कार्य करने के लिए आये हुए परदेशी को सहायता करने के बदले गिरफ्तार करके महाराणा की सेवा में ला खड़ा किया होता। क्या राज्य-सत्ता पर

साम्प्रदायिक-सत्ता चलेगी ? और राज्य का वेतन खानेवाला राज्य सत्ता को बट्टा लगाने में एक परदेशी को मददगार बनकर राज्य में सानन्द रह सकेगा ? महाराजकुमार को क्या इतनी हद तक खिलौना बना लिया जायेगा, इत्यादि आशाओं को रखनेवाले मात्र अपने आपको धोखा देते हैं। सच्चे क्षत्रिय वीर बहादुर होने से ही बेदरकार (**Indifferent because un-calculative**) होते हैं। उनकी इस उदार प्रकृति का लाभ खटपटिया लोग मूषकवृत्ति से लेने लगते हैं - यह बात ठीक है। परन्तु जब स्वाभिमान का प्रश्न उठता है, तब क्षत्रिय वीर किसी की भी परवाह नहीं करते और धन-तन कुटुम्ब इत्यादि सबका भोग देकर भी **'छत्र' एवं 'ध्वजा' की कीर्ति को अखण्ड बनाये रखते हैं**। इससमय बाप और बेटा तो क्या , परन्तु जन्म के शत्रु को भी वे प्रेमपूर्वक आलिंगन करते हैं और राज्य की कीर्ति को सामान्य लक्ष्य (उद्देश्य) बना देते हैं। मुझे तो विश्वास है कि दिगम्बरों की हत्या हुई, इसी घटना द्वारा ही कुदरत ने राज्य की संरक्षा का प्रारम्भ किया है। यह घटना हम लोगों के लिए अत्यंत त्रासदायक होने पर भी जो '**Divide and rule**'(भेद डालो और राज्य करो) की नीति खेलनेवाले बीच के आदमियों का हेतु हमारे सिरताज महाराणा एवं महाराज कुमार के हृदय में धुस जायेगा तो उदयपुर राज्य हमेशा के लिए बच जायेगा- यही हमारा बड़ेसे बड़ा दिलासा एवं बदला है। परमात्मा की गति अचिंत्य होती। परमात्मा के सामने दिये गये भोग तात्कालिक एवं वैयक्तिक नहीं, किन्तु दूर का एवं विश्व-व्यापक परिणाम लाये बिना नहीं रह सकते - इस बात में हमको श्रद्धा है। हिन्दू, मुसलमान, जैन, अजैन आदि सब जिसको नमस्कार करते हैं - ऐसे श्री ऋषभदेव जी की चमत्कारी मूर्तिने यह बात पहले ही से मौन भाषा में कर दी है कि :--

"घर में ठीक-ठाक करो, दूसरी सभी चिन्तायें मुझे सौंप दो!"

३५. प्रश्न -- यदि ऐसी ही तुम्हारी भावना है तो वह समदृष्टि भावना होने से अवश्य सफल होनी चाहिये, परन्तु कहा तो यह जाता है कि तुम्हारे पंडित ने तो दरवाजे में अपने हाथों को आड़ा फैलाकर रास्ता रोक लिया था और सबको लड़ने के लिए प्रेरणा की थी। क्या इसी को सत्याग्रह कहते हो, सत्याग्रह में तो सत्य का आग्रह ही मूल में होता है।

उत्तर -- महाशय, आरोपी यदि ऐसा न कहे तो और क्या कहे? उन लोगों का मरण क्यों हुआ, इसका कोई न कोई कारण तो उन्हें बताना ही पड़ेगा और ऐसा कहनेवाला यह बात बखूबी जानता है कि कहाँ ये सब पढ़नेवाले केशरियाजी जाकर मन्दिर का दरवाजा देखने बैठेंगे और किसको मालूम है कि प्रत्येक दरवाजे एवं स्थान पर फौजी पहरा था ? जिसने दरवाजा देखा है और देखेंगे वे भली प्रकार जान सकेंगे कि इसतरह एक आदमी के

हाथ फैलाने से दरवाजा बन्द कभी हो ही नहीं सकता।

असली बात यह है कि इन पर लकड़ियों द्वारा भारी चोट पहुँचाकर जमीन पर पड़ने के बाद इन्हें बड़ी निर्दयता से कुचल - कुचल कर मार डाला गया, क्योंकि उनने नामदार महाराणा की आज्ञा स्मरण कराने की हिम्मत की थी और सत्याग्रह का नेतृत्व ग्रहणा किया था। दयाधर्म के शास्त्र में पारंगत एवं शास्त्रों के शिक्षक इस पण्डित ने शांति - प्रेमी एवं संयमी होने से सत्याग्रह स्वीकार कर उसका नेतृत्व ग्रहण किया था। सबसे मुख्य बात तो यह है कि राज्य आज्ञा ही जब हमारे पक्ष में थी तो फिर हमें तात्कालिक उपद्रव करने का कारण भी क्या हो सकता था? कानून जिसके विरुद्ध में हो उसी को धांधल मचाने का लाभ उठाने का प्रयोजन हुआ करता है। वकील की चालबाजी तो यह थी कि आक्रमण की सत्य घटना को छिपाने के लिये दिगम्बरों पर भाग खड़े होने का आरोप लगाया गया और यह भगदड़ घातक कैसे हुई-यह दिखाने के लिए पण्डितजी को दरवाजा रोकते हुए बताना पड़ा।

३६. प्रश्न -- केशरियाजी के मन्दिर पर श्वेतांबर मालिकी जमाने के लिये पद्धतिपूर्वक योजना होने का तुमने उल्लेख किया है तो इस सम्बन्ध में बम्बई प्रान्त में भी कुछ न कुछ आन्दोलन तो जरूरी ही दिखाई देना चाहिए?

उत्तर -- आन्दोलन! महाशय, कुछ लोगों का तो यह आन्दोलन करना ही धंधा हो गया है। यदि समाज में कुछ न कुछ थोड़ी बहुत लड़ाई न होती रहे तो इन्हें पूछेगा ही कौन? साधु को विजय - मोह द्वारा और गृहस्थ को धर्म - प्रेम का ढोंग दिखाकर प्रसिद्ध होने की इच्छा रहती है, क्योंकि ऐसी प्रसिद्धि द्वारा उनका धंधा चमक उठता है और अनेक तरह से भोली-भाविक प्रजा से चांदी ढाली जाती है। ऐसे पारस्परिक झगड़ों की आड़ में धार्मिक उत्तेजना (जोश) फैलाई जाती है, जिससे तरह - तरह के फंड इकट्ठा हो जाते हैं, फिर बाद में फंड रक्षकों की योजना, और हाथ में धन आते ही पत्रकारों (संपादकों), वकीलों और दलालों को अपने वश में किया जाता है। इस शक्ति द्वारा वे तमाम समाज पर आसानी से अधिकार पा जाते हैं! इसतरह से अनेक आदमी लखपती बने हैं और फिर कुछ समय बाद जैसे के तैसे कंगाल हो गये! बीसियों अक्ल के दुश्मन दलाल इसतरह से मालामाल हो गये! सैकड़ों धार्मिक योग्यता से सर्वथा रहित एवं आचारहीन साधु समाज के मुख्य सेनापति बन गये।

खुद केशरियाजी के उत्पात के विषय में भी आनन्दसागरजी नामक साधु बहुत समय से जमीन-आसमान एक कर रहा था और उसकी उपस्थिति में ही निहत्थे दिगम्बरियों पर भीषण आक्रमण किया गया और ४ आदमियों का अमानुषिक रीति से वध किया गया।

मन्दिर में झूठे-मूठे शिलालेख लगा - लगाकर मालिकी का हक्क सिद्ध करने के लिये सम्मेदशिखरजी केस में इन लोगों की तरफ से कहीं कम चालबाजियाँ नहीं खेली गई थीं, परन्तु अन्त में सभी शिलालेखों का भंडा-फोड़ हो गया और उनकी चालबाजियाँ प्रकट हो गईं। इस केस में भी इस सॉलीसिटर का हाथ था। उदयपुर एवं धुलेव जाकर और सब ठीक-ठाक कर झूठी रिपोर्ट इसी सॉलीसिटर ने आल इण्डिया श्वेतांबर जैन कान्फरेन्स को भेजीं थीं और स्वयं कान्फरेन्स ऑफिस ने अखबारों में झूठी बातों को प्रसिद्ध किया था। इससे सिद्ध होता है कि उदयपुर श्वेतांबर समाज की सहाय में ऑल इण्डिया श्वेतांबर कान्फरेन्स ऑफिस, उनका सॉलीसिटर, प्रतिनिधि, मुनि, और श्रीमंत जौहरी सब तरह से तैयार थे।

३७. प्रश्न -- श्री मोतीचन्द कापड़िया सदृश बुद्धिशाली एवं धर्मज्ञ पुरुष उदयपुर केशरियाजी जाकर पूरे जिम्मेदार व्यक्तियों से मिलकर ३-३ दिवस तक ठहर कर जाँच करने के बाद पत्रों में सूचित करते है कि 'श्री केशरियाजी' तीर्थ के ऊपर उदयपुर का श्वेतांबर संघ देख-रेख रखता है और पीछे से दूसरी जगह लिखते है कि "लगभग एक शताब्दिबाद होनेवाले इस ध्वजादण्ड उत्सव में भाग लेने के लिये उदयपुर से कुल १४ जैन केशरियाजी गये थे और दूसरे यात्रियों को मिलाकर कुल ७५ श्वेतांबर उपस्थित थे"। अब तुम तो कहते हो कि अकेले उदयपुर नगर में श्वेतांबरों के१००० घर हैं और पीछे यह भी कहते हो कि उदयपुर से मात्र १० ही दिगम्बर केशरियाजी गये थे। अब तुम्हारे और श्री मोतीचंदभाई के कथनों को मिला दें तो उससे यह मालूम पड़ेगा कि उत्सव प्रसंग पर उदयपुर से कुल १४ जैन वहाँ गये थे जिनमें से १० दिगम्बर थे और बाकी के ४ श्वेतांबर थे और बाहर ग्रामों से यात्री तरीके आये हुए ७१ श्वेतांबर थे।

उत्तर -- असत्य एवं सत्य का मिलान करने से कहीं सत्य परिणाम नहीं निकाला जा सकता। साहब! आप मेरा कहना सच मानो या न मानो, परन्तु आप अकेले श्री मोतीचंदभाई सॉलीसिटर को सच्चा मानो तो भी मुझे तो कोई विरोध नहीं है। केशरियाजी तीर्थ पर जो संघ देख-रेख रखता है वह संघ इतने बड़े तीर्थक्षेत्र में १०० वर्ष बाद होनेवाले ध्वजादंड उत्सव के समय मात्र ४आदमी भेजे। यह बात यदि सत्य हो तो इसका अर्थ क्या हुआ ? सिर्फ यही कि ऐसे मुख्य उत्सव में भाग लेने की स्वाभाविक वृत्ति को उनने इसलिये दबा दिया था कि श्वेताम्बरों को यह क्रिया चुपचाप बिना किसी को खबर दिये ही कर डालनी थी, जिससे किसी प्रकार की भीड़ आदि न हो और यदि कदाचित दिगम्बर

पक्ष उनका विरोध भी करें तो उनको दबाने के लिये पहिले ही से लश्कर को मंदिर में जमा कर रखा था, परन्तु इसतरह अनुमान करने की अपेक्षा इस सॉलीसिटर के ही निम्नलिखित शब्दों पर से ही सत्य क्यों न शोधा जाये ?

ता. १२ के 'प्रजामित्र' में प्रकट हुई श्री मोतीचन्द कापड़िया की रिपोर्ट के पहले ही पैरेग्राफ में लिखा है कि --'श्री केशरियाजी तीर्थ के ऊपर उदयपुर का श्वेतांबर संघ देखरेख रखता है'।

अब इसी लेख में पांचवे पैरेग्राफ के इन शब्दोंपर ध्यान दीजिये--'केशरियाजी तीर्थ का प्रबन्ध उदयपुर **स्टेट के हाथ में है "**

इसी पैरेग्राफ में आगे लिखा है कि **यह तीर्थ श्वेतांम्बरों का है, इसमें किसी भी प्रकार की शंका नहीं है !** और अन्त में लिखा है कि **मुकुट-कुण्डल स्टेट की आज्ञा से ही चढ़ाये जा रहे थे।**

अब महाशय! एक ही सॉलीसिटर अपने एक ही लेख में एक ही बात को बिलकुल विरुद्ध दो तरह से प्रगट करते हैं। कभी तो कहते हैं कि **"प्रबन्ध उदयपुर स्टेट के हाथों में है** और कभी कहते हैं कि 'देखरेख उदयपुर का श्वेतांम्बर संघ रखता है"। देखरेख और प्रबन्ध में क्या अन्तर है सो तो वे ही जानें, परन्तु देखरेख या प्रबन्ध इन दोनों में से एक भी यदि श्वेतांबरों के हाथ में हो ओर उसके साथ में उनके कथनानुसार मालिकी भी निःसंदेह उन्हीं की हो तो फिर मुकुट-कुण्डल चढ़ाने की आज्ञा स्टेट से लेने की क्या जरुरत थी ? मान लिजिये कि उन्हें आज्ञा मिल भी गई थी तो फिर जब दिगम्बरोंने उसे देखना तो फिर आज अपनी सफाई में इतने लम्बे चौड़े लेख तो लिखे जा रहे हैं परन्तु उस समय उस परवानेकी नकल या तारीख बताने के बदले-उन्हें मरने-मारने की नौबत क्यों खड़ी की .....? यदि उन्हें स्टेट की तरफ से परवानगी मिली हो थी, फिर अपनी मालिकी एवं देखरेखवाले मन्दिर में अपनी धार्मिक क्रिया करने के लिए फौज रखने की क्या जरूरत थी ? **इत्यादी किसी भी प्रकार से देखो तो श्री मोतीचन्द की दलीले सब प्रकार से निःसत्य एवं बनावटी सिद्ध हुए बिना नहीं रहतीं।**

(१) जब मंदिर निःसंदेह (?) श्वेतांबरों की ही मालिकी का है फिर उसमें स्टेट कहाँ से आ घुसी ? (२) उसपर भी धार्मिक क्रिया करने में उसकी आज्ञा की जरूरत कैसे पड़ी? (३) मन्दिर का प्रबन्ध स्टेट के साथ में कहाँ से जा पहुँचा ? जिस बात की सत्यता के लिए सौ टका जोर दिया जा रहा है, उसमें एक टका भी सत्यता न हो -इसका कारण इनका वकालतपना है या श्वेताम्बरीपना ?

फिर भी यह सुनकर आप कम चकित न होगे कि श्री मोतीचन्दभाई के स्टेटमेंट

बिलकुल झूठे हैं - ऐसा इनको विश्वास भी है फिर भी इनने ऐसा झूठा आन्दोलन खडा किया है, क्योंकि यदि ऐसा न होता तो इसी तारीख के गुजराती लेख में लिखी हुई अनेक बाते अंग्रेजी लेख में बिल्कुल ही छोड़ दी गई हैं - ऐसा नहीं होता। गुजराती लेख तो मुंबई प्रांत की जनता की आँख में धूल झोंकने के इरादेसे लिखा गया था; वह कहीं राजपूताने में थोड़े ही पढ़ा जाता, वहाँ तो 'डेलीमेल' पढ़ा जाता है। 'डेलीमल' में श्वेतांबर पक्ष की तरफ से कहीं मालिकी, प्रबन्ध एवं परवानगी की गप्प लिखी जाती तो महाराणासाहब, कुमार एवं रेसीडेन्ट साहब उन पर रुष्ट हुए बिना नहीं रहेंगे - यह बात सॉलीसिटर को ज्ञात थी। इसतरह इरादापूर्वक तथा कायदा एवं हकीकतों का ज्ञान होने पर भी बिलकुल झूठी बातें फैलाने का प्रयास उनने किया है और अपनी भयंकरता को छिपाने के लिए साधुता एवं श्वेतांबर-दिगम्बर पक्षों में शांति स्थापित करनेवाले एवं हितैषी का ढोंग रखकर कहते फिरते हैं कि दिगम्बरों ब्दारा श्वेतांबरों के सिर पर हत्या करने का दोष डालना दोनों समाजों को लड़ाने की बाजी है। मानो दुनिया भर का न्याय, कोर्ट, कानून आदि सबकुछ श्वेतांबरों के यहाँ गिरवी रखा गया हो ? मैं तो विश्वासपूर्वक मानता हूँ कि दुनिया ता. ४ को केशरियाजी में होनेवाले अमानुषिक हत्याकांड का, राज्य के लश्कर दुरुपयोग करने का और इरादापूर्वक झूठा आन्दोलन करने का आरोप श्वेतांबरों पर डाले बिना न रहेगी। दुनिया का धार्मिक वृत्तिवाला वर्ग धर्म को हत्याकांड, निन्दा और प्रपंच करने का साधन बनाने के लिये श्वेतांबरों को दोष देगा। इन सब कारणों से श्वेतांबरों को अधिकारियों एवं सामान्य जनता के समक्ष अपना दोष स्वीकार कर सिर झुकाना पड़ेगा और यदि ये लोग जनता के बीच में रहने का हक्क करते हैं तो उन्हें जनता के निर्णय को भी सिर झुकाकर सुनना पड़ेगा।

अच्छा तो यह हो कि दिगम्बर श्वतोम्बर इस झगड़े को तय करने के लिये अमूर्तिपूजक समाजों में से कुछ प्रतिनिधि चुनकर **non-official enquiry** करावें। अमूर्तिपूजक श्वेतांबरों में से २, अमूर्तिपूजक दिगम्बरों में से २ और आर्य समाजी, मुसलमान, ईसाई, पारसी, इन सबका १-१ मेंबर लेकर एक संयुक्त मंडल बनाया जाये और उसको उदयपुर भेजकर इस मामले की जाँच कराई जाये। इस मेरी सूचना को यदि श्वेतांबर लोग स्वीकार करें तो न्याय का निकालना सरल हो जाये और स्टेट की भी मुसीबत बचे, यदि वे लोग इस सीधी - सादी सलाह को अस्वीकार करेंगे तो जनता इनका स्वरूप और भी स्पष्ट रीति से देख सकेगी।

३८ प्रश्न -- मालूम पड़ता है कि तुम 'न्यायी दुनिया' नाम की कोई वस्तु देख सके हो अथवा ऐसे स्वप्न में रहते हो। भले आदमी - तटस्थ कौमों के प्रतिनिधियों द्वारा जाँच कराना तो दूर रहा, परन्तु दोनों पक्ष के संयुक्त डेप्युटेशन

द्वारा जाँच कराने के ऑफर (Offer) को भी श्वेतांबर कॉन्फरेन्स नहीं स्वीकार सकी - यह बात क्या तुम आज तक नहीं जान सके हो ? ता. ९ को मुंबई की दि.जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीने श्वेतांबर कॉन्फरेन्स को लिखा था कि जो वे लोग सत्य शोधना चाहते हों तो, दिगम्बरों का डेप्युटेशन जानेवाला है, उसके साथ वे भी अपने मेम्बर भेज देने की स्वीकारता देवें।

इस पत्र को ५ दिन तक दबा रखने (कि जिससे अकेला दिगम्बर डेप्युटेशन भी वहाँ जाने में इतने दिन और रुक जाये, जिससे उदयपुर में सब कुछ ठीक-ठाक कर लिया जाये) के बाद ता. १४ को मेहरबान श्वेतांबर सत्ताधारी मंडल शहंशाही तौर पर नकार में लिखते हुए कहते हैं कि 'वे अभी इस प्रश्न पर विचार भी नहीं करना चाहते हैं'। इसका कारण यही है कि मृत्यु के कारण की जाँच करने में तो उल्टा उन्हें मंदिर की मालिकी का दावा भी छोड़ देना पड़ेगा, - यह बात वे भलीभाँति जानते हैं और इसलिये कॉन्फरेन्स के पत्र में दिगम्बरों पर आरोप लगाना पड़ा था कि "You have made this occurance as the occassion ascertaining certain claims which are diputed. श्वेतांबर कॉन्फरेन्स के इस जवाब के विषय में तुम कुछ कहना चाहते हो क्या ?

उत्तर -- मृत्यु की बात के साथ मंदिर की मालिकी का सवाल मिला देने का दाँव-पेंच श्वेतांबरों ही ने किया है, क्योंकि वैसा किये बिना हत्याकांड के आरोप में वे छूट नहीं सकते हैं। उनके धाराशास्त्री का ता. ८ का पत्र ही यह बात सिद्ध कर देता है। अस्तु परन्तु दलील के लिये मान भी लीजिये कि यह मिलावट दिगम्बरों की तरफ से ही हुई है, तो मैं पूछता हूँ कि 'मालिकी तो श्वेतांबरों ही की है इस सम्बन्ध में किसी को जरा भी सन्देह न करना चाहिये। ऐसा इनका धाराशास्त्री लिख चुका है तो फिर दिगम्बर इस प्रसंग पर मालिकी के सवाल का निर्णय करना चाहें, इसमें श्वेतांबरों के लिये आपत्तिकारक क्या था ? इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि श्वेतांबर लोग विश्वासपूर्वक मानते हैं कि मंदिर तो दिगम्बरों का ही है।

दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि मालिकी सम्बन्धी एक नया झूठा प्रमाण पैदा करने के लिये उन्हें ता. ४ को जबरदस्ती करने की योजना करनी पडी। तीसरी बात यह सिद्ध होती है कि यह सारा प्रपंच पकड़ा न जाये, इसलिये दिगम्बरों एवं तटस्थों की मार्फत या इनकी उपस्थिति में जाँच कराना इनको अभीष्ट नहीं है। अस्तु, अंत में पाश्र्वनाथ हिल केस में जैसा हुआ कि सत्य छिपा नहीं रहता, वह तो छानपर चढ़कर बोलता है

- इसीतरह यहाँ भी बोलेगा। उस केस में उनने कितने ही बनावटी लेख एवं सनदे पेश की थीं, जिनकी सच्चाई कोर्ट ने स्वीकार नहीं की और प्रत्येक अपील में प्रिवी (Privy) काउन्सिल तक में उनके प्रमाण झूठें और जाली सिद्ध हुए थे।

३९. प्रश्न -- परन्तु स्टेट यदि मंदिर एवं हत्याकांड- इन दोनों में से एक का भी फैसला नहीं करे तो ?

उत्तर -- सबसे पहले मरा हुआ दिगम्बर ब्रिटिश प्रजा है, इसलिये ब्रिटिश प्रजा तो न्याय देगी ही ! परन्तु मैं नहीं मानता कि स्टेट को न्याय न देने की स्थिति में छोडनें से श्वेतांबरों को कोई लाभ है। स्टेट में ही केस चलाना ठीक है - ऐसा समझकर ही वे लोग साक्षियों को धमकी दे रहे हैं कि जिससे कोई भी प्रत्यक्ष देखी हुई घटना को कहने के लिये बाहर न आवे। हाल ही में एक दिगम्बर को भी गिरफ्तार किया गया है, केवल आँखों देखी हकीकत को कहने के कसूर के बदले में ! एक और दूसरे को पकड़ने की कोशिश की जा रही है। इन संयोगों में स्टेट की अदालत में सत्य को दबा दिया जाय - यह असंभव नहीं है। रेसीडेन्ट साहब स्टेट पर रिपोर्ट के लिये जोर डाल रहे हैं, परंतु उनको भी रिपोर्ट भेजने में विलम्ब किया जा रहा है। जिस मजिस्ट्रेट को यह काम दिया गया था, उसका एक श्वेताम्बर श्रीमन्त के साथ ३ पीढ़ी से सेठ-मुनीम का संबंध चला आता है और उसका ही अन्न खाकर वह पढ़ा लिखा और इस नौकरी पर पहुँचा है और वे सेठ देवीलाल तथा लक्ष्मणसिंह के समधी लगते हैं - ये सब बातें क्या सूचित करती हैं। यही कि स्टेट तरफ के फैसले के रूप में श्वेतांबर पक्ष की मनचाही बातें रख दी जायें और बाद में ब्रिटिश न्याय लेना भी अशक्य बना दिया जाये।

४०. प्रश्न -- जब जान और धर्म ये - दोनों ही स्टेट में सुरक्षित नहीं है, तो फिर इन दोनों सर्वश्रेष्ठ खजानों की रक्षा के लिये मालकियत एवं मंदिर और राजा-प्रजा सम्बन्धी खोटे मोह को छोड़कर मिलकियत, सत्ता और कानून - इन तीनों से रहित आध्यात्मिक राज्य बसाने के लिये सब दिगम्बर एक दूसरा स्थान क्यों नहीं ढूँढ लेते ?

उत्तर -- आखिर में संभवतः यही करना पड़ेगा। श्रीमन्त कानूनी एवं सत्ताधारियों के हत्याकांडों द्वारा जब उनका जीवन वहाँ अशक्य हो जायेगा, तभी इन सबकी तरफ से उदासीन होकर दिगम्बर लोग नूतन क्षेत्र में नूतन प्रणालिका स्थापित करेंगे और तभी यह जीवन जीने योग्य बनेगा। आज तमाम दुनियाँ मनुष्य-रक्त की प्यासी बन गई है: जिससे न्याय, धर्म, अध्यात्म, कुलीनता आदि सबकुछ हास्य के विषय बन गये हैं ; इन्हीं नामों द्वारा नुकसान के साथ-साथ अपमान भी किया जाता है। इन संयोगों न्याय-प्राप्ति में की क्या आशा रखना ?

प्रश्नकर्ता का अंतिम कथन

४१. प्रश्न -- फिर देशी राज्यों से तो ऐसी आशा त्रिकाल में भी नहीं रखी जा सकती । जिनके कठोर हृदय में निर्बलों का खून पीने का ही निश्चय भरा हुआ है, उन लोगों में तो कभी न कभी न्याय, धर्म, अध्यात्म का भान आना संभव भी है, परन्तु जिनको अच्छे या बुरे के विषय में कुछ स्वतंत्र निश्चय नहीं है और दूसरों के हाथों के खिलौने बने फिरते हैं अथवा मुर्दे की तरह पड़े पड़े सड़ा करते हैं - ऐसी स्टेटों का तो त्रिकाल में भी पुनर्जन्म पुनरुद्धार नहीं होगा । वे लोग जीवित हैं सो दूसरों की सलामती के साधन स्वरूप ! तुम एक संप्रदायानुयायियों को तो देशी राज्य ऐसे ही एकाध प्रसंग पर खटकते हैं, परन्तु भारतमाता को तो रग-रग में और क्षण क्षण में वे खटकते हैं । दूसरों के हथियारों से रक्षित देशी राज्य और विकृत बने हुए धर्मपंथ - ये दोनों मद (घमंड) पर ही जीवित रह सकते हैं, इसलिये उन दोनों के जीवन मनुष्यत्व एवं राष्ट्र के लिये महान भयरूप हैं ।

* * * * * * *

बाद में तो, इस गृहस्थ की जाँच भी समाप्त कर दी । क्योंकि मुझे शांति की जरूरत थी और किसलिये फैसला लिखने के लिये । इन्साफ तौलने का काम दुनिया की सरकारों के यहाँ ही गिरवी नहीं रखा गया - ऐसीमेरी श्रद्धा है और न्याय तोलने के लिये आवश्यक बुद्धिविषयक और हृदयविषयक योग्यता आधुनिक किसी भी सरकार के परवाना(Licence) के ऊपर आधारित भी नहीं है ।

६. नवयुग का निर्णय

-: इन्साफ, सजा, राज्य - इन संस्थाओं की उत्पति :-

।। तात्विक आधार भूमि ।।

'न्यायकारी' का अन्तःकरण बदलेगा, तभी नवयुग का जन्म होगा ।

('नवयुग' की प्रेरणा से इस फैसले के लेखक - श्री.वा. मो. शाह)

(१) नवयुग का वास्तविक स्वरूप

फिनिक्स पक्षी जब उड़ने में असमर्थ हो जाता है और आकाश में देर तक ठहरने की शक्ति गँवा देता है, उससमय वह अपने आपको जलाकर अपनी भस्म में से ही नये शरीर के साथ पुनर्जन्म लेता है।

यह फिनिक्स और कुछ नहीं है , परन्तु जगत का 'व्यवहार' है । जगत का व्यवहार जब ऐसी दशा में आ जाता है, जिस परिस्थिति में उसका आगे चलना अशक्य एवं असंभव हो जाता है, उससमय एक उग्रतम उत्पात असाधारण अकस्मात् हो जाता है, जिससे 'पुराना व्यवहार' एवं 'पुराना अन्तःकरण' जलकर भस्म हो जाता है और एक 'नया व्यवहार' अपने पंख फैलाकर निकल पड़ता है - इसी का नाम है **'नवयुग'**।

(२) यथार्थ परिज्ञान के लिए समष्टिभाव (Cosmic Consciousness)

एक समय ऐसा था कि मनुष्य अपने ऊपर आक्रमण कर चोट पहुँचाने वाले पर बदले में चोट करके सन्तुष्ट हो जाता था। यह समाज का व्यवहार था और व्यक्ति का अन्तःकरण था। 'चोट करने' के दो ही परिणाम होते हैं, - (१) वास्तविक हानि और (२) मनुष्य का व्यक्तिगत भाव अर्थात् "अंहकार" को लगा हुआ धक्का, कि जिसमें से 'बैर' की वृत्ति प्रगट होती है।

चोट पहुँचानेवाले को बदले में चोट पहुँचाने से कहीं पहले व्यक्ति की वास्तविक हानि मिट नहीं जाती है, वह तो ज्यों की त्यों रहती है, परन्तु उसके "अहंकार" का समाधान तो हो ही जाता है अर्थात् 'चोट' के दो परिणामों में से एक तो नष्ट हो जाता है और दूसरा ज्यों का त्यों बना रहता है।

परन्तु दोनों व्यक्तियों को पहुँची हुई वास्तविक चोट यह कहीं केवल इन दोनों पुरुषों को ही हानिकारक है, यह बात नहीं है, यह सारी मनुष्य जाति का नुकसान है, परन्तु ऐसा ज्ञान **"समष्टि- भाव"** वाले पुरुष को ही होता है, **'व्यक्ति-भाव'** वाले को नहीं होता। यह ज्ञान स्वयं अपने बैर का बदला लेने के अन्तःकरणवाले युग में नहीं होता, आधुनिक युग में

भी नहीं होता कि जिस युग में बैर लेने की सत्ता 'व्यक्ति' के हाथ में से निकलकर राजा एवं 'राज्य' के हाथ में चली गई है।

३) राजा, प्रजा, राज्य, हक, धर्म, कानून, गुनाह, पाप इत्यादि की अपनी-अपनी मर्यादायें --

एक बलवान व्यक्ति ने दूसरे व्यक्तियों पर आक्रमण किया और उन्हें हराकर उन पर अपना अधिकार जमा लिया, अपने आपको **"राजा"**(Masculine) तरीके प्रसिद्ध किया, जीती हुई जनता का **"प्रजा"**(Feminine) नाम रखा और भोक्ता-भोग्य के बीच के व्यवहार को **'राज्य'**(Neuter) संज्ञा दी।

भोक्ता के मन, वचन, काय जो कुछ काम करें, वे उसका **'हक्क'** कहलाई। भोक्ता के हक्क को स्वीकार करना और उसे स्वीकारने में भी प्रसन्नता बताना, यही भोग्य का **'धर्म'** (duty) कहलाई।

यह 'प्रभावना' सबसे पहले बल के प्रमाण से पैदा हुई थी, परन्तु बाद में बहुत काल तक इस प्रथा के चलने से मनुष्य के ज्ञानतंतु उस प्रथा के अभ्यस्त बन गये और एक तत्व जो पहले कभी अस्तित्व में भी नहीं था, वही अब 'भान' अथवा अन्तःकरण (consciousness) बनता है। समस्त " अन्तः करणों ' की आवाजों का मूल उद्भव स्थान ऐसा ही होता है। हमेशा एक तरह का भय चालू रखने से कीड़ों का अन्तःकरण भौरें का अन्तःकरण बन जाता है वैसे ही। ... इस घटना को शुभ या अशुभ **"इरादा"** रूपी गज से नापना – यह मात्र अज्ञानी का ही काम है।

'राजा का अन्तःकरण'-- I shall be pleased to rule !

'प्रजा का अन्तःकरण '-- I shall be pleased to live and die as food for or instrument of your senses and mind, my Lord !

– इन दोनों ही प्रकार के अन्तःकरणों ने मिलकर "कानून" की उत्पत्तिकी।

कानून की पहली कलम –प्रत्येक व्यक्ति जीने, मरने, बर्ताव करने आदि में स्वतंत्र नहीं है। ये सब बातें राजा की इच्छा 'हित'(मौज) के आधीन हैं।

इसी ध्येय के आधार पर दूसरी कलमें बनाई गईं। व्यक्ति को चोट पहुँचाने के बदले चोट करने का या बैर लेने का हक्क नहीं हो सकता। यह 'हक्क' राजा को ही है। व्यक्तिगत बैर राजा के हित में दो प्रकार से हानिकर होता है (१) व्यक्ति में क्रिया –स्वातंत्र्य का भान चालू रहने दिया जाये तो वह राजा के 'हक्क' को विघ्न रूप ही हो जायेगा, (२) दो व्यक्ति आक्रमण एवं बैर की क्रिया से आपस में चोट पहुँचावें तो उससे राजा की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचता है।

किसी के लिये 'जिंदा रहना' अशक्य हो जाय तो भी वह राजा की इच्छा द्वारा मना किये गये कृत्य द्वारा जीवन शक्य बनाने के लिये स्वतंत्र नहीं है, इतना ही नहीं, परन्तु अशक्य जीवन को चालू रखने और दयाजनक दशा व्यतीत करने के लिये बाध्य है।उसे अपघात करने की भी स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि उसके मरने से राजा को एक गुलाम के द्वारा मिलनेवाली सेवा गँवानी पड़ती हैं, इसलिए अपघात के प्रयत्न को राजा ने गुनाह (Crime) ठहराया है और प्रजा ने उसे 'पाप'(Sin) संज्ञा दी। 'गुनाह'(Crime) का शास्त्र और 'पाप' का शास्त्र (Code), 'राज्य' एवं 'धर्म' – इनके उत्पत्ति स्थान को ढूँढने के जिज्ञासु को अपनी नाक इतनी मजबूत एवं सहनशील बनानी चाहिये कि दुर्गन्ध के भास से कार्य को अपूर्ण ही छोड देने के लिये बाध्य न होना पड़े। 'ढूँढक'(Seeker) बनना सामान्य बात नहीं है और बिना 'ढूँढक' बने मुक्ति की आशा व्यर्थ है।

परन्तु 'मनाई' की परम्परा इतने से रुक नहीं जाती। जीवन को शक्य बनाने और जीवन का अन्त लाने के जन्मसिद्ध हक्क को भी गँवा देनेवाली 'प्रजा' राजा की इच्छा होते ही दूसरी प्रजा द्वारा मरने या मारने 'राजा' के पुलिस, सैनिक, मॅजिस्ट्रेट, जल्लाद, जेलर तरीके काम करने के लिये बाध्य ही है।

पहले युग में मनुष्य अपना 'बैर' अपने आप ले सकता था, दूसरे युग में अपने बैर लेने का हक्क गँवाने के उपरान्त बैर की वसूलात करने के लिये बाध्य हो गया।

(४) बुद्धितत्व और वकीलों का जन्म तथा न्याय की संभावना

इस विकृत जीवन ने ही बुद्धितत्व को जन्म दिया। बुद्धिने 'धन' (Capital) और'विज्ञान' (science) नामक दो बलवान सन्तानें पैदा कीं और उसस मय इन भयों का इलाज शोधने की राजा को जरूरत पड़ी।

स्त्री अलंकारों से प्रसन्न होती है ! इसकी Vanity (मिथ्याभिमान) को तृप्त करो तो उसे 'दासी' तरीके रहने में खुशी है। मनु ने यह बात बिलकुल सच कही है कि 'जहाँ पर स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।' आज के नीतिवादी इसे जिस अर्थ में सत्य मानते हैं, उस अर्थ में यह सत्य नहीं है। 'देवता' ने अर्थात् 'राजा' ने अपना 'खेल' निर्विघ्नरूप से चलता रहे, इसके लिये 'बुद्धि' सुन्दरी की 'पूजा' की अर्थात् अपने महल के एक कोने में उसे जगह दे दी, उसे अपनी मानीती 'रानी' बनाया, अपने 'काम' को तृप्त करनेवाली और अपने लिये पुत्र पैदा करनेवाली पुतली बनाया। इससे बड़ा सम्मान इसके लिये और क्या हो मकता था ?

बुद्धि न मानें को भी चीरनेवाली कलमें (कानून) बनाई, तरह तरह के नियमोपनियमों की सृष्टि करा लीं, जिससे मनुष्य भले ही आत्यंतिक दुःख क्यों न उठावे, फिर भी जीने

का, जीवन को स्थिर बनाये रखने का, जीवन का अन्त लाने का, स्वाभावसिद्ध अधिकार का स्मरण भी न कर सके, स्वभाव के बदले विभाव जीवित रहे– ऐसी यंत्रणा की गई। विकृत जीवन ही एक सामान्य "नियम" बन गया।

इससे मनुष्य जीवन कैसा बना ?

'हक्क' का कोई अंग अथवा 'प्रजा' का कोई अंग तुमको लूटने आता है, तुम्हारी जान लेने का प्रयास करता है, तुम्हारा अपमान करता है, परन्तु तुमको तो चुपचाप लुटते रहना चाहिये, यदि जान भी जाये तो जाने देना और सहर्ष अपमान सहते रहना चाहिये, क्योंकि तुम 'प्रजा' हो।

यदि इसके बाद भी तुम जीवित बचे हुए हो और आवाज करने की शक्ति, साधन, फुर्सत इत्यादि की अनुकूलता हो तो और उससमय भी खुद राजा साहब के पास नहीं, परन्तु राजा के एक दास के भी दास के पास जाकर और असंभव नहीं कि एक निम्नतम कोटि के दास के पास में पेट के बल चलकर हाथ जोड़कर खुदाविंद की सेवा में अति दीनतापूर्वक विनती करता कि "महाराज' मुझे 'न्याय ' देने की कृपा करें।"

और इन्साफ माँगने से ऊपर से 'आज्ञा' और 'कृपा' चाहिये। 'इन्साफ' माँगने में एक बीच का तीसरा पुरुष 'वकील' भी चाहिये।

तुम्हारी वैरवृत्ति द्वारा माँगा हुआ 'न्याय' अथवा उससे दूसरी प्रकार का 'न्याय' मिले इसके पहले तो तुम्हें न्यायकर्ता तथा उसके छोटे से छोटे सेवक के हाथ में तथा विरोधी पक्ष के तथा अपने पक्ष के'वकील-राज' के हाथ से तरह तरह के अपमान सहन करना, कुछ न कुछ फीस देना बीसियों निर्माल्य आदमियों की खुशामद करना, महीनों तक ही नही, किन्तु वर्षों तक और कभी कभी तो जीवन के अंतिम श्वास तक भटकते रहना और भयभीत रहना चाहिये।

अन्त में थैली में से बिल्ली निकलेगी और बोलेगी 'म्याऊँ"म्याऊँ' अर्थात् " मैं आऊँ मैं आऊँ तू नहीं !" क्योंकि न्याय, दो वकीलों की बुद्धि-युद्ध का परिणाम हैः न कि 'सत्य घटना' को शोध करने का परिणाम। चाँदी ढालने के लिये लड़ने वाली दो बुद्धियों के युद्ध को हारजीत की छाप देनेवाली एक तीसरी बुद्धि, (जो कि वेतन के लिये ही यह काम करती है) का शब्द ही 'इन्साफ' है।

जिस 'इन्साफ' को तुम ढूँढने चले हो, जो 'इन्साफ' तुमको अभीतक मिला नहीं है, परन्तु थैली के अंदर बंद है, वह इन्साफ बुद्धिरूपी थैली में से निकलनेवाली बिल्ली ही हो सकती है। बिल्ली बहुत बुद्धिमान प्राणी है। स्वच्छता की प्रेमी, गंभीर होने का दिखावा करनेवाली, अंगोपांगों को सुरक्षित रखने की विद्या की जानकार, चूहा पकड़कर भी साधुवृत्ति दिखा सकने में समर्थ और धनवानों तथा स्त्रियों की प्यारी वस्तु है। बिना भय

पैदा किये ही वाघ जैसा दिखाई देनेवाला प्राणी है। वाघ तुमको मारकर अपना 'अंह' भाव कायम रखता है तो बिल्ली मोह पैदा करके अपना 'अंह' भाव कायम रखती है। बुद्धि की थैली में से तुम्हारी 'जरूरत' न निकल सकेगी, वहाँ से तो बुद्धिवाद के जीवन की निरंतरता माँगता हुआ मैं आऊँ – ऐसी ध्वनि ही निकल सकती है। वह ध्वनि तुमको स्पष्ट कहती है कि तुम्हारा जीना, मरना, सुख, दुःख, रक्षा और आघात, सन्तोष – असंतोष इत्यादि हमारे चिन्तवन के विषय नहीं हो सकते। वह बताती है कि यदि बुद्धि 'प्रसव करने' की तकलीफ भी ले तो भी बुद्धि कानून का वंश–विस्तार करनेवाला तत्व ही पैदा कर सकती है, न कि तुम जो माँगते थे, वह इन्साफ अथवा तुम्हारे 'अहंकार' को पहुँचे हुए आघात की दवा अथवा तुमको होनेवाली वास्तविक क्षति का बदला।

परिणाम ?

गहरा और असन्तोष। अतृप्त वैर से और भी जोर से प्रज्वलित होनेवाली आग, वास्तविक नुकसानों की परम्परा, अनेक नई–नई आफतें, कष्ट और बीमारियाँ पैदा होती हैं। एक निर्बलता में से अनेक निर्बलता और एक विकृति में से अनेक विकृतियाँ पैदा होती हैं। सारांश यह है कि जीवन बिलकुल सड़ जाता है, वह पागल कुत्ते सा जीवन हो जाता है।

और आज तो तमाम दुनियां में पागल कुत्ते का सा जीवन चल रहा है। किसी भी देश का, किसी भी तारीख का, कोई भी समाचारपत्र 'अथ से इति पर्यंत' बाँच (पढ़) जानेसे कथन सत्य सिद्ध हुए बिना नहीं रहता।

अंतिम महायुद्ध इस 'व्यवहार' को भस्मीभूत करनेवाला एक असाधारण अकस्मात् था। फिनिक्स को जला देनेवाले काष्ठम में आग लग उठी है। इस अग्नि में मिट्टी का तेल डालने के लिये बोलशेविज्म (Bolshevism) का भूम्यन्तर्गत (Underground) झरना छूटा है। इसको हवा लगाने के लिये धर्मोन्माद की आंधी प्रगट हो चुकी है।

फिर भी ये सब एक ही समष्टिके अंग हैं - जय हो समष्टि की !

(५) संघर्ष और एकता शांति की सहजता

बुद्धि पूछेगी – 'यह समष्टि आखिर है कौनसी नई बला ?' यह कोई 'बला' नहीं है और 'बुद्धि' जैसी 'अबला' भी नहीं है। नहीं, यह तो स्त्री भी नहीं है, पुरुष भी नहीं है, भोक्ता या भोग्य भी नहीं है, कर्ता या कर्म भी नहीं है, क्रिया या अक्रिया भी नहीं है। सिद्धान्त भी नहीं है और अन्धाधुंधी भी नहीं है।

यह एक तरह से कुछ भी नहीं है और दूसरी तरहसे सब कुछ है। यह एक 'पूरा जीवित शरीर' है, जिसके उपरोक्त सभी 'संभव' अंग हैं।

आज के मनुष्य को यह ख्याल नहीं रहा है कि प्रत्येक मनुष्य और उसके संसर्ग में आनेवाला दूसरा मनुष्य एक दूसरे के अनुकूल अथवा Harmonious स्वर निकालने के लिये ही पैदा हुआ है और सब मिलकर एक निश्चित असर पैदा करनेवाले गायन के अंग हैं। बुद्धिवाद, नीतिवाद, धर्मवाद इसमें से पैदा होते हैं, पैदा होकर इसे छोड़कर दूर- दूर चले जाते हैं, इससे उत्पत्ति का इतिहास और उत्पति का आशय वे आगे जाकर भूल जाते हैं।

उपरोक्त ये तीनों अंग अपने मौलिक एवं पारस्परिक सम्बन्ध को भूलकर पीछे से "स्वतंत्र सत्ता" बन बैठते हैं और इसी कारण स्वभाव से इन तीनों में भी कलह एवं विरोध ही बना रहता है। इनके पारस्परिक कलह से जो - जो व्यवहार पैदा होते हैं, उनको "कलियुग के व्यवहार" का नाम दिया जाता है। कलियुग में सब क्रियायें, सभी मान्यतायें, सभी निर्णय, सभी पसंदगी आदि पारस्परिक विरोध (Conflict) के परिणाम स्वरूप ही हैं, एकता (Harmony) के परिणामजन्य नहीं।

मुझे क्या पड़ी है ? मुझे किसी की क्यों चिन्ता करनी चाहिये ? यही है 'कलिकाल का अन्तःकरण' जिसमें से 'भय' का निरन्तर झरना झरता रहता है। यह भय केवल एक ही फल पैदा कर सकता है और वह है "घर्षण" (Conflict), ऐक्यता (Harmony) इस क्षेत्र में इस काल में संभव नहीं है।

ज्यों-ज्यों समष्टि का सूक्ष्म स्वर अधिक-अधिक व्यक्त होता जाता है, त्यों-त्यों हृदय में से 'कलि' दूर होता जाता है। ऐक्यता (Harmony) प्रगट होने लगती है। समष्टिरूप पूर्ण ऐक्यता (Harmony) से उत्पन्न हुआ स्वर सम्पूर्ण अन्तःकरण को और उसके द्वारा सारे संसार को दोलायित कर सकता है।

दया, प्रेम, क्षमा, नीतिज्ञता इत्यादि उक्त ऐक्यता (Harmony) के 'बुद्धिग्राह्य' परिणाम हैं और 'बुद्धिग्राह्य' होने से ही वे 'मर्यादित' हैं, और उस ऐक्यता (Harmony) में तो दया, प्रेम, क्षमा आदि की सत्ता के साथ ही उनके विरोधी गुणों की भी सत्ता रहती है; 'कोमल' और 'तीव्र' इन दोनों की सत्ता रहती है, परन्तु 'बुद्धिग्राह्यता' के कारण उनका सम्मिश्रण या दुरुपयोग नहीं हो पाता। योग्य समय में योग्य परिणाम प्राप्ति के लिये ही उनका उपयुक्त प्रमाण में उपयोग होता है।

धर्म एवं नीतियाँ 'अर्ध सत्य' हैं; गुम्बज में स्थित 'पूर्ण सत्य' के स्थूल शरीर मात्र हैं और आज तो वे अंग अपना अंगत्व भूलकर स्वतंत्र 'शरीर' बन बैठे हैं और सार्वभौम (राजा) होने का दावा करते हैं।

राजाओं के बीच में तो स्वभाव से ही कलह रहती है। एक राजा जब दूसरे राजा को

सत्ता भी सहन नहीं कर सकता तो फिर उनमें प्रेम तो कहाँ से हो सकता है ? आज राजाओं की सभाएें (जैसे Chamber of Princes, The league of nations etc.) सुनी और देखी जाती हैं। इससे उक्त सत्य को कोई बाधा नहीं पहुँचती ,क्योंकि आज तो कोई 'राजा' ही बाकी नहीं बचा तो फिर' राजाओं की परिषद' से क्या समझा जाय - इसको कहने की कोई जरूरत नहीं है।

'राजाओं की परिषदें', और 'प्रजाकीय परिषदें' ये सब एक दूसरे को खा जाने, दूसरे का अस्तित्व मिटाकर अपना साम्राज्य जमाने का प्रयास मात्र है, विरोध एवं संघर्षण मात्र हैं। राज्य, समाज, व्यापार, धर्म, साइन्स, कला, साहित्य, न्याय, सभी जगह यही प्रयास यही विरोध एवं संघर्षण, बेसुरे तारों का यह हृदय भेदी चीत्कार ही दिखाई दे रहा है।

(६) बुद्धि और भावना की एकता (Harmony)

यह स्थिति दिन प्रतिदिन और भी उग्र बनती जाती है। सब व्यवहार अपने आपको भस्म करने की जल्दी कर रहे है।

क्या वस्तुतः ऐसा ही हो रहा है.....? अच्छा; इसकी जाँच करें !

१. कमजोर से भी कमजोर जातियों में से 'मुंशी लीलावती" प्रकरण कैसे पैदा हो गये? २. ज्यादा से ज्यादा कट्टर (orthodox) श्वेतांबर जैन समाज अपने धर्मगुरु को फौजदारी अदालत में कैसे खेंच ले गया ? ३. कीड़ी, मकोड़ी तथा पागल कुत्ते को मारनेवाले के विरुद्ध भारी आन्दोलन उठानेवाले दया के एक मात्र ठेकेदार जैन वर्ग द्वारा केशरियाजी में खुद जैनों की ही हत्या कैसे हुई ? ४. समाधान वृत्ति रखना ही तो व्यापारी का खास लक्षण और हितरक्षक साधन है, फिर भी व्यापारी इंगलैण्ड ने व्यापार के बहाने से चीन पर चढ़ाई क्यों की ? ५. असहकारक केन्द्र स्थान बम्बई प्रान्त होने पर भी एक बम्बई निवासी असहयोगी लीडर द्वारा इंग्लैण्ड में बम्बई प्रांत को 'श्रेष्ठ सहकारी' की सनद क्यों कर मिल सकी ? ६. जगत में शांति बनाये रखने के लिए फौज घटाने के बहाने की ओट में आकाश में से सर्वभक्षी गोला फेंकनेवाले हवाई जहाजों की दौड़ों में भीषण प्रतिद्वंद्विता क्यों चल रही है ? ७. न्याय - प्राप्ति की अत्यंत खर्चालू आधुनिक प्रणाली अब स्वयं न्यायाधीशों को ही क्यों खुचने लगी है ? ८. गगन -विहारी कल्पनाओं में उड़नेवाले कवि मानापमान की कीचड़ में फँसने की उम्मीदवारी कैसे कर सके ? ९. अपने में माहात्म्य प्रगट कर उसके द्वारा समस्त जगत को नवजीवन देने के लिये उत्पन्न होनेवाले महात्मा देहाभिमान के (और सो भी अन्य मनुष्यों द्वारा अपनी पूजा कराने की हद तक) गुलाम कैसे बन गये हैं ? १०. गम्भीर में गम्भीर (deep, profound, solemn, mysterious, serious) साहित्य क्षेत्र में भी 'शराब की दुकान' का नाटक कैसे खेला गया ? ११. 'सुपरमैन' (Superman) का दावा करने वालेपर एक

मात्र 'घूँसा' मारने की चेष्टा कैसे विजयी हुई? १२. 'बुद्ध' के घर में 'कृष्ण का नारद' कैसे पैदा हो गया ! इत्यादि सब प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर की कोई जरूरत नहीं है। बस, यही एक उत्तर यथेष्ट होगा कि 'व्यावहारिक तमाम अंगों में एक प्रकार की आग लग चुकी है।' फिनिक्स जल रहा है और नये जन्म एवं नवयुग के उत्पन्न होने के लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं।

इस क्रिया का रहस्य अकेली 'बुद्धि' (Intellect) अथवा अकेली भावना 'लगन' (feeling) द्वारा नहीं जाना जा सकता; बल्कि बुद्धि और लगन - इन दोनों की ऐक्यता (Harmony) द्वारा ही जाना जा सकता है। विश्व- व्यापक घटना को देखने के लिये विश्व-व्यापक अंतःकरण ही चाहिये ।

जहाँ जहाँ बुद्धि एवं लगन की अर्थात् 'न्याय' एवं 'धर्म' की एक वाक्यता होने लगी है वहाँ वहाँ 'नवयुग' के चिह्न प्रगट होने लगे हैं; थोड़े से आदमियों को उसकी झाँकी भी होने लगी है, कुछ उसे स्वप्न में देखने लगे हैं। मुझको तो वह नवयुग कान में बोला है --'कानों के कान" में उसने न्याय के नूतन व्यवहार का संदेश भेजा है।

इस संदेश को केवल बाह्य कान के योग्य बनाने के लिये ही दया के ठेकेदार वर्ग में ही आज मनुष्य हत्या का प्रसंग आ उपस्थित हुआ है।

मैं जानता हूँ कि मेरा यह 'जजमेंट' झगड़ा नहीं रोक सकेगा। नया रोम या नया लंदन बसाने की जरूरत हो तो उससमय उन शहरों में लगी हुई आगों को बुझाने के लिये तो आकाश के बादल भी नहीं बरस सकते। जब हिन्दू-मुस्लिम जनता पर आग का घेरा पड़ा हुआ है तो उससमय अपने को हिन्दु कहने मात्र से कहीं जैन समाज "शीतल" थोड़े ही रह सकता है !

मेरा तत्वाधिष्ठित 'जजमेंट' तो मात्र समष्टि की प्रक्रिया (प्रोसेस) समझने के जिज्ञासु विचारशील थोड़े से अन्वेषी (Co-seekers) ढूँढक भाईयों के लिये ही है। इसका यह आशय कभी नहीं है कि हृदय पलटने के इच्छुक राजा अथवा राजा के 'अंग' अर्थात् न्यायाधीश या वकील इस जजमेंट का लाभ उठा ही नहीं सकते हैं ? हृदय-परिवर्तन ही युग-परिवर्तन है। नये अन्तःकरण को नवयुग-प्रेरित यह जजमेंट पसंद हो और उसके काम में आवे, यह स्वाभाविक ही है।

(७) इस निर्लेप न्याय (जजमेंट) की मर्यादा

यह तो कुछ भी क्यों न हो, परन्तु यहाँ लिखा जानेवाला जजमेंट किसी को उपयोगी हो या न हो; परन्तु इससे किसी को हानि पहुँचने की संभावना तो है ही नहीं। स्वेच्छापूर्वक दिया हुआ यह जजमेंट किसी पर फरजियात आज्ञा नहीं ठोंक देता है,किसी से भी किसी

भी प्रकार की 'फीस' नहीं चाहता है और न गालियों की बरसात द्वारा प्रतिकार करने से किसी के कल्पित "हक्क" दबाने की ही इच्छा है।

जजमेंट देने का 'हक्क' अथवा 'अधिकार' सम्बन्धी प्रश्न तो मेरे अन्तःकरण में पैदा ही नहीं होता है, जिनके हृदय में यह प्रश्न उठता हो भले ही वे प्रश्न रूपी पुत्र का पालन करें या नष्ट करें, मुझे क्यों कर उसकी चिन्ता करनी चाहिए ?

समष्टि की गति को कोई 'हक्क' रोक नहीं सकता है और न कोई 'फर्ज' उसको मर्यादित ही कर सकता है, 'अधिकारों' की सृष्टि आदमी ने की है। विचारना और अनुभव करना, यह स्वभाव तो जन्मसिद्ध है, जन्म के साथ ही साथ ये गुण भी अवतीर्ण होते हैं।

'राजाओं' और उनके अंगों को यदि 'विचार' मात्र से और सहानुभूति बिना ही न्याय तौलने का हक्क है तो विचार एवं सहानुभूति - इन दोनों के संयोगपूर्वक न्याय तौलने के स्वभाववाले मनुष्य को कम से कम उक्त आदमियों के समान ही न्याय तौलने का अधिकार तो अवश्य है। यह भी असंभव नहीं है कि 'हक्क' पूछनेवाले ही को दूसरे का हक्क पूछने एवं दूसरे का न्याय करने ही का हक्क न हो। यह भी संभव है कि 'अदालत' मात्र 'अदावट' के साम्राज्य को रक्षित रखने की मशीनें (mechanism) हों।

(८) नवयुग के लिए समष्टि-भावना द्वारा ही समाधान का व्यवहार हो सकता है

अदावट अर्थात् बैरवृत्ति से प्रेरित व्यवहार भले ही कैसा भी क्यों न हो। इसको यहाँ विचारने की जरूरत नहीं है, परंतु समष्टि भाव प्रेरित व्यवहार कैसा होना चाहिये ? 'समन्वय युग' का जजमेंट किस मूल सिद्धांत पर आधार रखता है ?

यह 'सादी समझ' का प्रश्न है, जिसको प्रत्येक मनुष्य अपने दैनिक अनुभवों द्वारा निर्णय कर सकता है।

हमारे शरीर में हाथ, मुँह आदि 'अंग' हैं। एकबार भूल से एक अँगुली दाँत के नीचे आ गई और कट गई, हाथ को इससे बहुत क्रोध आ गया और उसने भी सब दांतों को तोड डाला और अपने बैर का बदला ले लिया।

फिर... ? भोजन को उपयुक्त प्रमाण में चबाने की असमर्थता से पेट की पाचन-क्रिया मंद हो गई ,जिससे शरीर को यथेष्ट पोषण मिलना बंद हो गया। परिणाम यह हुआ कि दूसरे तमाम अंगों के साथ-साथ हाथ भी मुरदा (कमजोर) होता गया।

अन्त में ...? इस अशक्त बने हुए हाथ ने कुट-पिसकर पहले से भी दुगुनी मेहनत करके ज्यादा मजूरी पैदा की और उससे नकली दाँतों का चौखटा मुँह में उसे लगाना ही पड़ा और तभी दूसरे अंगों के साथ–साथ हाथ का भी जीवन शक्य बना।

हाथ को अपने जीवन की इच्छा ने ही बैरवृत्ति को बीमारी स्वरूप और तमाम अंगों की आरोग्यता की अनिवार्यता का भान कराया।

परन्तु यह हुआ कब ? तभी, जबकि व्यक्तिगत भाव अथवा 'अहंकार' ने वैयक्तिक जीवन को सर्वथा अशक्य बना दिया था। इस वेदना के गर्भ में से ही पैदा होता है समष्टिभाव अथवा Cosmic Conciousness। इस वेदना को रोकने के जितने भी 'दयालु' प्रयत्न किये जायेंगे, उनका परिणाम गर्भपात ही होगा और इसीलिये तो महावीर सरीखे महात्मा द्वारा अपने आज्ञाकारी राजाओं द्वारा उठाये हुए महायुद्ध को रोकने का प्रयत्न या इच्छा करने तक का भी कहीं उल्लेख नहीं है और महात्मा कृष्ण ने तो अपने आप निःशस्त्र रहने पर भी युद्ध के संजोगों को और भी पक्व बना दिया था।

जब हाथ का हृदय पलटा, तब भी क्या उसने दाँत की भयंकरता जानते हुए भी मनुष्य शरीर की योजना में से इस भयंकर अंग को अलग कर देने की या उसकी शक्ति छीन लेने का ख्याल तक किया था ? नहीं कदापि नहीं ! हम लोग देखते हैं कि प्रत्येक मुख में दाँत उगते रहे हैं, परन्तु किसी भी दाँत पर बेड़ी या बंधन तो नहीं दिखाई देता है। एक तरफ दाँतों पर कोई कैसा भी बंधन नहीं है और दूसरी तरफ हाथ की दाँत तोड़ डालने की शक्ति पर कोई रुकावट नहीं डाली गई, फिर भी शरीर का काम तो मजे में चलता रहता है।

हाँ, जब कोई अंग सड़ जाता है तभी और वह भी अन्य तमाम अंगों की र[illegible] के लिये अनिवार्य होने से काट दिया जाता है और वह भी निर्दोष अन्तःकरण से, न कि अहंकार या बदला लेने की वृत्ति से !

ठीक उसी तरह - राजा से लेकर छोटे से छोटे मजदूर तक, साहू[illegible]र से लेकर चोर तक, सती से लेकर वेश्या तक, अति दयालु से लेकर अति क्रूर तक, प्रत्येक मनुष्य समष्टि शरीर का एक अंग है - यह साँकल का एक अंग है, यह साँकल का एक कुन्दा है, प्रत्येक के लिये स्थान है और इसीलिये उसकी स्थिति है। उस स्थान को ढूँढना और इस स्थान पर उस आदमी को नियत कर उसके द्वारा समष्टि-कार्य संपन्न कराना, यही तो इस जीवन की सफलता है और विकास–परम्परा को कायम रखने का एक मात्र साधन है।

परन्तु आज तो - 'समष्टि कार्य' ध्येय रहा नहीं है, वैयक्तिक हित ही ध्येय माना गया है -- यही तो महारोग है। प्रत्येक आदमी को सब आदमियों के हक्कों एवं जीवन का ध्यान रखना चाहिये था, उसके बदले बस मनुष्य अपने ही जीवन का ध्यान रखते हैं, और क्यामात्र प्रत्येक मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ तथा अन्त-करण के चारों अवयव भी परस्पर में एक दूसरे अवयवों को नष्ट कर अपनी स्थिति बनाये रखना चाहते हैं। इस अस्वाभाविकता ने व्यवहार मात्र को लगभग असह्य बना डाला है; बेसुरे तारों की झनझनाहट ने मात्र कलह- ध्वनि पैदा की है। 'भूख' एवं 'बैर' के कारण सब जगह आग लग रही है।

यही आग जब सर्वत्र-व्यापक बन जाती है, तभी अपनी उत्पादक 'भूख' एवं 'बैर' को भी - इनको कहीं भी खडे रहने तक की जगह न होने से, अपने में मिला लेती है और उन्हें भी जलाने लगती है। पीछे से इसी खाक में से 'फिनिक्स' पक्षी नवीन देह के साथ जन्म लेता है।

(९) घटी घटना, भ्रष्ट मनोवृत्ति के दुष्परिणाम इस जजमेंट के लिए अंतःप्रेरणा

तब तक तो ये सभी, 'साठमारियां'[26] चालू रहेंगी ! और 'साठमारी' में क्या- क्या होता है?

एक राजा को अपने महल या कचहरी में होनेवाले बेसुरे कोलाहल से उन्माद या उद्वेग हो आता है। उस उद्वेग को मिटाने के लिए इसको किसी बाह्य तमाशे की जरूरत पड़ती है। इस वैयक्तिक जरूरत को छिपाकर प्रजा में बहादुरी की भावना उत्तेजित करने की परोपकार (?) वृत्ति के बहाने से दो भैसों की लड़ाई कराने का प्रबन्ध होता है।

एक दूसरे के साथ मित्रता अथवा शत्रुता नहीं रखनेवाले दो भैसों को एक पक्की छोटी दीवाल से परिवेष्टित विशाल अखाड़े में लाया जाता है। इन भैसों में जिसतरह परस्पर में वैर नहीं होता, उसी तरह राजा और भैसों में भी कोई कैसा भी वैर का प्रयोजन नहीं होता ! राजा की इच्छा से कार्य परिणत करने को ही 'कर्तव्य' माननेवाले बीच के मनुष्य ही भैसों को अखाड़े में खींच लाते हैं और उनमें बैर पैदा कराते हैं। भैसों को तरह- तरह से उत्तेजित किया जाता है , सिसकारा जाता है और भालों की नोकों को चुभाकर भी उनको लड़ने के लिए विवश किया जाता है। मनुष्य-बुद्धि का सारा उपयोग इस युद्ध को पैदा और चालू कराने में किया जाता है।दया से नहीं , बुद्धिपूर्वक भी नहीं,परन्तु अपना जीवन बनाये रखने की स्वाभाविक वृत्ति के कारण ही दो में से एक भैसा घायल होने के पीछे अशक्ति के कारण कुछ सुस्त-सा मालूम पड़ने लगता है तो वे 'कर्तव्यशील' राजसेवक भालों की नोंकों से अथवा लाठी के प्रहारों से उस सुस्ती को दूर करते हैं और जान की बाजी लगाकर भी हरएक प्रकार से लड़ाई को चालू रखने के लिए उन भैसों को बाध्य करते हैं। अन्त में दोनों नहीं तो एक भैसा मर जाता है और तभी इस साठमारी की 'मौज' का अन्त आता है।

इस साठमारी को कोई राजा की तरफ से भैसों को दिया हुआ इन्साफ या राजा की 'प्रजासेवा' कहे तो उस पर तमाम राजनीतिज्ञ, वकील, न्यायाधीश हँसे बिना रहेंगे क्या ? प्रत्येक पागल अन्य सब पागलों पर हँसता है !

---

[26] दो पशुओं को मनोविज्ञान के लिए लड़ाना।

एक भैंसे के विरुद्ध दूसरा भैंसा छोड़ने में ही कहीं राजाओं की 'मौज' समा नहीं जाती। मनुष्यों के विरोध में, और तो क्या अपनी प्रजा के विरोध में चीते को खुला छोड़ देने तक इनकी मौज स्वतंत्र है। यदि ऐसा न होता तो कच्छ और जामनगर स्टेटों के इस हुक्म का क्या आशय है कि -- "गाँव में घुसकर शिकार खेलते हुए चीते को यदि कोई मारेगा तो उसको सजा मिलेगी।"

(अ) और पाँच पाँच वर्षों से प्रजा के दो अंगों के बीच में कलह होने की राजा को खबर होने पर भी, (ब) आठ महीने पहले एक पक्ष ने न्याय को अपने अधिकार में लेकर मूर्तियों पर श्रृंगार चढ़ा दिये थे, उनको स्वयं उतरवाने पर भी (क) केशरियाजी को स्टेट का लश्कर (जिसका अधिकारी गुनहगार पक्ष का है, इतना जानते हुए भी) रवाना हुआ है, इसकी ३ दिन पहले खबर मिल जाने पर भी (ड) ता. ४ मई सन् १९२७ को उदयपुर के महाराणा राजधानी और केशरियाजी इन दोनों स्थानों ही से बहुत दूर अपने विलासस्थान-कुम्भलगढ में कैसे पड़े रह सकते थे ? (इ) ता. ४ को मन्दिर में मौतें हो जाने की खबर तमाम देशभर में फैल जाने पर भी इस राजा द्वारा इस हत्याकांड के स्थान की मुलाकात लेने का और लश्करियों को सच्ची हकीकत प्रगट करने को बाध्य करने की सुबुद्धि आज तक भी क्यों नहीं पैदा हुई ? (ई) परन्तु राजा तो लश्कर और प्रजा इन दोनों ही को अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। इन दोनों में से एक भैंसा यदि दूसरे को मार गिरावे तो यह तो उनकी दृष्टि में एक "मौज" है, **'Interesting News'** आनंददायी समाचार या नेत्ररंजक दृश्य है। चोट खाये हुए भैंसे का बदला लेने के लिये वह अपने दूसरे भैंसे को मारकर व्यर्थ ही अपनी दूसरी भी सम्पत्ति क्यों कर खोवे ? और तभी तो राजकुमार ने शहर में होते हुए भी इस घटना को रोकने का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया था।

राजाओं की कृपा से 'साठमारी' देखने की अभ्यस्त और इसकारण 'मनुष्यत्व' का ही अर्थ भूली बैठी हुई उदयपुर की प्रजा अथवा अन्यत्र की सामान्य जनता को भी धर्म के बहाने की ओट में और राज्य के लश्कर को साधन बनाकर ४ निर्दोष मनुष्यों की हत्या एक **Interesting News** (मनोरंजक समाचार) से और क्या ज्यादा असर पैदा कर सकी है ? क्या उदयपुर की प्रजा के अजैन तथा जो मूर्तिपूजक नहीं हैं - ऐसे जैन अंगों को यह अंग-भंग भयकारक नहीं है ? क्या धर्मोन्माद का इतना बढ़ जाना हिन्दी प्रजा के लिए भयरूप नहीं है ? फिर भी उदयपुर की प्रजा ने अथवा राष्ट्रीय आन्दोलनों के केन्द्रस्थान बम्बई में इतने दिन निकल जाने पर भी और प्रतिदिन दैनिक पत्रों में हृदयबेधक समाचार बाँचने पर भी इस घटना पर ऊहापोह करने या खेद दिखाने की किसी ने दरकार की है ?

दूसरों की आपत्तियाँ 'व्यक्तिगत भाव' एवं सामान्य जनता को मात्र थोड़ी देर के लिए **Sensational News** (उत्तेजक समाचार) से ज्यादा और कुछ नहीं होती, बहुतों के लिये तो आमदनी और प्रसिद्धि की भी कारणभूत हो जाती है।

जैसा पहिले कहा जा चुका है कि 'व्यक्तिगत भाव' में बैर का अंश अवश्य रहता है और वह अंश चोट खाये हुए व्यक्ति में ही रहता है। दूसरों की दृष्टि में तो चोट पहुँचानेवाला आदमी **Romance** खड़ा करनेवाला विनोदी मित्र अथवा नाटककार मालूम पड़ता है - इसप्रकार से मनुष्य का दृष्टिकोण ही बदल जाता है। 'अच्छे' और 'बुरे' का निश्चय करने की बुद्धि ही उसकी भ्रष्ट हो जाती है।

बुद्धि की ऐसी भ्रष्टता और उससे दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई सामाजिक बीमारी कानून बढाने से अथवा न्यायधीशों की, पुलिसों की या वकीलों की संख्या बढ़ाने से अथवा अनिवार्य शिक्षण का प्रवंध करने से दूर नहीं हो सकती। दोष घटने के बदले दोष बढ़ते ही जा रहे हैं। यह वात प्रत्येक सरकार, न्यायाधीश और जेलर बर' र जानते हैं। इतना जानने पर भी सभी सरकारें प्रजा के न्याय करने के स्वायत्त अधिकार को छोड़कर शेष सब उपायों को सुनने के लिए तैयार हैं।

प्रत्येक सरकार का न्याय करने का यह ठेका ही मुझे निम्नलिखित जजमेंट देने के लिये बाध्य कर रहा है।

निम्नलिखित जजमेंट समष्टि-भावना रूपी तहखाने में जाकर तथा साथ में व्यक्ति भाव के अंश को भी कायम रखकर लिखा गया है। यह **Psychological Process** बर्नार्ड शा॑, वेल्स, एडवर्ड, कारपेन्टर एवं ऐसी ही अल्पसंख्यक व्यक्तियों को ज्ञात होने से वे लोग तो इसे आसानी से स्वीकार कर लेंगे, परन्तु दूसरे तो संभवतः इसे 'कल्पना' या 'पाखंड' तक मानने लगेंगे और ऐसा ही होगा, यह जानकर ही यह लिख रहा हूँ।

निम्नलिखित जजमेंट समष्टि भावना की नींव पर ही लिखा गया है, इसलिये इसको 'जजमेंट' न कहते हुए इसका नाम 'पुनर्व्यवस्था'(**Re -adjustment)** रखा है।

पूरा लेख एवं जजमेंट लिखने का काम जितने दिन चालू रहा है, उतने दिनतक तमाम समय में इस विषय को छोड़कर अन्यत्र मन को नहीं लगाया है, और अपने 'एकांत पहाड़ी प्रदेश' को क्षणभर के लिये भी छोड़ा नहीं है।

समाचार पत्रों की रिपोर्टें पढ़ते और साक्षी की उलट-पुलट जाँच करते समय मेरा 'भाव' बुद्धि के साम्राज्य में आगे वढ़ता रहा और फैलता जाता था। उसके बाद अतिसूक्ष्म

बने हुए प्रदेश में एवं **Intuition** (निर्णायक बुद्धि) के वातावरण में प्रवेश किया था; परन्तु **Findings** (तथ्य) हस्तगत होने से, जनता की समझ में लाने के लिये मुझे पुनः बुद्धितत्व के वातावरण में आना पड़ता है। **Intuition** को प्रगट करने के लिये तो सृष्टि के ही पद का अवलम्बन लेना पड़ता है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि 'विराट्' समष्टि अपेक्षा में व्यक्तियों के नामों के साथ में सन्मानसूचक प्रयोग नहीं किया जा सकता -- उनका मूल नाम ही रखा जाता है और वह भी किसी खास गुण या कर्म के प्रतिनिधि की हैसियत से ही।

७. पुनर्व्यवस्था[27] (Re-adjustment)

जनता को अथवा 'विराट् दरबार' (**Humanity**) को सन्देश मिला है कि उसके एक अंग में उत्पात हो गया है। उदयपुर स्टेट के धुलेव ग्राम में स्थित केशरियाजी (**ऋषभदेव के जैन तीर्थ**) में, खुद आदर्श (**Ideal**) सिखाने के लिये स्थापित मूर्ति (**Idol**) के समक्ष और सो भी इसी मूर्ति के पूजन के कारण तारीख ४ मई १९२७ को कम से कम चार दिगम्बर जैनों की मौतें हुई हैं और उसी समय चोट खाये हुए बहुत से आदमियों में से पीछे से ३ आदमी मर गये हैं।

इसी सीधे (**Direct**) संदेश के साथ पीछे से कुछ खास 'हक्कों' की लोलुपता की बेसुरी एवं असम्बद्ध (**Irrellevant**) ध्वनि भी जोड़ दी गई है।

अपने विविध अंगोपांगों की रक्षा एवं सुव्यवस्था ही 'विराट् दरबार' के लिए एक इष्ट विषय हो सकता है, न कि अंगोपांगों के कल्पित हक्कों का निर्णय। विराट्राज ने तो आरम्भ में 'हक्क' नाम की कोई वस्तु बनाई ही न थी, उसने तो प्रत्येक अंगोपांग के कर्तव्य के कानून मात्र निर्दिष्ट किये थे कि जिससे उस अंग के साथ-साथ अन्य अंगों की सुरक्षा एवं विकास निरंतर होता रहे, परन्तु हाल में होनेवाली केशरियाजी की दुर्घटना के साथ-साथ में 'हक्क' नाम की बीमारी का भी समाचार मिलने से इस बात पर भी विचार करना पड़ेगा -- यद्यपि वैसे तो यह विषय गौण ही है।

तो इस दरबार का सबसे प्रथम एवं मुख्य कर्तव्य तो यही है कि वह इस बात का निश्चय करे कि उसको होनेवाला यह अंगभंग का नुकसान किसप्रकार का एवं कितना गंभीर है। इसके बाद यह सोचना पड़ेगा कि यह नुकसान किस अंग के किस प्रकार के विकार से पैदा हुआ है; और अन्तिम बात यह निश्चय करने की है कि विराट देह का आरोग्य सदैव बना रहे, उसके लिये कौन-कौन से उपाय उपयुक्त होंगे।

---

[27] 'वैर' एवं 'सजा' की भावना पर चिनी (बनी)हुई 'न्याय की इमारत' में 'जजमेंट' या 'फैसला' मिलता है। 'सादी समझ' की नींव पर खड़े किये गये "विराट् दरबार" में तो पुनर्व्यवस्था अथवा **Re-adjustment** का ही विचार होता है। समाजरूपी शरीर के एक अंग या उपांग को पहुँची हुई चोट के असर को आगे न बढ़ने देना और जो असर हो चुका है, उसको भी यथाशक्य हद तक नाबूद कर देना–इसका नाम "पुनर्व्यवस्था" है न कि 'जजमेंट'। 'जजमेंट' कितना भी प्रामाणिक (**Honest**) क्यों न हो, फिर भी 'पुनर्व्यवस्था' का काम नहीं कर सकता है।

इस दरबार को 'इन्साफ' देनेवाली 'कचहरियों' की तरह से फरियादनामा (नालिश) करने की कोई कैसी भी जरूरत नहीं होती । एक अंग जब निर्बल पड़ जाता है तभी तो वह दूसरे अंग के अत्याचार का भोग (विषय) बनता है। निर्बलता एवं अत्याचार -- इन दो त्रासों से तड़फड़ाता हुआ मनुष्य सबल के विरुद्ध नालिश करने की शक्ति इकट्ठी करे, वहाँ तक यह 'विराट दरबार' ठंडे कलेजे से तमाशा नहीं देख सकता । इस दरबार की खुराक 'आनन्द' है कि जो उसके अंगों के कलह से तथा उनमें से निकलते हुए बेसुरे स्वर से खंडित हो जाता है।

इसकारण इस दरबार ने **Sympathy** (सहानुभूति) के तार से खबरें प्राप्त की हैं । **Vision** जासूसं ने और भी बहुत-सी बातें ढूँढ निकाली हैं। विशेष में जिसतरह व्याधिग्रस्त मनुष्य को मनमानी बातें बडबडाने और बकने की आदत होती है, उसीतरह अनेक व्यक्तियों ने इस दरबार के सामने अपनी मनमानी बातें (स्टेटमेंट) पेश की हैं ,जो घटना का सत्य निर्णय करने के लिये यथेष्ट से ज्यादा उपयोगी प्रमाण हैं।

जो-जो स्टेटमेंट पेश हुए हैं और जो-जो गवाहियाँ हुई हैं, वे सब प्रमाण में दाखिल करने योग्य एवं अर्थसूचक होने से इस जाँच के एक खास अंग माने जावेंगे, परन्तु **सबसे अधिक** बोले और लिखे गये शब्दों से भी ज्यादा **अर्थसूचक** तो स्टेट का गम्भीर मौनव्रत है। जिस घटना को भारत के कोने-कोने में से 'गंभीर' कहा जा रहा है, ऐसी घटना के विषय में स्टेट का अटल मौन रखने को बाध्य होना -- यही बात स्टेट की अन्तर्व्यवस्था की स्पष्ट द्योतक है। जनता की अदालत के सामने स्टेट 'गूंगा' होने का ढोंग कर रहा है, परन्तु अंधश्रद्धानंद के खूनी दीवाने और गूँगेपने के नाटक के दृश्य को जनता इतनी जल्दी भूल नहीं सकती है । अदालत के समक्ष आने के पहले अब्दुल रसीद बहुत सी जुनूनी (उन्माद) बातें बोल सका था, इसी तरह उदयपुर स्टेट के विविध अंग -- कम से कम दो श्वेतांबर जैन प्रतिनिधियों के समक्ष तो बहुत-कुछ बातचीत कर चुके थे । (ये लोग जनता के समक्ष अपनी समाज की निर्दोषता एवं मन्दिर पर हक्क सिद्ध करने की जल्दी में श्रीयुत मोतीचन्द गिरधर कापड़िया सॉलीसिटर तथा जवेरी रणछोड़भाई ने जो कुछ कहा है, उससे यह बात सिद्ध जो जाती है)। जिनपर हत्या करने का आरोप लगाया जाता है, उस पक्ष के प्रतिनिधि श्री मोतीचन्दभाई को तो तारीख ८ के पहले ही **Commission of Inquiry** (जाँच कमीशन) और **Post mortem** (मरते समय की जुबानी की जाँच) की रिपोर्टें मिल जाती हैं, जिस पर से श्री मोतीचन्दभाई स्वयं लिखते हैं कि -- **This information I gathered from highly responsible persons on the spot** (अर्थात् ये खबरें मैने घटनास्थल पर मौजूद रहनेवाले बड़े जिम्मेदार पुरुषों से प्राप्त की हैं।) तथा तारीख १२ को मोतीचन्दभाई

के सहयोगी जौहरी रणछोड़भाई वही बात डाक्टरी रिपोर्ट की खास-खास बातें तक प्रगट करते हैं। यद्यपि ये रिपोर्टें -- सर नाइट, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट, रायबहादुर, डाक्टर सरीखे सन्मान्य दिगम्बर प्रतिनिधियों को तारीख १२ के बाद में भी महाराणा, महाराज राजकुमार और दीवान आदि में मिलने के लिये १०-१० दिन तक प्रयास करने पर भी नहीं मिल सकी थी। इतना ही नहीं, परन्तु रेसीडेन्ट साहब का हुक्म आने पर भी मई मास के लगभग अन्त तक भी वे उनको भेजी नहीं जा सकी थीं। अब मेडीकलमेन या मजिस्ट्रेट, महाराजकुमार अथवा महाराणा जो कुछ भी कहें या लिखें अथवा जो कुछ कह या लिख सकते हैं, उसकी अपेक्षा इनका अबतक का संयुक्त मौन ही एवं मोतीचन्द तथा रणछोड़भाई से अपना रहस्य प्रगट करना -- ये दो बातें ही इस 'विराट दरबार" की दृष्टि में विशेष महत्त्वपूर्ण 'स्टेटमेंट' माना जायेगा।

Highly responsible persons on the spot (घटनास्थल पर उपस्थित बड़े भारी जिम्मेदार व्यक्तियों) से समक्ष में मिलकर खबर प्राप्त करनेवाले श्री मोतीचन्द के स्टेटमेंट को ही यह 'दरबार' स्टेट के अधिकारियों के स्टेटमेंट तरीके मानने को बाध्य है। सारांश यह है कि इस 'दरबार' के समक्ष मात्र श्वेतांबर-दिगंबर प्रतिनिधियों ही के नहीं, बल्कि स्टेट का स्टेटमेंट भी पेश हुआ माना जायगा।

उपरोक्त हकीकतें इस निर्णय पर आने के लिये पर्याप्त हैं कि (१) कुछ न कुछ 'अपराध' **(Crime)** तो अवश्य हुआ है, (२) इस अपराध का **Agent** (एजेंट) भले ही कोई हो, कारण हो या न हो, परन्तु इस 'अपराध' के साथ स्टेट के कुछ अधिकारियों का सम्बंध 'अवश्य' है और (३) स्टेट का व्यवहार उसकी इच्छा न होने पर भी 'अपराध' को मौनरूप से स्वीकार करता है, परंतु प्रगट रूप से 'अपराध' को सिद्ध न होने देने के लिये जमीन-आसमान एक कर रहा है।

यह अपराध **(Crime)** भी किसप्रकार का है ? जैसा कि सब पक्ष स्वीकार करते हैं, वैसे ४ आदमी की मृत्यु होना और विशेष में जैसे इस 'दरबार' के समक्ष पेश की गई साक्षियों के बयानों से सिद्ध होता है, वैसे ही बहुसंख्यक आदमियों को हलकी-भारी चोटें पहुँचना, जिसके परिणाम में पीछे से तीन घायल मनुष्यों का मर जाना; इन दो प्रकार का यह **crime** है।

८. क्या यह किसी 'झगड़े' का परिणाम था ?

तमाम साक्षी इस बात से सम्मत हैं कि उपरोक्त मौतें किन्हीं भी पक्षों में 'लड़ाई' या 'मारामारी' होने से नहीं हुई थीं। दिगंबर तो कहते हैं कि उनका केवल १० गृहस्थों का एक डेपुटेशन सिर्फ महाराणा साहब की आज्ञा को स्मरण कराने और उस पर भी यदि उनके हुक्म का भंग होता रहे तो सत्याग्रह करने के लिये ही गया था। सारांश यह है कि उन्होंने तो किसी भी प्रकार का टंटा-फसाद किसी से भी किया न था, इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने तो ऊपर होनेवाले आक्रमण का सामना भी नहीं किया था। श्वेताम्बर समाज का प्रतिनिधि एवं वकील जोर देकर कहता है कि 'कोई किसी भी प्रकार की 'तकरार' सा 'फसाद' दिगंबर एवं श्वेतांबरों के बीच में नहीं हुआ; इतना ही नहीं परन्तु उससमय तो **No Swetambari was present** (कोई भी श्वेतांबर उस समय वहाँ उपस्थित न था) उससमय वहाँ श्वेतांबर हाजिर थे या नहीं इस बात की सत्यता या असत्यता की जाँच करने की यहाँ जरूरत नहीं है, परन्तु मोतीचंद का यह स्टेटमेंट मोतीचंद के पहले के कथन को दुगुना अनुमोदन देता है कि मरनेवाले दिगम्बरों ने अथवा दूसरे दिगंबरों ने श्वेताम्बरों के साथ में 'तकरार' या 'फसाद' आदि कुछ भी नहीं किया था।

यहाँ श्वेतांबर वकील मोतीचंद से यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या मरनेवाले दिगंबरों या दूसरे दिगंबरोंने श्वेतांबरों को छोड़कर अन्य किसी तीसरे पक्ष से लड़ाई झगड़ा किया था ? जिसके परिणाम में उनको इतनी गम्भीर. चोटें पहुँची हों ? दिगंबर-श्वेतांबरों के सिवाय मंदिर में फौजी अफसर (कि जो श्वेतांबर जैन) अपने १५० सिपाहियों के साथ मौजूद था। (यह कथन दिगंबरों का है और श्वेतांबर वकील भी कहता है कि पहले ही से स्टेट पुलिस बड़ी संख्या में मौजूद थी) तो क्या इस स्टेट पुलिस (या लश्कर, जो कुछ भी हो) के साथ में मरनेवालों ने कुछ झगड़ा किया था? इस प्रश्न का जबाब भी चारों तरफ से 'नकार' दिया जा रहा है। इतना ही नहीं बल्कि मारामारी, 'झगड़ा' या 'तकरार' इत्यादि किसी भी अपराध के कारण पुलिस ने एक भी दिगम्बर को पकड़ा नही था और न किसी पर मुकदमा ही चलाया था -- यह बात निर्विवाद है। पुलिस के किसी भी न्याय अथवा अन्याय किसी भी प्रकार के हुक्म को तोड़ने का आरोप भी पुलिस अफसर (जो कि पहले ही से वहाँ उपस्थित था) ने किसी भी दिगम्बर पर लगाया नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि श्वेताम्बर पुलिस फौज के अधिकारी से मिलने के बाद ही श्वेताम्बर वकील

लिखता है कि दिगम्बर लोग **Cowards** नामर्द थे। इस कथन से इतना तो स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि पुलिस के सामने खड़े रहने (?) तक की हिम्मत भी दिगम्बर लोगों ने नहीं दिखाई थी। श्वेताम्बर वकील मोतीचन्द के कथनानुसार तो पुलिस ने दिगम्बरों को वहाँ (मंदिर) से निकल जाने को ही कहा था कि इतने में तो वे लोग भाग खड़े हुए और गिर पड़े ! **इस संपूर्ण गवाही से एक बात तो पूरी-पूरी सिद्ध हो जाती है कि किसी भी दिगम्बर जैन ने श्वेतांबर या पुलिस के साथ में Offensive अथवा Deffensive किसी भी प्रकार की मारामारी में भाग नहीं लिया था और न किसी कानून का ही भंग किया था, तो तारीख ४ मई १९२७के दिन केशरियाजी के मंदिर में 'झगड़ा' हुआ था - ऐसे 'लौकिक कथन' को सुधारना इस 'विराट दरबार' को आवश्यक मालूम पड़ता है, क्योंकि 'झगड़ा' शब्दका प्रयोग ही तब किया जा सकता है ,जबकि उचित या अनुचित रीति से, थोड़े या बहुत अंश में, दो पक्ष मारामारी में शामिल होकर दोनों परस्पर में आक्रमण करें अथवा एक पक्ष आक्रमण करे तो दूसरा पक्ष अपनी रक्षा के लिये युद्ध करे। इस केस में उक्त दोनों बातों में से कोई भी नहीं हुई - यह बात समस्त प्रमाणों से सिद्ध हो जाती है।**

अब यह भी सिद्ध हुए बिना नहीं रहता कि मौंते और चोटें (जो कि अकेले दिगंबरों को ही पहुँची हैं ।) यदि किसी अचिन्त्य अकस्मात की परिणाम न थींतो पहले ही से नियंत्रित आक्रमण का परिणाम थीं और किसी भी प्रकार का उपद्रव न होने पर भी निर्मम (Cold blooded) हत्यायें थीं।

श्वेतांबर प्रतिनिधि इन दो बातों पर खास जोर देते हैं कि (१) उक्त मौतें अकस्मात् के कारण हुई थीं और (२) पुलिस भी इन मौतों के लिये जवाबदार नहीं है। आरोपी पक्ष की तरफ से बिना पूछे ही दूसरे पॉइन्ट पर जोर दिया जाता है यही खास अर्थसूचक है। पुलिस के बचाव के लिये दौड़धूप करने की किसी भी पक्षकार को इतनी क्या गरज (जरूरत) है ? **इसका रहस्य यही है कि पुलिस का बड़ा अमलदार श्वेतांबर जैन है और इस भीषण अत्याचार करने के केवल एक माह पहले ही वह इस पद पर आया था। इस रोमांचकारी हत्याकाण्ड के केवल १ दिन पहले ही उसने अपनी बड़ी फौज के (और दिगम्बरों के कथनानुसार तो तोपों सहित) साथ मंदिर के अंदर अड्डा जमा लिया था इत्यादि हकीकतें श्वेताम्बर स्टेटमेंटों में (Statements) क्यों छिपाई जाती हैं ?**

दूसरी बात यह है कि मृत्युघटना प्रसंग पर जब कोई भी श्वेताम्बर मंदिर में उपस्थित न था, ऐसा श्वेतांबर वकील कहता है तो फिर उसने (श्वेतांबर वकील ने) कैसे जाना कि

इस हत्याकांड में पुलिस का कोई भाग न था ? श्वेतांबर वकील स्वयं तो हत्याकांड होने के बाद बंबई से रवाना होकर पहले उदयपुर और पीछे से धुलेव पहुँचता है। इससे यह तो सिद्ध ही है कि स्वयं तो **Eye witness** (प्रत्यक्षदर्शी गवाह) तो नहीं था; और मृत्युघटना के समय श्वेतांबर पक्ष का एक भी आदमी उपस्थित न होने से वकील साहब का कोई भी स्वधर्मी यह बात नहीं जान सकता कि असली और सच्ची बात क्या थी; तो जिस पक्ष पर हत्या करने का आरोप था उसी से एकान्त में मिलकर क्या उसी पक्ष के वकील द्वारा 'स्वतंत्र जाँच के परिणाम' प्रकाशित किये जा सकते हैं ? क्या उससमय तक स्टेट की तरफ से जाँच हो गई थी ? यदि नहीं हो गई थी तो स्टेट की पुलिस छुपे तौर से एक अज्ञात तृतीय पुरुष को हकीकतें कैसे सूचित कर सकती है? और मान लिया जाये कि स्टेट की जाँच पूरी हो गई थी तो वह तभी प्रगट क्यों नहीं की गई और दिगम्बरों तथा पोलिटिकल एजेंट को माँगने पर भी क्यों नहीं मिल सकी ?

तारीख ६ मई को मोतीचंद उदयपुर में थे और ८ तारीख को मजिस्ट्रेट एवं डाक्टरी जाँच का परिणाम अपनी रिपोर्ट में प्रगट कर देता है तो दूसरी तरफ दिगंम्बर जैन गृहस्थ अजमेर का ऑनरेरी मजिस्ट्रेट डाक्टर गुलाबचंद पाटनी कि जिनको तारीख ७ को धुलेव जाते हुए रोका गया था, वे तारीख ९ को उदयपुर से तार करते हैं कि बड़े दीवान ने मुझे धुलेव जाने की मनाई की है, डाक्टर का **Post mortem** (मरते समयकी रिपोर्ट) अभी तक दरबार में भेजी नहीं गई है और केशरियाजी के मंदिर में स्थानीय दिगंबर जैनों को दर्शन के लिये भी मंदिर में नहीं जाने दिया जाता, दिगम्बर यात्रियों को भी वहाँ नहीं जाने दिया जाता है ! इत्यादि ....। इन सबका जो कुछ अर्थ हो सकता है, वह यही है कि लश्कर के श्वेताम्बर अफसर ने श्वेतांबर समाज की तरफ से और अपने को मिले हुए पदस्थ की फौजी सत्ता से अपने अधीनस्थ लश्कर का उपयोग कर दिगम्बरों पर आक्रमण किया और उनके आदमियों को मार डाला और दूसरों को चोटें पहुँचाई थीं। इसके उपरान्त एक तरफ तो प्रमाण नष्ट करने के लिये स्थानिक श्वेतांबर अधिकारियों ने उदयपुर में बड़े-बड़े प्रयत्न किये थे और दूसरी तरफ से बाहर की जनता एवं ब्रिटिश सत्ता की आँखो में धूल झोंकने के लिये अस्थानीय श्वेतांबरों की मदद लेने की योजना की गई थी, इसके सिवाय दूसरा निदान **(Inference)** नही किया जा सकता।

जिससमय यह **Re-adjustment** (पुनर्व्यस्था) लिखी जा रही है व अभी तक (ता. ४ जून अर्थात् हत्याकांड से १ माह बाद तक) दिंगबर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को एक भी

रिपोर्ट पोलिटिकल एजेन्ट या स्टेट की तरफ से नहीं मिली है । राजपूताने के अग्रणी दिगम्बर नेताओं और सर हुकमचन्दजी सरीखे व्यक्तियों द्वारा महाराणा महाराजकुमार एवं पोलीटिकल एजेन्ट को बार बार आग्रह एवं प्रार्थना करने पर भी वे रिपोर्ट की नकल नहीं पा सके हैं और बंबई के श्वेतांबर वकील मोतीचंद तथा जौहरी रणछोड़भाई को ता. ८ मई के पहले ही ये रिपोर्ट मिल जाती हैं । यही नहीं, बल्कि हत्याकांड के स्थान पर मरनेवाले दिगम्बर पक्ष के किसी भी आदमी को नहीं जाने देने की व्यवस्था की जाती है, दिगम्बर तारों को रोका जाता है और सच्ची सच्ची घटना को कहने वालों को धमकाया जाता है । से सब बातें क्या कम रहस्यमय हैं ?

श्वेतांबर साक्षी रणछोड़भाई इतना तो स्वीकार करते हैं कि ता. ४ मई के दिन जबकि मामला गम्भीर तूफानी था । तब बाहर के लोगों को दाखिल करने की केवल एक दिन की मनाई की गई थी । उनके स्टेटमेंट में से निम्नलिखित मुख्य दो बातें निकल आती हैं कि (१) ता. ६ तक १५० फौजी आदमी मंदिर में ही थे तो फिर ता. ४ को मरण होने के बाद किसी को भी मंदिर में आने की मनाई करने का कारण क्या था? क्या कोई आदमी बाहर से आकर १५० फौजियों के विरुद्ध बलवा करता? अथवा क्या लोहू के दाग धोने की सहूलियत के लिये मंदिर एवं ग्राम में प्रवेश की मनाई करने की अनिवार्य आवश्यकता मालूम हुई थी? यह लेख लिखते समय इस 'दरबार' को यह खबर मिली कि दिगम्बर लोगों की बड़ी बेदर्दी से हत्या करने के अनेक चिन्ह रिपोर्ट में लिख लिये गये थे । जखमों की गहराई , पसलियों का टूटना, लोहू का झरना लग जाना, चेहरा एवं शरीर खून से भर गया था और उनकी स्थिति त्रासदायक बन गई थी आदि आदि अनेक बातें रिपोर्ट में लिखी गई थीं । इस रिपोर्ट के विषय में बहुत कुछ गड़बड़ी भी हुई थी, (२) श्वेतांबर साक्षी मोतीचन्द कहते हैं कि ता. ४ मई को श्वेताबंर-दिगम्बरों के बीच में कोई कैसी 'फिसाद' या 'तकरार' ही नहीं हुई और उससमय एक भी श्वेतांबर मंदिर में हाजिर न था और पुलिस द्वारा केवल बाहर चले जाने को कहने से ही दिगम्बर इतने डर गये कि फौरन वहाँ से भाग खड़े हुए और सीढियों पर फिसल पड़े और दूसरे भाइयों द्वारा कुचले जाकर मर गये ।

श्वेतांबर साक्षी रणछोड़भाई भी यद्यपि कुचले जाकर श्वाँस रूँध जाने से मृत्यु होने की बात कहते हैं, फिर भी साथ ही में यह भी कह जाते हैं कि ता. ४ मई को 'मामला गंभीर तूफानी था'और कुछ आगे जाकर यह भी कहते हैं कि – **'दिगम्बर एवं श्वेताम्बर के बीच में ध्वजा चढ़ाने के हक्क के सम्बन्ध में मारामारी हुई थी'** – इसके आगे तो आप और भी कमाल करते हैं; एक बात को छिपाने की कोशिश में दो बातें स्पष्ट खोल देते हैं । आप कहते हैं कि -- **'इस तूफान के परिणाम में किसी भी स्त्री का तो खून नहीं**

हुआ; सच्ची बात तो यह है कि यह मारामारी केवल पुरुषों में ही हुई थी, सम्भव है कि इसी अरसे में इसी ग्राम की कोई भी स्त्री मर गई तो उसको भी इसी तूफान के कारण मरी हुई समझ लिया गया हो।' मारामारी, तूफान, तूफानी मामला, तूफान के परिणामों में मृत्यु होना, इत्यादी कबूलातें श्वेतांबर साक्षी के मुँह से श्वास रुक जाने की थियरी (Theory) बोलने के साथ साथ ही निकलती है और एक ही रटन्त बात निकलती है। एक तरफ श्वेतांबर वकील कहता है कि दिगम्बर श्वेताम्बरों में लड़ाई तो क्या तकरार या बोलाचाली तक भी नहीं हुई, तो दूसरी तरफ दूसरा श्वेताम्बर साक्षी श्री रणछोड़भाई मारामारी, तूफान आदि सब कुछ स्वीकार करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि श्वेतांबर वकील के कथन में जो अशक्यता टपकती थी, उसी को सुधारने के लिये ही दुसरे साक्षी केमुँह से वैसा स्टेटमेंट कराया गया था। परन्तु 'थियरी' की अशक्यता को सुधारते हुए उनके कथन में से सत्य घटना का इतना हिस्सा तो स्पष्ट झलक जाता है कि चार मनुष्यों की मृत्यु – मारामारी एवं फ़साद के बिना ही नहीं हो गई थी और अकस्मात् से भी नहीं हुई थी , बल्कि मारामारी होने से ही हुई थी और यह मारामारी श्वेतांबरों एवं दिगम्बरों के बीच में हुई थी। इसतरह श्वेतांबर वकील का कथन स्वयं ही बाधित हो जाता है, और मारामारी न होने की वे जो आवाज लगा रहे हैं, वह सर्वथा असत्य एवं जाली सिद्ध हुए बिना नहीं रहती। खैर ! दूसरे साक्षी की गवाही से सिद्ध हो जाता है कि यह मारामारी दिगम्बरों एवं श्वेतांबरों के बीच में हुई थी। इतना ही नही; किन्तु ४ दिगम्बरों की मौत तो इस मारामारी के कारण हुई थी।

श्वेतांबर साक्षी एक दिगम्बर स्त्री की मृत्यु होना तो स्वीकार करता है,। 'उसको मान ली गई होगी' स्वयं यह सिद्ध कर देते हैं कि खास जाँच करने के लिये ही गये हुए इस स्वयंमन्य मजिस्ट्रेट को स्त्री की मृत्यु का कारण अवश्य ज्ञात हो सका था। इस व्यवहारकुशल जौहरी का इस मुद्दे पर हिचकिचाना अर्थशून्य नहीं है। शत्रुपक्ष की स्त्री की मृत्यु होना इतना तो जरूर सिद्ध करता है कि मारामारी करने का लेशमात्र भी इरादा या उसके होने की आशंका दिगम्बरों को नहीं थी, यदि होती तो वे लोग अपनी स्त्रियों सहित अवश्य ही इस प्रसंग पर हाजिर नहीं हुए होते। सच्ची बात का पर्दा तो अभी ही खुलता है कि स्त्री एवं पुरुषों इन दोनों ही पर खूनी आक्रमण किया गया था। निःसंदेह उनपर आक्रमण तो फौज के सिपाहियों ही ने किया था, परन्तु यहाँ यह नहीं भूल जाना चाहिये कि आक्रमण करनेवाली तमाम फौज का सेनापति एक श्वेतांबर जैन था और वह इस तूफान से मात्र एक माह पहले ही एक अजैन अमलदार की जगह पर नियत हुआ था। प्रजावर्ग के श्वेताम्बरों ने भी थोड़े बहुत अंश में इस लड़ाई में भाग लिया था या नहीं - यह पीछेसे देखा जायेगा। यह प्रश्न बहुत मुख्य नहीं है, क्योंकि अफसर तरीके अथवा खानगी व्यक्ति तरीके आक्रमण तो श्वेतांबर पक्ष के

द्वारा श्वेतांबरों के लाभ के लिये ही हूआ था। दूसरे श्वेतांबरों का इस उपद्रव में शामिल होना यदि सिद्ध हो जाय तो उन लोगों का सजा देना शक्य भी हो सकेगा, परन्तु यह 'दरबार' 'सजा' में विश्वास नहीं करता, इसलिये इसकी जाँच कुछ भी विशेष अर्थसाधक नहीं है।

'तूफानी मामले' के समय किसकी कितनी संख्या थी – इस विषय में श्वेतांबर साक्षी जो कि आरोपी पक्ष के स्वधर्मी, रक्षक एवं प्रोपेगेन्डिस्ट (आन्दोलन करनेवाले) हैं, तरह तरह की झूठी बातें खड़ी करते हैं और ऐसा करते हुए अपने ही असीलों को फसा बैठते हैं। श्वेतांबर साक्षी मोतीचन्द अपनी रिपोर्ट के एक पेरेग्राफ में लिखते हैं कि उससमय सिर्फ दो श्वेतांबर उपस्थित थे और उसी रिपोर्ट के दूसरे पेरेग्राफ में लिखते है कि – "उससमय एक भी श्वेतांबर उपस्थित न था।" इसी तरह एक दूसरी जगह वे लिखते हैं कि 'श्वेतांबरों – दिगंबरों के बीच में लड़ाई-दंगा तो क्या बोलचाल तक भी नहीं हुई थी, परन्तु इसी लेख के अन्त में आपका **Sub-Conscious Mind** बोले बिना नहीं रहता कि जो कुछ भी घटना घटित हुई थी, वह मात्र एक **Mischief** (शैतानी) थी। लिखने में आपकी अन्तरेच्छा सिर्फ यही है कि इस **Mischief** के लिये श्वेतांबरों को कोई भी जिम्मेदार न समझे, उन्हें बिलकुल जिम्मेदार न मानें ! उनके शब्द इसप्रकार हैं कि – **"One thing is absolutely certain and it is this-for this MISCHIEF, Swetambers are not at all responsible.** इसका अर्थ क्या ? यही कि कुछ न कुछ 'मिस्चीफ' तो वहाँ जरूर हुई थी और उसके लिए कोई न कोई एक पक्ष जिम्मेदार तो था ही, भले ही वह श्वेतांबर हो या पुलिस हो अथवा श्वेतांबर अधिकारी की फौज के साथ साथ श्वेतांबर जनता हो कुछ भी क्यों न हो, परन्तु फिर भी श्वेतांबरों की जिम्मेदारी मानने की किसी को उद्धता नहीं करनी चाहिये ! कारण ! बस इसीलिये कि इतनी दौड़धुप और कानून से भरे हुए दिमाग की इतनी मगजमारी करने के बाद भी यदि श्वेतांबर पक्ष दोषी सिद्ध हो गया तो फिर उनका श्वेतांबर समाज फिर पुनः विश्वास कैसे करेगी ?

इस श्वेतांबर वकील साक्षी पर तो वस्तुतः इस 'दरबार' को दया आती है; क्योंकि अपने स्वधर्मियों को बचा लेने की कीर्ति प्राप्ति की आशा में वह भूल से अपने ही ऊपर 'मिस्चीफ' कर बैठता है। एक दोष को ढाँकने में उसने अन्य अनेक दोष पैदा कर डाले हैं, इस बात का बिचारे को जरा भी ध्यान नहीं रहा। यहाँ पर इस साक्षी की **Psychology** (मानसिक स्थिति) को और भी बारीकी से जाँच करने की जरुरूत इसलिए है कि ऐसा करने से कानूनी एवं धार्मिक सृष्टियों की होनेवाली स्वस्थ अथवा अस्वस्थ दशा का ख्याल आ जायेगा।

साक्षी मोतीचंद कहते हैं कि "यह मंदिर कि जिसकी मालिकी एवं **Management** (प्रबन्ध) दोनों श्वेतांबरों के अधिकार में हैं पर लगभग एक शताब्दी के

बाद यह ध्वजादंड तारीख ४ को होनेवाला था और वह श्वेतांबरों की तरफ से होनेवाला था और सो भी स्टेट की आज्ञा से। उस मंदिर में "जो कि एक सामान्य मन्दिर नहीं है, बल्कि समस्त भारत के दिगंबर-श्वेतांबर जैनों का एक पवित्र तीर्थ एवं अतिशय क्षेत्र माना जाता है।" तारीख ४ को होनेवाले उत्सव में सम्मिलित होने के लिए १००० श्वेतांबर घरवाले उदयपुर से केवल १४ आदमी गये थे और बाहर से आये हुए यात्रियों की संख्या मिलाकर कुल ७५ श्वेतांबर वहाँ हाजिर थे ! "और" जिससमय ४ दिगम्बरों की मौतें हुई, उस समय तो इनमें से एक भी श्वेतांबर वहाँ उपस्थित न था, यद्यपि उससमय भी श्वेतांबर धर्म के अनुसार क्रिया-कर्म तो सब कुछ ज्यों का त्यों चालू ही था – ऐसा वह स्वयं कहता है कि "सब श्वेतांबर उससमय जीमने को धर्मशाला में गये थे"

इसके आगे यह भी लिखता है कि "इस प्रसंग पर सरकारी हुक्म को तोड़ने के खास उद्देश्य से ही दिगम्बर लोग एकत्रित हुए थे, जिनकी संख्या लगभग ८०० थी; परन्तु उपद्रव के समय तो उनमें से कुल ५०० के लगभग उपस्थित थे।" दूसरे ३०० मानो उड गये थे ! यह संख्या उनकी 'डेली मेल' में प्रकाशित रिपोर्ट में दी हुई है। श्वेतांबर कॉन्फरेन्स के मार्फत यही साक्षी अपनी जो रिपोर्ट 'बम्बई समाचार' में प्रगट करता है, उसमें श्वेतांबरों की ४०० की हाजरी लिखी है। स्टेट पुलिस की संख्या **'Good number'**(काफीतादाद) में होने की बात लिखता है, परन्तु उसकी तादाद के लिये सच्ची-झूठी कोई नियत संख्या नहीं लिखता है। साथ ही साथ उसका अधिकारी श्वेतांबर है – इस बात को भी छिपाता है। पुलिस की इतनी बडी संख्या को किसने और क्यों पहले से ही बुलाया था और खासकर तब जबकि स्टेट ने उनको ध्वजादंड क्रिया करने का हुक्म ही दे दिया था, फिर भी यह पुलिस पहले से ही तोपखाने के साथ क्यों बुलानी पड़ी – इसका वह कोई भी उल्लेख नहीं करता है। श्वेतांबर वकील साक्षी फौजियोंकी संख्या छिपाता है, परन्तु उसकी 'यथेष्ट संख्या' होना तो स्वीकार करता है। दिगम्बर लोग कहते हैं कि फौजियों की संख्या १५० थी ऐसी दशा में यह 'दरबार' यह बात तो आसानी से मान सकता है कि फौजियों की संख्या कम से कम १०० तो जरूर ही रही होगी। इतने बड़े लश्कर को श्वेतांबरों ने पहले से ही मंदिर में तैयार रखा था और उसका कार्य (जैसा कि श्वेतांबर कहते हैं) केवल ४०० दिगम्बरों पर देखरेख रखने का ही था। थोड़ी देर के लिए यदि दिगम्बरों की बातों को न मानकर इस श्वेतांबर वकील के कथन पर ही विश्वास किया जाये तो भी जिस मंदिर में देश-विदेश के हजारों यात्री हमेशा आते रहते हैं ऐसे विशाल मंदिर में केवल ४०० दिगम्बरों और १०० फौजियों की उपस्थति से घातक "गरदी (भीड़) हो जाय, जिससे दबकर ४ मनुष्य तात्कालिक मरण पावें--यह बात सर्वथा असम्भव एवं अविश्वास्य है। एक छोटा -सा बच्चा

भी इसकी सत्यता में विश्वास नहीं कर सकता।

थोड़ी देर के लिये मान भी लीजिये कि बड़ी भारी भीड़ हो गई थी जिसमें ४ मनुष्य दब भी गये थे तो क्या प्रजा की रक्षा के लिये नौकरी पानेवाले उन १०० सिपाहियों में से किसी एक को भी वे पड़े हुए मनुष्य दिखाई न दिये ? सिर्फ ४०० आदमियों में से ४ आदमी और १ स्त्री को मरने के अंतिम दम तक भी खोजा न जा सका और न उनको कोई कैसी भी सहायता ही पहुँचाई जा सकी ? क्या फौज के जैन अफसर ने अपने जैनधर्म के अहिंसा तत्त्व के अनुसार अथवा राज्य के प्राथमिक कानून के अनुसार इन लोगो को मरने से बचाने के लिये किसी प्रकार की तिलमात्र भी कोशिश की थी ? धुलेव, खैरवाड़ा या उदयपुर के डाक्टरों की मदद के लिये क्या उसने घुड़सवार या मोटरें भेजने का अथवा अन्य कोई उपाय उन्हें बुलाने का किया था ? श्वेतांबरों की संख्या भले ही ७५ हो, परन्तु आखिर को वे थे तो अहिंसाधर्म को मानने और पूजनेवाले ही, फिर उनने जीमकर आने के बाद क्या अपने सवधर्मियों को मरने से बचाने का कोई उपाय किया था ?

दूसरे घायल हुए मनुष्यों की सार-सम्हाल खुद उनने न की तो न सही; परन्तु अजमेर से एक डाक्टर को धुलेव आने में क्यों रोका गया ? तारीख ६ तक तो मुर्दों की लाशें वहीं मंदिर में पड़ी थीं तो फिर उनके सामने ही 'उत्सव' करने, बाजे बजाने, जिमणवार उड़ाने और धार्मिक क्रियाएँ करने तक का अधःपतन श्वेतांबरों को क्यों कर सूझ पड़ा ? क्या यह हत्याकांड की सफलता की खुशी नही मनाई गई थी ? स्वधर्मियों की लाशों के पड़े रहने पर भी तारीख ६ को पाटण निवासी श्वेताबर सेठ All well' (सब ठीक है) का सब जगह सिगनल देता है और क्रिया बड़े 'आनन्द' एवं शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो जाने की खुशहाली का तार भेजता है – क्या ये सब बातें इन लोगों की पिशाची मनोवृत्तिको नहीं बताती है ? उनकी 'विजय भावना' अन्तिम दर्जे तक भ्रष्ट हो चुकी है, क्या यह बात श्वेतांबर वकील के ऐसा कहने से कि 'वे लोग नामर्द (Cowards) होने से मरे हैं' सिद्ध नहीं हो जाती ? मनुष्यत्व के अन्तिम अवधि तक के अभाव का इससे भयंकर उदाहरण और कहीं क्या मिल सकेगा ?

परन्तु इस उदाहरण का और भी भयंकर रूप तो अभी आगे आता है और वह किस – किस तारीख को भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा जो कुछ भी किया गया था, उसको एकत्रित कर अनुक्रम से रखने से मालूम हो जायेगा :-

९. दिनक्रमानुसार घटित दुर्घटनायें

चौथी मई से पहले का हाल

(१) कुछ दिन पहले ही से धुलेव में **आनन्दसागर** नाम के साधु को भेज दिया गया था। यह साधु सारे भारत में धर्मोन्माद के लिये प्रसिद्ध है। अभी हाल में ही अहमदाबाद के सिटी मेजिस्ट्रेट ने इसी प्रकार के एक साधु के विरुद्ध फौजदारी मुकद्दमें के फैसले में इन लोगों की मनोवृत्ति के सम्बन्ध में एक खास अर्थसूचक टीका की है, जिसको इस प्रसंग पर मुश्किल से भूला जा सकता है।

(२) एक महिने पहले **'मांगरा'** के क्षत्रिय अमलदार की जगह **लक्ष्मणसिंह** नामके एक श्वेताम्बर की बदली की जाती है और उसको हत्याकांड के एक दिन पहले से ही इस मंदिर में फौज के साथ बुला लिया जाता है।

(३) लगभग एक शताब्दी बाद होनेवाले ध्वजादंड सरीखे अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग के आने पर भी तमाम जनता को सूचित करने के लिये किसी भी प्रकार की 'आमंत्रण पत्रिका' नहीं प्रकाशित की गई। जब ३ दिन पहले ही इसकी 'गंध' दिगम्बरों को लगती है तो वे महाराणा एवं महाराजकुमार से मिलकर उनके द्वारा 'ध्वजादंड' न चढ़ाने का हुक्म दिलवाते हैं, जिसके जवाब में श्वेतांबर अफसर महाराणा को विश्वास दिलाते हैं कि 'कुछ भी क्रिया होनेवाली नहीं है और दिगम्बर लोग झूठी-झूठी खबरें देकर महाराणा साहब को व्यर्थ ही तंग कर रहे हैं'(श्वेतांबर साक्षी मोतीचंद के स्टेटमेंट के **"In the mean time Digambers got scent of the matter.** ये शब्द खास अर्थसूचक हैं।)

(४) महाराणा तथा पोलिटिकल एजेंट बाहर गये हुए थे।

तारीख ४ मई सन् १९२७

(५) प्रातःकालः श्वेताम्बर लोग दिगंबर नग्न मूर्ति पर मुकुट, कुंडल चढ़ाना शुरु करते हैं। आज से ८ महीने पहले भी इन लोगों ने मूर्तियों पर मुकुट कुंडल चढ़ाये थे, जिनको महाराणा साहब ने फौरन ही उतरवा दिये थे और फिर ऐसी उद्धतता न करने का खास हुक्म फरमाया था।

(६) दोपहरः-उक्त क्रिया शुरु होते ही धुलेव के दिगम्बरों ने उदयपुर के पंचों को इस बात की खबर दी। फौरन ही उदयपुर से एक ब्रह्मचारी के नेतृत्व में १० दिगम्बरों का एक डेपूटेशन मोटर द्वारा रवाना होकर दोपहर को धुलेव आ पहुंचा। उसने श्वेताम्बरों को ३ दिन और ८ महीने पहले महाराणा के दोनों हुक्मों की याद दिलाई। एक तरफ डेपुटेशन श्वेतांबर

नेताओं के साथ बातचीत कर रहा था और दूसरी तरफ श्वेतांबर लोग दिगंबर मूर्तियों को मुकुट- कुंडल चढ़ाकर श्वेतांबर बना रहे थे। तमाम मूर्तियों पर मुकुट- कुंडल चढ़ जाने के बाद ही ध्वजादंड क्रिया करने और उस क्रिया को अमर बनाने के लिये एक और शिलालेख लगाने की योजना की गई थी। इस योजना को पूर्ण करने के बाद उसके द्वारा ही इस मंदिर पर अपना 'हक्क' सिद्ध करने का था। तारीख ४ मई सन् १९२७ तक तो श्वेतांबर लोग इस मंदिर पर अपनी मालिकी का 'हक्क' नहीं कर सके थे। अभी तक तो केवल व्यवस्था दिगंबरों के हाथ में से और फिर वहाँ से स्टेट की तरफ से श्वेतांबर द्वारा नियत किये हुए श्वेतांबर हाकिमों एवं श्वेतांबर कमेटी के हाथ में सौंप दी गई थी और आज की क्रिया के होने के बाद मालिकी का "हक्क" सिद्ध करना था, जिसमें तमाम मूर्तियों का श्वेतांबरी रूप और ध्वजादंड चढ़ाने का शिलालेख ये दो प्रमाण का काम देते।

परन्तु अभी तो थोड़ी ही मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़े थे कि इतने में लगभग १ बजे उदयपुर से दिगंबरों का डेपुटेशन आ पहुँचा और उसने महाराणा द्वारा मना किया हुआ-यह कार्य नहीं करने और सजी हुई मूर्तियों पर से अंलकार उतार लेने के लिये निवेदन किया। दोनों ही पक्ष यह स्वीकार करते हैं डेपुटेशन के इस निवेदन का कोई असर नहीं हुआ, यही नहीं; बल्कि दिगम्बरों पर ही श्वेताम्बर अफसर वाला लश्कर टूट पड़ा। यज्ञ के निमित्त एकत्रित की गई लकड़ियों एवं बंदूकों के कुंदों से भीषण मारा-मारी की गई, जिसके परिणामस्वरूप ४ दिगम्बर तत्काल ही वहाँ मरकर गिर पड़े, १०० से अधिक घायल हुए, जिनको देखकर श्वेताम्बर जनता और श्वेतांबर अफसर भयभीत होकर वहाँ से भाग खड़े हुए। मुकुट-कुंडल चढ़ाने की और ध्वजादंड चढ़ाने की क्रिया जहाँ की तहाँ पड़ी रह गई।

(७) राज्य में गहरा अंधेर चलने और श्वेताम्बरों के वकीलों की अधिकता के कारण और सबकुछ भले ही संभव हो, परन्तु अनेक आदमियों की हत्या करने के गुनाह को तो क्षमा नहीं मिल सकती है-इस बात को वे लोग भली प्रकार जानते थे; क्योंकि महाराणा एवं महाराजकुमार के सिवाय पोलिटिकल एजेंट भी तो इसका जवाब- तलब करता ही, इसलिये उन तीनों खबर ही न मिलने पावे और सब कुछ मामला जहाँ का तहाँ दवा देने का खास जरूरत पडी। इस कारण तारीख ४ के दोपहर के बाद का समय मंदिर के किवाड़ बंद करके खून से रंगी हुई मंदिर की जमीन को साफसूफ करने में बितायी गयी और बंबई के श्वेताम्बर जैन कॉन्फरेंस आफिस को तार कर अति शीघ्र रक्षार्थ आने की प्रार्थना की गई।

तारीख ५ सन १९२७

(८) डाक्टरी और मजिस्ट्रेट की जाँच का नाटक जल्दी ही करा डालने की तरकीब

की गई।

तारीख ६ मई सन १९२७

(९) पाटण निवासी श्वेताम्बर श्रीमन्त बंबई से धुलेव जा पहुँचता है और उसके हाथ से लश्कर की हाजिरी में अवशिष्ट क्रिया पूर्ण की जाती है; ध्वजादंड चढ़ाया जाता है और इस विजय के तार जगह-जगह भेजे जाते हैं।

तारीख ७ मई सन् १९२७

(१०) तारीख ४ के तार के कारण बंबई श्वेतांबर कॉन्फरेन्स की तरफ से आया हुआ श्वेतांबर सॉलीसिटर मोतीचंद उदयपुर के अमलदारों एवं श्वेतांबरों से मिलकर यहीं से (धुलेव से नहीं) बंबई को तार भेजता है और पीछे से वह तथा बंबई से आया हुआ दूसरा श्वेतांबर श्रीमंत रणछोड़भाई झवेरी धुलेव जाते हैं।

तारीख ८ मई सन १९२७

(११) साक्षी मोतीचंद धुलेव में अधिकारियों से मिलकर 'डेलीमेल' एवं 'बंबई समाचार' 'श्वेतांबर कॉन्फरेन्स आफिस' आदि को पत्र लिखता है, जिसमें अन्त में लिखता है कि "उसकी भेजी हुई खबरों को खूब ही प्रचार करना और यदि कुछ भी शंका रह जाती हो तो उसको लिखकर पूछ लेना, क्योंकि वह अभी दो दिन तक वहाँ और ठहरेगा और बाद में एक दिन उदयपुर ठहरेगा"। (ऐसा लिखते समय उसको पूर्ण विश्वास होना ही चाहिये कि तारीख ८ का पत्र धुलेव से बंबई पहुँचे और उस पर से 'शंका' का पत्र यदि उसी समय बिना विलम्ब किये ही लिखा जाये तो भी वह उसे उदयपुर छोडने के पहिले तो मिल ही नहीं सकता है)। इसके आगे अपनी सफाई देते हुए यह लिखता है कि 'इस संबंध में दो कौमों के बीच में बैर बढ़े – ऐसी खबरों को फैलाने के पहले प्रत्येक जैन नेता का कर्तव्य है कि वह स्वयं जांच करके वस्तुस्थिति को प्रगट करे' स्वयं जाँच करने का आमंत्रण एवं पवित्र सलाह देनेवाला यह पत्र जल्दी में तारीख १० तक ही बंबई आ सकता है, परन्तु--

तारीख ९ मई सन् १९२७।

(१२) तारीख ९ मई को तो उदयपुर से अजमेर के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट डाक्टर गुलाबचंदजी पाटणी, जो कि घायलों की सेवा-सुश्रूषा एवं दवा-दारु के लिये धुलेव जाने के लिए उदयपुर आये थे, उनको वहाँ जाने से रोका गया था, क्योंकि वे दिगंबर थे। उनका तारीख ९ को उदयपुर से भेजा हुआ तार डंके की चोट कहता है कि:--

All Communication to Rikhabdeo cut off. His Highness and Resident not here:--Maharaj Kumar misguided by his Private Secretary Tejsingh. Tejsingh a Swetambari. Maharaj Kumar yesterday twice fixed time for

personal interview, but when Tejsingh came there the promised interview was refused........ Chief Minister disallowing me to go Rikhabdeo........Docter's Post Mortem Report has not yet reached Mahakma Khas. This creates sus picion among public.......The inner entrance door of Rikhabdeo closed and even Digamber pilgrims not allowed to enter the temple. Local Digambers not allowed not as yet to enter the temple even for Darshan........ Digambers want Non-official Commission for impartial inquiry and immidiate removal of Magra Hakem who is responsible for Rikhabdeo Tragedy and who is a Swetamber. Great influence of Tejsingh and other Swetamber officers prevailing over state officers. Digambers helpless, no-body hearing their grievances.

ऐसी भयंकर वस्तुस्थिति पैदा करके अथवा स्वयं देखकर भी पीछे से प्रत्येक जैन नेता को केशरियाजी 'स्वयं जाकर जाँच करने' के लिये आंमत्रण देने का पवित्र ढोंग किया जाता है ! और यह ढोंग भी कितनी सच्ची दानत से किया, जाता है, यह बात उसका ८ वीं तारीख का पत्र तारीख १० को बंबई पहुंचने से पहले ही एक आकस्मिक घटना से पकड़ा जाता है, क्योंकि--

तारीख ९ मई, सन् १९२७

(१३) उदयपुर से डा. गुलाबचन्दजी पाटणी द्वारा भेजा हुआ तार उसी दिन बंबई की तीर्थक्षेत्र कमेटी को मिल जाता है, जिससे कमेटी को एक डेपुटेशन भेजने की खास जरूरत मालूम पड़ती है। कमेटी को दोनों पक्षों के नेताओं द्वारा बने हुए एक कमीशन द्वारा जाँच कराना विशेष उचित मालूम पड़ता है, जिससे दोनों ही पक्षों को जाँच के विषय में शंका न रह जाये, इसीलिये तारीख ९ को ही उक्त दिगबंर तीर्थक्षेत्र कमेटी ने श्वेतांबर कॉन्फरेन्स को पत्र लिखा है कि--"इस मामले की जाँच के लिये एक दिगम्बर डेपूटेशन जाना चाहता है,इसलिये संयुक्त जाँच के लिए आप अपनी तरफ से प्रतिनिधि भेज देवें तो बहुत अच्छा होगा। हमें आशा है कि आप हमारे इस **Proposal** को स्वीकार करेंगे।"

विचारणीय बातें : जाँच के लिये स्वयं जाने के लिये सबको आग्रह करने वाला श्वेतांबर जैन कॉन्फरेन्स के अधिकारी मोतीचन्द का तारीख ८ का पत्र तारीख १० को बम्बई पहुँचता है। मोतीचन्द के उक्त पत्र के प्रकार को देखते हुये तो सामान्य बुद्धिवाला व्यक्ति भी बेधड़क यह कल्पना कर सकता है कि दिगबंर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के इस आमन्त्रण का

जवाब श्वेतांबर कॉन्फरेन्स की तरफ से 'हकार' (स्वीकृति के रूप में) दिया गया होगा, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने तारीख १४ तक उक्त आमन्त्रण का कोई कैसा भी जवाब न देकर उन्हें अकेले उदयपुर जाने से रोके रखा। मोतीचन्द का स्वयं आकर जाँच करने का आमंत्रण तो केवल समाचारपत्रों में प्रगट कर भोली जनता के हृदयों को अपनी तरफ आकृष्ट करने का बहाना मात्र था। फिर तारीख ९ को ही उदयपुर से पूनमचन्द कोटावाले ने अपनी बम्बई की दुकान को तार किया था कि – "पत्र देखो" इस पत्र में वहाँ की वस्तुस्थिति लिखी होनी चाहिये और दिगम्बरी जाँच डेपुटेशन कुछ दिन के लिये और भी रुक जाये इस बात की आवश्यकता बताई होगी। इसीलिये दिगबंर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के ९ वीं के पत्र का उत्तर तारीख १४ को दिया गया और वह भी डेपूटेशन में श्वेतांबर सभ्य भेजने की अस्वीकारता का। इतना ही नहीं, बल्कि उत्तर में इतनी लिखने की प्रमाणिकता नहीं बताई गई कि श्वेतांबर कॉन्फरेन्स की तरफ से तो जाँच के लिये श्री मोतीचन्द आदि कभी के वहाँ जा पहुँचे हैं और इसलिये अब फिरसे मेम्बर भेजने की जरूरत नहीं रही है। मोतीचन्द आदि लोगों के पहले ही जा पहुंचने की बात को छिपी रखने की इनकी आतुरता कम अर्थसूचक नहीं है।

तारीख १० के 'बम्बई समाचार' में यही श्वेताम्बर कॉन्फरेन्स आफिस और श्वेताम्बर एसोसियेशन दोनों मिलकर इसतरह ऑफीशीयल (Official) स्टेटमेंट प्रगट करती हैं कि -- 'ऐसा कहा जाता है कि केशरियाजीं में दिगम्बरों एवं श्वेतांबरोंके बीच में मारामारी हुई थी। यह समाचार सुनकर जैन एसोसियेशन ऑफ इंडिया एवं जैन श्वेतांबर कान्फरेन्सने इस विषय में जाँच करने के लिये उदयपुर को तार भेजा था, जिसके जवाब में निम्नलिखित उत्तर मिला है........' ये दोनों श्वेतांबर संस्थाएं ढोंग करती हैं कि ता. ८ को मिले हुए तारके पहले वे इस विषय में कुछ भी जानती न थीं ! यह तार उनके द्वारा जाँच के बहाने से गुपचुप भेजे हुए मोतीचन्दने ही भेजा था, यह बात भी वे संस्थाएं प्रगट नहीं करती हैं !

ये श्वेतांबर संस्थाएँ कि जिनमें से एक ऑल इण्डिया के श्वेतांबरों का प्रतिनिधित्व रखने का दावा करती है और दूसरी समस्त भारत के यावन्मात्र (चारों संप्रदायों) के प्रतिनिधित्व रखनेवाली संस्था जैसा नाम रखती है, उन दोनों की बुद्धिमत्ता उपरोक्त स्टेटमेंट से बिलकुल स्पष्ट दिखाई दे जाती है तथा श्वेताम्बर कान्फरेन्स ने दिगम्बर तीर्थक्षेत्र कमेटी को ५ दिन तक भुलावे में रखकर ता. १४ को नकार वाचक एवं शाही मिजाजवाला उत्तर दिया, उससे और भी स्पष्ट रीतिसे दृष्टिगोचर हो जाती है। यहाँ यह ध्यान में रखना और भी आवश्यक है कि ता. ८ को मोतीचन्द उदयपुर से श्वेतांबर कॉन्फरेन्स

तथा एसोसियेशन को तार भेजता है। उसी तार को ता. ८ के 'बंबई समाचार' में प्रगट किया जाता है। और श्वेतांबर कॉन्फरेन्स आफिस एवं श्वेतांबर एसोसियेशन दोनों ही संस्था एँ मिलकर आन्दोलन करना शुरू करती हैं, यह बात ता. १० वीं के 'बंबई समाचार' से स्पष्ट विदित हो जाती है, मोतीचन्द के पत्र में बहुत ही व्यापक आन्दोलन करने का आग्रह किया गया था और ध्वजादण्ड क्रिया करनेवाले पूनमचन्द के तार में भी श्वेताम्बर कॉन्फरेन्स तथा एसोसियेशन इन दोनों नामों का उल्लेख है।

इसके अतिरिक्त श्वेतांबर कान्फरेन्स तथा ऑफिस पूनमचन्द की बंबई की दुकान पर जाने के बाद खबर प्रगट करने का इकरार करता है, इन सब बातों का केवल एक यहीं अंर्थ हो सकता है कि श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने ही मोतीचन्द और पूनमचन्द आदि को तारीख ४ के दिन तार मिलते ही उदयपुर भेज दिया था और वहाँ जाँच अथवा अन्य जो कुछ भी कार्य करना था, उसको पीछे से समस्त भारत की श्वेतांबर जैन समाज का कार्य बताकर तमाम समाज का बल उनके नये फतवेकी तरफ आकृष्ट करना था। ऐसा करने से इनको क्या लाभ हो सकता था – ऐसा यहाँ प्रश्न किया जा सकता है, परन्तु दिगम्बर साक्षी के ३६ वें प्रश्न के उत्तर से इसका समाधान हो जाता है। यह बात सर्व विदित ही है कि तमाम दिगम्बर तीर्थक्षेत्रों के ऊपर देखरेख रखनेवाली उत्तरदायित्व पूर्ण संस्था 'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई' है और श्वेताम्बर तीर्थों की देखरेख रखनेवाली संस्था "श्री आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी, अहमदाबाद है"। श्री श्वेतांबर कॉन्फरेन्स के हाथ में ऐसी कोई सत्ता नहीं है। यद्यपि यह आफिस उक्त श्वेतांबर तीर्थरक्षक कमेटी के के हाथ में से ये सत्ताएँ छीन लेने का निष्फल प्रयास अनेक बार कर चुका है, फिर भी आजतक उसे कैसी भी सत्ता नहीं मिल सकी।।

पालीताणा तीर्थ के झगड़े के संबंध में कॉन्फरेन्स की तरफ से बार-बार पत्र एवं तार भेजने पर भी तीर्थ संबंधी एक भी खबर न मिलने की शिकायत उक्त श्वेतांबर कॉन्फरेन्स आनन्दजी कल्याणजी के विरुद्ध पत्रों में प्रकाशित कर चुकी है। इन परिस्थितियों में कॉन्फरेन्स, मोतीचन्द, पूनमचन्द, रणछोड़दास झवेरी, आदि का केशरियाजी के मामले में सक्रिय भाग लेना अत्यधिक अर्थसूचक है। तारीख ९ के भेजे हुए दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के पत्र का उत्तर १४ तक न देना और पीछे से 'नकार' में जवाब देने का आशय मात्र इतना ही था कि कोई भी दिगम्बर और उक्त श्वेतांबर व्यक्तियों को छोड़कर दूसरे श्वेतांबर भी उदयपुर में सब कुछ ठीकठाक **White wash** करने तक इस जाँच को न करने पावें।

मोतीचन्द, पूनमचन्द, रणछोड़दास अथवा कॉन्फरेन्स –इनमें से यदि एक में भी सज्जनता का लेश भी होता तो तारीख ४ को उदयपुर का तार मिलते ही ज्योंही वहाँ जाने का

विचार हुआ था, त्योंही वे लोग टेलीफोन द्वारा दिगम्बर तीर्थक्षेत्र कमेटी से सलाह करते और दोनों ही साथ-साथ उदयपुर जाकर संयुक्त जाँच करके दोनों ही मिलकर महाराणा से मिलकर बीती बात पर पर्दा डालने का उपाय कर सकते, उसके बदले अकेले-अकेले ही चुपचाप वे उदयपुर जाते हैं और कोई भी वहाँ नहीं गया – ऐसा दिगम्बरों एवं सामान्य प्रजा से मनवाना चाहते हैं। इसके बाद जब दिगम्बर उनको साथ-साथ आने के लिये आमंत्रण देते हैं, तब भी उनके आदमी कब से वहाँ जा पहुँचे हैं, इतनी – सी छोटी बात न बताने के उपरांत ५ दिन तक उत्तर की प्रतीक्षा में दिगम्बरों को वहाँ जाने से रोके रखते हैं और बाद में कपटपूर्ण 'नकार' का उत्तर देते हैं। इन सब बातों से कम से कम यह एक तत्त्व निकल ही आता है कि श्वेतांबरों का **Guilty Consciences** था। एक तरफ तो उदयपुर पहुँचे हुए एकमात्र अजमेर से आनेवाले दिगम्बर डॉक्टर को जाँच करने से रोका जाता है, और वह भी **राज्यसत्ता** के बल से और दूसरी तरफ से बम्बई से जानेवाले दिगम्बर डेपुटेशन को भी रोका गया वह श्वेतांबर कॉन्फरेन्स की **चालबाजी से**। इस बात से श्वेतांबरों एवं स्टेट का सहयोगित्व एवं सामान्य आशय भलीप्रकार सिद्ध हो जाता है। दिगम्बरों पर मन्दिर में स्टेट फौजियों द्वारा आक्रमण करवाना – यह भी उनके सहयोगित्व का ही प्रमाण है।

इस 'विराट दरबार' को हाल ही में दो खबरें उसके जासूसों द्वारा प्राप्त हुई हैं, जिनमें से एक मरे हुए एवं घायलों की डाक्टरी जाँच के सम्बन्ध में है और दूसरी खबर उदयपुर राज्य में कुछ दिन पहले वैष्णवों द्वारा श्वेताम्बरों पर की गई गम्भीर शिकायत है कि जिसका प्रसंग भी लगभग इसी मामले जैसा है।

(१) दो डॉक्टरों के हस्ताक्षर (**Signatures** सहित) **Post Mortem Report** (मरण समय की रिपोर्ट) तो तारीख ५ को ही लिखकर तैयार हो गई थी, परन्तु बहुत दिनों तक स्टेट काउन्सिल में नहीं भेजी गई थी और ब्रिटिश सरकार की तरफ से 'सर नाइट' की पदवी धारण करनेवाले गृहस्थ के नेतृत्व में गये हुए दिगम्बर डेपुटेशन को भी इसकी नकल मई के अन्त तक तो मिली न थी। इस कागज में इस 'दरबार' का **Vision** जासूसी कार्य कर सका है जिसमें कुछ मरनेवाले एवं घायलों को पसलियों के टूट जाने का उल्लेख है; मुँह, कान, एवं नाक में से बहुत अधिक खून निकलने का उल्लेख है, विविध अंगों पर पड़ी हुई मार एवं चोटों की गहराई तथा लम्बाई का माप दिया हुआ है और मृत्यु तथा चोटों का कारण **Blunt Weapon** लकड़ी आदि बताया गया है। तालू फूट जाने का उल्लेख है। चेहरा का त्रासदायक वर्णन दिया गया है।

सब मिलाकर कुल ७ आदमियों की मौतें हुई हैं और डॉक्टरी जाँच में दी गई घायलों की संख्या से अवश्य ज्यादा है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि एक भी श्वेतांबर अथवा

फौजी का बाल भी बांका नहीं हुआ।

(२) श्वेताम्बरों का धर्मोन्माद जैसे आज दिगम्बरों पर टूट पड़ा है, उसी तरह कुछ दिन पहले इसी राज्यान्तर्गत कांकरोली ग्राम में वैष्णवों पर भी टूट पड़ा था। उदयपुर महाराणा वैष्णव धर्मानुयायी हैं और उनने पुष्टिमार्ग के बड़े धर्मगुरु को कॉकरोली की बहुत बड़ी जागीर भेंट में दी है और उसका न्याय करने की सत्ता भी उन्हीं धर्मगुरु महाराज को दी है, इसलिये यह स्थान वैष्णवों का एक धाम बन गया है और जागीर की हद में कुल सत्ता इन्हीं धर्मगुरु महाराज की है। इसी कॉकरोली गांव में उदयपुर के श्वेतांबरों ने अपना एक मन्दिर बनाना शुरू किया और मन्दिर पर वैष्णव मन्दिर जैसा ही गुम्बज बाँधने की होड़ की। वैष्णव धर्मगुरु ने भविष्य के कटुक परिणाम अभी से सोचकर उनकी हद में उनके ही बराबर होने का दृश्य खड़े करने के इच्छुक श्वेतांबरों को गुम्बज आदि को बनाने में रोका और उनकी देखरेख रखने के लिये अपने चौकीदार तैनात कर दिये। आधी रात के समय श्वेतांबर मन्दिर के आधे बने गुम्बज में से उन चौकीदारों पर खौलता हुआ गरम तेल डाला गया, जिससे वे लोग बुरी तरह से जल भुन गये। इसतरह से श्वेतांबर लोग मनुष्यजीवन एवं कानून की कितनी कदर करते हैं, उसका एक भयंकर उदाहरण उपस्थित कर दिया। इसके बाद उन लोगों ने महाराणा को फरियाद की , महाराणा ने उस श्वेतांबर मन्दिर को तुड़वा डाला।

१०. श्वेताम्बर "जाँच" का स्वरूप

यह तो निर्विवाद सत्य है कि तारीख मई को होनेवाली घटना की सच्ची या ढोंगी किसी भी प्रकार की जाँच , जो बिल्कुल 'सत्य हकीकत' (**Absolutely Certain**) के बतौर प्रगट की गई है, वह है बम्बई निवासी श्री मोतीचंद सोलीसिटर की।

यह भी निर्विवाद सत्य है कि तारीख १० तक अजमेर के डाक्टर गुलाबचंदजी को दीवान ने धुलेव जाँच करने के लिये जाते हुए रोक दिया था और बम्बई में श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने तारीख १४ तक दिगम्बर तीर्थक्षेत्र कमेटी की तरफ जाँच के लिये हुए डेपुटेशन को रोका था। यह भी निर्विवाद है कि श्वेतांबर कॉन्फरेन्स ने संयुक्त जाँच के निवेदन को अस्वीकार किया था और यह बात छिपा ली थी कि श्वेताम्बर वहाँ पहले ही से पहुँच गये थे।

अब इस प्रकार से 'जाँच' का ठेका ले बैठनेवाले श्वेतांबर किस तरह की जाँच करते हैं – इसकी भी परीक्षा कीजियेः-

(१) क्या वे लोग उदयपुर एवं धुलेव – इन दोनों स्थानों के दिगम्बरों तथा श्वेतांबरों से, जो तारीख ४ मई को मन्दिर में उपस्थित थे- उनके मुख्य-मुख्य आदमियों से मिले थे?

(२) क्या वे मृत लोगों के कुटुंबियों से मिले थे ?

(३) क्या वे घायलों से मिले थे ?

(४) क्या वे दोनों डाक्टरों से मिले थे ?

(५) पुलिस (जो वस्तुतः फौज थी) के २-४ सिपाहियों से भी क्या वे मिले थे ?

(६) क्या उन्होंने महाराणा साहब से मिलकर आठ महिने पहले मुकुट-कुण्डल उतार देने के हुक्म की सच्चाई और तारीख ४ मई से पहले (तीन दिन पहले) दिगम्बरों ने मिलकर जो प्रार्थना की थी, उसका महाराणा द्वारा दिये गये जवाब को जानने की दरकार की थी ?

(७) क्या उन्होंने महाराणा ने जो हुक्म हाकिम को दिया था – वह, और हाकिम ने जो प्रत्युत्तर दिया था, इन दोनों को जानने के लिये क्या हाकिम से प्रार्थना की थी ?

(८) मैजिस्ट्रेट डालचंद गत तीन पीढ़ी से रोशनला का सेठके साथ मुनीम और सेठ का सा सम्बध है और रोशनलाल, देवीला ल तथा लक्ष्मनसिंह –इन तीनों का ही आपस में ससर जमाई का सम्बन्ध है– यह बा त सत य है या असत्य, इस बा त की जाँच वे जब वे '**Highly responsible men on the spot** से मिलने गये थे, तब उनने जाँच की थी क्या ?

(९) महाराणा एवं कुमार इन दोनों ही के प्राइवेट सेक्रेटरी श्वेतांबर जैन हैं – इस बात की सत्यता या असत्यता की जाँच क्या उनने की थी ?

(१०) तारीख ९ तक मि. मोतीचन्द धुलेव में हैं और इसके बाद वे उदयपुर जानेवाले हैं तो क्या तारीख ९ को तार मार्फत शिकायत करते हुए दिगम्बर डाक्टर गुलाबचंद को धुलेव जाते हुए रोकने के समाचार की क्या मोतीचंदभाई को खबर नहीं मिली थी ? यदि मिली थी तो क्या उनने इसकी जाँच की थी ?

प्रामाणिक जाँच करने का ही जो मोतीचंदभाई का एक मात्र उद्देश्य था और स्वयं जाँच करने के लिये यहाँ आना चाहिये था –ऐसा लेख तारीख ८ को यदि सच्चे दिल से ही किया गया था तो जिन स्वयं अधिकारियों ने उनको तथा अन्य श्वेतांबरों को धुलेव और उदयपुर के बीच में आते – जाते हुए रोका न था, उन अधिकारियों ने कहकर इस दिगम्बर डाक्टर को क्यों न अपने साथ धुलेव ले गये ? संयुक्त जाँच का यह अपूर्व अवसर था। यदि ऐसा किया जाता तो दिगंबरों को अपनी हार्दिक शुभेच्छा दिखाने का यह सर्वोत्तम अवसर था , फिर भी उस अमूल्य अवसर को यों ही गँवा देने का क्या कारण था ? खास घटनास्थल पर जाकर जाँच करने पर भी मंदिर के पंड्या का ही एक लड़का मर गया है – इस बात की खबर उनको क्या वहाँ नहीं मिल सकी थी ?

(११) स्टेट के जाँच कमीशन की रिपोर्ट तथा डाक्टरी पोस्ट मार्टम (मृत्यु सम्बन्धी) रिपोर्ट इन दोनों की हकीकत मोतीचन्द तारीख ८ मई के पत्र में जाहिर करते हैं। ये रिपोर्ट उन्हें वहाँ देखने को कैसे मिल गई ? और खुद स्टेट एवं पोलिटिकल एजेन्ट को वे क्यों नहीं मिलीं ?

उपद्रव के स्थान पर एवं मुर्दों के शरीर पर लोहू की एक भी बूँन्द नहीं दिखाई दी -- यह खबर मोतीचन्दभाई किसप्रकार की जाँच के परिणाम में लिख रहे हैं ? क्या लाशें तारीख ८ तक रोकी रखीं गई थीं ? क्या तारीख ४ को हत्याकांड हो जाने के बाद एक दिवस के लिये मंदिर बन्द रखने की बात श्वेतांबर साक्षी रणछोड़भाई के मुख से नहीं निकली है ? और डाक्टरों ने लाशों की नाक, कान, मुँह से ज्यादा खून निकलने की बात नहीं कही ? इस लोहू को डाक्टरों ने देखे बिना ही क्या वैसी गप्प हाँक दी थी ? और जब लोहू वहाँ ही था तो क्या वह जमीन पर न पड़कर अधर आकाश में ही उड़ गया था ?

डाक्टरी एवं मजिस्ट्रेट की जाँचों को पूर्णरूप से जानने का दावा करनेवाले मोतीचन्द को क्या इन्ही अमलदारों ने कहा था कि इन ४ मरनेवालों के सिवाय और किसी को कैसी भी चोट नहीं पहुँची है ?

अक्षम्य गुनहगार : सारांश यह है कि सामान्य बुद्धि और शुभ इच्छा वाला एक साधारण आदमी जैसी 'जाँच' करता, वैसी जाँच भी इस वकील ने नहीं की ; इतना ही नहीं, परन्तु जो कुछ जाना है,उसका बहुत कुछ अंश छिपाया है। बहुत से भाग को मन-मुआफिक बदल कर प्रगट किया है और इस तरह करते हुए इसने कई जगह अपने स्वभाव का परिचय दिया है।

On the whole, साक्षी ने अक्षम्य सीमा तक दूषित पार्ट किया है और ऊपर से मरनेवालों के ऊपर **Cowards** (नामर्द) कहकर प्रहार किया है, यही नहीं बल्कि मृतजनों के कुटुम्बियों के लिये न्याय-प्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाले एक नियमित मंडल - श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी पर अपना उचित कर्तव्य करने के और साक्षात् मृत्युओंको साधारण 'अकस्मात' न लिखने के कारण दो समानों में परस्पर विरोध बढ़ाने का आरोप लगाया है। इस लेखक की ऐसी मनोदशा मंदिर में साक्षात् खून करनेवालों की मनोदशा से कहीं अधिक भयंकर एवं गंभीर मालूम होती है, क्योंकि जनता के आचरणों पर धर्म **(Religion)** और कानून **(Law)** इन दो सत्ताओं का ही अंकुश है और उन दोनों के प्रतिनिधि स्वरूप यह व्यक्ति प्रसिद्ध है। प्रथम सत्ता अर्थात् कानून के प्रतिनिधि तरीके इनके विश्वास के भंग का प्रमाण हाईकोर्ट में मौजूद है और धर्म की सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में इनने जो भयंकर विश्वासघात किया है, उसका दृष्टांत इसी हत्याकांड के सम्बन्ध में उनकी भेजी हुई रिपोर्टों एवं आचरण से बखूबी मिल जाता है। **'कानून' एवं 'धर्म' के शासन में भी बीमारी लग चुकने की यह घोषणा है।**

मंदिर पर स्वामित्व (हक्क) के दावे की जाँच

यह बात पहिले ही लिखी जा चुकी है कि इस 'दरबार' की जाँच का उद्देश्य मात्र 'विराट देह' समष्टि अथवा जनतारूपी एक शरीर के विविध अंगों की सुरक्षा और उनके द्वारा तमाम शरीर का सदैव चालू रहनेवाला विकास ही है, विविध अंगों के 'हक्क' निश्चय करने का नहीं है। इस 'विराट दरबार' ने तो किसी को कैसा भी 'हक्क' नाम की चीज दी ही नहीं है, मात्र उनके कर्तव्य **(Laws of Conduct)** नियत किये हैं।

परन्तु मनुष्य प्राणियों की मृत्यु-प्रसंग के साथ-साथ 'हक्क' के एक और प्रश्न को मुख्यता देने का आरोपी पक्ष के वकील ने प्रयास किया है, इसलिये इस कल्पना किये हुए 'हक्क' की भी यहाँ जाँच की जाय तो अप्रासंगिक न होगा।

श्वेतांबर साक्षी मोतीचन्द के स्टेटमेंट में तीन प्रकार के 'हक्कों' की तरफ इशारा किया गया है (१) मंदिर पर ध्वजादंड चढाने का 'हक्क'(२) मंदिर की नग्न बनावट की मूर्तियों पर श्वेतांबर विधि के अनुसार मुकुट-कुण्डल चढाने एवं श्रृंगार करने का 'हक्क' और (३)

मंदिर पर मालिकी का 'हक्क'। उक्त साक्षी ध्वजादंड चढाने के हक्क को मालिकी के हक्क का 'प्रमाण'--संपूर्ण प्रमाण मनाना चाहता है और यही कारण है कि मनुष्यों की हत्या की जाँच के लिये जाने पर भी अपनी जाँच का परिणाम 'आज से ९५ वर्ष पहिले एक श्वेतांबर ने इस मंदिर पर ध्वजादण्ड चढाया था' - इस वाक्य से शुरु करता है। ऐसा लिखते हुए भी वह उक्त घटना की किस प्रसंग पर, किसकी तरफ से, किसकी आज्ञा से, किसके हाथ से इत्यादि खास-खास असली बातों को जान-बूझ कर छोड़ देता है। जिसतरह वह ९५ वर्षों के बाद के इतिहास को काट-कूट कर प्रगट करता है, उसी तरह उस दिन से अगले ९० वर्षों के इतिहास को तो बिलकुल दबे रहने देता है।

केवल आज से ५ वर्ष पहिले इस मंदिर पर ध्वजादंड चढ़ाने की जरूरत पडने का उल्लेख करता है और उससमय दोनों पक्षों में तकरार होने से महाराणा के पास फरियाद जाने का इकरार करता है। यह तकरार मंदिर के इतिहास में सबसे **पहली** ही तकरार थी और सो भी ध्वजादंड चढाने के सम्बन्ध में थी न **कि मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढाने या मंदिर पर श्वेताम्बर स्वामित्व के विषय में।**

'इस तकरार की उदयपुर महाराणा ने जाँच की थी'--मात्र इतने शब्द ही लिखकर साक्षी चुप हो जाता है -- ऐसा लिखने का उसका भीतरी आशय यही है कि वह यह बात बलात् स्वीकार कराना चाहता है कि महाराणा ने जाँच की थी; जिसका पीछे से उनने फैसला भी दिंया था, जिसमें श्वेतांबरों की जीत हुई थी।

इसके आगे यही साक्षी एक ही स्टेटमेंट में तीन जगहों पर भिन्न-भिन्न बातें लिखता है कि :-

(१) श्री केशरिया तीर्थ पर उदयपुर का श्वेतांबर **संघ देखरेख** रखता है।

(२) श्री केशरियाजी तीर्थ का **प्रबन्ध** उदयपुर **स्टेट के** हाथ में है।

(३) यह तीर्थ श्वेतांबरों का है, इसमें किसी भी प्रकार की शंका नहीं है।

और अन्त में लिखता है कि तारीख ४ मई को मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल **स्टेट की आज्ञा से** चढाए जा रहे थे।

यह है श्वेताम्बर समाज के लीडर और सत्य जाँच करने का दावा करने वाले कानूनी सॉलीसिटर का सारा कथन। यह कथन ही स्वयं अपने ही शब्दों से श्वेतांबर पक्ष के दावे की असत्यता सिद्ध करने के साथ ही साथ यह भी बताता है कि ऐसा कहनेवाले को यह पूर्ण निश्चय था कि जो कुछ भी मैं दावा कर रहा हूँ, वह सर्वथा असत्य है, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो एक ही तारीख को एक ही मोतीचंद अंग्रेजी एवं गुजराती पेपरों में जो स्टेटमेंट भेजता है, उनमें से गुजराती स्टेटमेंट में तीर्थ पर श्वेतांबरों की मालिकी होने की, तीर्थ पर

उदयपुर के श्वेतांबर संघ की निगरानी रखने की और श्वेतांबर संघ की मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढाने की स्टेट की तरफ से आज्ञा मिलने की -- इन तीनों बातों पर खूब ही जोर देता है; परन्तु अंग्रेजी स्टेटमेंट में इन तीनों ही बातों को सर्वथा उड़ा देता है -- ऐसा नहीं होता, जिस पर गुजराती स्टेटमेंट की बातें भी परस्पर में विरोधी हैं। कभी तो वह कहता है कि तीर्थ पर उदयपुर का श्वेतांबर संघ देखरेख रखता है, तो कभी कहता है कि तीर्थ का प्रबंध उदयपुर स्टेट के हाथ में है !

देखरेख एवं प्रबन्ध इन दोनों में से यदि एक भी श्वेतांबरों के हाथ में होता और उसके साथ-साथ मन्दिर की मालिकी भी, (जैसा कि श्वेतांबर वकील साक्षी कहता है) श्वेतांबरों की होती तो फिर मुकुट-कुण्डल चढाने और ध्वजादंड क्रिया करने के लिए स्टेट की आज्ञा लेने की क्यों जरूरत पड़ी ? और आज्ञा भी यदि श्वेतांबरों को ही मिली थी तो फिर अपनी मालिकी के, अपनी देखरेख के मन्दिर में अपने धर्म की क्रिया करने में राजा की आज्ञा होनेपर भी १५० सिपाहियों को पहले से ही मंदिर में भर रखने की आवश्यकता क्यों पड़ी? (आजतक तो ऐसी आवश्यकता पहले कभी पड़ी न थी), फिर इतना भारी फौजी पहरा होने पर भी इस मंदिर के मूलनायक श्री ऋषभदेव भगवान के 'वार्षिक तप' के पारणा होने के पुण्यतम दिवस (अर्थात् वैशाखसुदी ३ अक्षयतृतीया) को कि जिस दिन समस्त भारत के तमाम मूर्तिपूजक जैन 'वर्षी तप' की समाप्ति यहाँ आकर अथवा शत्रुजय के ऋषभदेव मंदिर में (जो कि पालीताना सरकार को हराने के लिये आजकल बन्द है और इसीलिये वहाँ जानेवाले इस प्रसंग पर स्वभावतः यहीं आनेवाले थे) जाकर की जाती है -- ऐसे परम-पवित्र दिन और सो भी लगभग १०० वर्ष पीछे होनेवाले एक अति महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सव पर, १००० घरवाले उदयपुर से मात्र ७५ ही श्वेतांबर केशरिया जायें, इसका क्या कारण ? इसके दो ही कारण मालूम पडते हैं कि या तो कम से कम १००० श्वेतांबरों की संख्या को झूठमूठ ही ७५ बतलाया जा रहा है अथवा मारामारी की अशक्यता बताने के लिये अथवा लश्कर उनकी तरफ से नियुक्त होने के कारण बहुसंख्यक श्वेताम्बरों की कोई जरूरत नहीं थी, यही नहीं बल्कि सिपाहियों द्वारा आक्रमण की बात निश्चित होने के कारण श्वेताम्बरों की संख्या थोड़ी ही होनी चाहिये -- ऐसी जान-बूझकर व्यवस्था की गई थी। इसके सिवाय और क्या कारण हो सकता है ?

मोतीचंद की अनिच्छा से ही मुँह से निकल जानेवाले ये शब्द बड़े ही मार्के के हैं कि **But in the meantime Digambers got scent of the matter** इस कथन से सिद्ध होता है कि जो कुछ भी क्रिया की जानेवाली थी, वह सब दिगम्बरों से लुका-छिपाकर चोरी-चुपके ही से करनी थी और इसीलिये पहले से मगरा का लश्कर

चुपचाप तैनात करने की योजना करनी पड़ी थी। जिसतरह बने उसतरह इस क्रिया को चुपचाप करने और इसकी दिगम्बरों को खबर न पड़े, इस बात का खास ध्यान रखा गया था।

इन सभी बातों से भी **यही सिद्ध होता है कि इस मन्दिर के मालिक श्वेतांबर कभी भी न थे और जिस प्रबन्ध या देखरेख करने का वे दावा करते हैं, वह सर्वथा झूठा एवं कल्पित है** -- ऐसा उनको मालूम था; इसके अतिरिक्त अक्षयतृतीया के दिन होनेवाली किसी भी क्रिया के लिये न तो श्वेतांबरों का हक्क ही था और न स्टेट की आज्ञा ही थी। इस निर्णय की सत्यता में श्वेतांबर वकील के इस कथन से और भी पुष्टि मिलती है कि 'दिगम्बरों को इस बात की गंध (Scent) मिल गई और वे लोग उदयपुर से मुकुट-कुण्डल चढाने की क्रिया के मध्य में ही आ पहुँचे और उनके मुखिया स्वर्गीय पं. गिरधारीलालजी न्यायतीर्थ ने श्वेतांबरों को महाराणा की तीन दिन पहले के तथा आठ महिने पहले दिगम्बर मूर्तियों को चोरी से चढाये हुए मुकुट-कुण्डलों को महाराणा ने उतरवा दिया था -- इन दोनों आज्ञाओं की याद दिलाकर अभी हाल ही में चढाये हुए मुकुट-कुण्डलों को उतार लेने एवं दूसरी मूर्तियों पर आभूषण न चढाने का निवेदन किया और उक्त दोंनों हुक्मों को छोड़कर बाद में यदि श्वेतांबरों को कोई नया हुक्म मिला हो तो उसे दिखाने के लिए कहा था तब, एवं अब भी जबकि वे लोग सामयिक समाचारपत्रों में इतनी लम्बी-चौडी सफाई छाँट रहे हैं, उसके बदले उसी नये हुक्म की नकल, तारीख, हस्ताक्षर आदि क्यों नहीं प्रगट करते ?

इस 'दरबार' को यह भी संभवतः मालूम होता है कि तारीख ४ मई एवं उससे एक महिने बाद तक भी नये हुक्म की नकल बताने में असमर्थ सिद्ध हुए श्वेतांबर अब पीछे से और खासकर इस 'जजमेंट' की दलीलों को जानने के बाद यह भी कहने लग जायें कि महाराज कुमारने (या महाराणा या उनके दीवान ने) मौखिक आज्ञा दी थी। कदाचित् ऊपरी सत्ता के दबाव से इस सम्बन्ध में कुछ ज्यादा छानबीन की गई और महाराणा, महाराज कुमार या दीवान को अपना स्टेटमेंट देना पड़ा तो राज्य की सही-सलामती के लिये उनमें से किसी एक व्यक्ति को अनन्यगति होने से शायद यह भी कहना पड़ेगा कि राज्य-प्रबन्ध के अन्तर्गत इस मंदिर की ध्वजा टूटने योग्य होने की खबर मंदिर के प्रबंधकर्ता ने उन्हें दी थी और यदि ध्वजा उसी अवस्था में रहती तो राज्य के लिये अमांगलिक चिह्न माना जाता, इसीलिये उस प्रबंधकर्ताको अमुक शर्तों के साथ ध्वजा ठीक कर लेने के लिये मौखिक आज्ञा दी गई थी। यदि ऐसा कहा भी जाय तो भी उसका अर्थ क्या ? भले ही इससे महाराणा या महाराजकुमार के सिर पर से इस कार्य की जिम्मेदारी टल गई, परन्तु उससे कहीं फौज का

अधिकारी एवं श्वेतांबर जनता कहीं निर्दोष थोड़े ही सिद्ध हो जाते हैं।

बंबई हाईकोर्ट का ऑफीशियल एसाइनी (रिसीवर) (Official Receiver) एक पारसी सज्जन हैं। उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि एक श्वेतांबर मंदिर के ट्रस्टियों में खटपट हो गई और कोर्ट ने अंतिम फैसला होने तक के लिये मंदिर पर उसी पारसी गृहस्थ को रिसीवर नियत कर दिया । इसी अर्से में मंदिर की ध्वजा टूट पड़ी और उसके बदले एक नई ध्वजा चढ़ाने की अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ी। इस समय दोनों पक्षों की सम्मति से अथवा अकेले कोर्ट की ही आज्ञा से पारसी रिसीवर ध्वजादण्ड चढ़ा देवे तो क्या इतने कार्य मात्र से वह मंदिर पारसियों का हो गया ? अथवा क्या सदैव ध्वजा चढ़ाने का अधिकार पारसियों का हो जायगा ? अथवा क्या इससे पारसियों को उस क्रिया को भविष्य में भी याद दिलाये रखने के लिये 'शिलालेख' या 'पाटली' ठोंक बिठाने का अधिकार हो गया ?

इस प्रसंग में संवत् १८८९ (केवल ९५ वर्ष पहले की घटना,जिसके ऊपर श्वेतांबर सॉलीसिटर बडी उछलकूद मचाता है) की पाटली (कि जिसमें बाफणा गोत्री एक श्वेतांबर का नाम लिखा है) की जाँच करना युक्त जान पड़ेगा। यह 'पाटली' जो कि श्वेतांबरों के लिये केवल एक ही आधार है, वह खुद क्या कहती है ? इस 'पाटली' पर लिखे हुए शब्द एवं 'राजपूताने के इतिहास' के रचयिता अजैन इतिहासज्ञ रायबहादुर ओझाजी खुद कहते हैं कि सं. १८८९ में उदयपुर राज्य के मुख्य अमात्य ने ध्वजा चढ़ाई थी और नक्कारखाना बनवाया था। मुख्य अमात्य यदि वैष्णव, मुसलमान, पारसी अथवा अंग्रेज होता तो राज्य की तरफ से वही सब काम करता , परन्तु ऐसा करने में वैष्णव , मुसलमान , पारसी अथवा ईसाईपने से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता और न उससे कहीं उसे शिलालेख ठोंक बिठाने का ही अधिकार मिल जाता है। परन्तु यह बाफणा तो मुख्य अमात्य था और फिर राज्य को कर्जा देकर उसको गिरवी रखनेवाला राज्य का लेनदार भी था।

जहाँ पर एक समय एक भी श्वेतांबर कुटुम्ब न था,बल्कि ८-१० हजार दिगम्बर घर थे-- ऐसे स्थान में श्वेतांबर मंदिर कहाँ से आया ? इससे स्पष्ट दिखाई देता है कि जैसलमेरसे आये हुए प्रधान अमात्य पीछे से तमाम राज्य का सर्वेसर्वा बन बैठा था। उसने दिगम्बरों को दबा दिया और किसी न किसी बहाने से दिगम्बरों को सबसे पहले तो स्टेट की देखरेख में रख दिया और पीछे से मंदिर की ध्वजा को--जोकि संवत् १८६३ में (कुल २६ वर्ष पहले) चढ़ाई जाने के कारण बिलकुल साबुत एवं मजबूत थी, उसको टूटी हुई बताकर और देवस्थान की ध्वजा टूटना राज्य के लिये महान् अपशकुन है -- ऐसे वहम में अंधश्रद्धालु तत्कालीन महाराणा को फँसाकर मंदिर पर नई ध्वजा चढ़ाने की आज्ञा प्राप्त कर

ली थी और उस आज्ञा का अमल भी राज्य का मुख्य अधिकारी होने से उसने स्वयं ही किया था। ध्वजा चढ़ाने का प्रसंग आया न था, परन्तु जालसाजी एवं दगा देकर पैदा किया गया था -- ऐसा मानने का एक प्रबल कारण यह है कि ध्वजादंड चढाने के प्रसंग पुराने इतिहास से लगभग शताब्दि के आसपास ही आते रहे हैं, पहले नहीं। संवत् १८८९ के पहले संवत् १८६३ में ध्वजादंड चढ़ा था, इसके पहले संवत् १७४६ में ध्वजादण्ड चढ़ा था अर्थात् ११७ वर्षों के बाद वह ध्वजादण्ड चढा था। संवत् १७४६ और १८६३ के इन दोनों ही ध्वजादंडों को दिगम्बरों ने चढाया था ,जिनके शिलालेख मंदिर में मौजूद हैं। संवत् १८८९ के बाद ध्वजादण्ड चढानेका पहला ही प्रसंग आया है, ऐसा दोनों पक्ष स्वीकार करते हैं सो वह भी लगभग एक शताब्दि बाद ही आया है, फिर राज्य को गिरवी रखनेवाले प्रधान अमात्य बाफणा के समय में कुल २६ वर्ष बाद ध्वजादंड चढ़ाने का प्रसंग कैसे आ गया होगा ?

जैसा कि आगे लिखा गया है और अजैन इतिहास, शिलालेख और मूर्तियों की बनावट (**Construction**) आदि सब कुछ अकेले दिगम्बरों ने ही इस मंदिर को बनाया -- ऐसा सिद्ध करते हैं। कम से कम ५५० वर्ष पहले (संवत् १४३१ में) शुरू कर पीछे संवत् १५७२,१७५४ आदि संवतों में दिगम्बरों ने मंदिर के विविध भागों को बनवाया था और अंत में मंदिर का परकोटा भी दिगम्बरों ही ने बनवाया था, जिन सबका उल्लेख शिलालेखों एवं ओझाजी के इतिहास में देखा जा सकता है ।मंदिरवाला ग्राम धुलेव में तथा ४० कोस के आसपास के सैकडों ग्रामों में उससमय एक भी श्वेतांबर कुटुम्ब का अस्तित्व न था और आज भी नहीं है और दिगम्बरों की हजारों की संख्या थी और अब भी है। इससे बिना विलम्ब के ही यह समझ में आ जाता है कि दिगम्बर जनता ने अपनी धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये यह मंदिर बनवाया था और उससमय मंदिर में केवल नग्न मूर्तियाँ ही उनने स्थापित की थीं, अन्य मूर्तियों का वहाँ प्रवेश कैसे हो सकता है ? वैष्णवों की मूर्तियाँ और श्वेतांबरों का हक्क इत्यादि सभी हास्यास्पद बातें हैं। स्वयं ओझाजी लिखते हैं कि शिव एवं ब्रह्माजी की मूर्तियाँ पीछे से घुसा दी गई हैं तो ये फिर अजैन मूर्तियाँ इस मंदिर में किसप्रकार घुस गईं, यह समझ लेना कोई कठिन नहीं है। संवत् १९८४ (सन् १९२७ चालू वर्ष) की ध्वजादंड एव नग्न मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़ानेकी श्वेतांबरों की चालाकी को देखते हुए और संवत् १८८९ में श्वेतांबर मुख्य अमात्य ने एक शताब्दि के बदले केवल २६ वर्षों में ही ध्वजादण्ड चढा डाला -- यह देखते हुए शैव, वैष्णव, मुसलमान एवं श्वेतांबर कैसे घुस गये -- यह बात बडी आसानी से समझ में आ जाती है।

श्वेतांबर मुख्य अमात्य के शासनकाल में ही यह गड़बड़ हो गई थी। एक तरफ उसने उदयपुर स्टेट में बाहर से श्वेतांबरों को बुला-बुलाकर राज्य की मुख्य-मुख्य नौकरियां

उनसे भर दीं और दूसरी तरफ से धुलेव के दिगम्बर मंदिर में अपना प्रवेश करना शुरू कर दिया। उससमय भी दिगम्बर लोगों की स्थिति निर्बल थी। दूसरा कारण यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि दिगम्बर साधु को नियम से नग्न ही होना चाहिये तथा भिक्षा भी याचना द्वारा करने की मनाई होने से वे बस्ती में रहते ही नहीं हैं। आज समस्त भारत में इनके साधुओं की संख्या मुश्किल से ५ या १० होगी। अध्यात्म उपदेशी पंडित या ब्रह्मचारियों की भी बहुत थोड़ी संख्या है। इस कारण श्वेतांबर मूर्तिपूजक अथवा स्थानकवासी समाज में जहाँ टोले के टोले सैकड़ों साधु जगह-जगह विचर कर जागृति रख सकते हैं, उसी तरह से दिगम्बर समाज में जागृति रखनेवाला या समाज अथवा ऐसे तीर्थों की रक्षा करनेवाला कोई खास व्यवस्थित वर्ग या संस्था नहीं है और इस कारण सब जगह दिगम्बर समाज एवं मंदिरों की स्थिति अस्त-व्यस्त हो गई थी। आज से लगभग ५० वर्ष पहले सूरत निवासी सेठ मणिकचन्द पानाचन्द झवेरी ने शिक्षण, संगठन, शास्त्रोद्धार तथा तीर्थरक्षा आदि समस्त कामों में अपने द्रव्य, समय एवं शक्ति का प्रवाह प्रवाहित किया और 'संगठन' करके सब तरह से दीन-हीन समाज का पुनरुद्धार किया और उस समाज के मुख्य-मुख्य नेताओं के सहयोग से 'श्री दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी' को जन्म दिया और तभी से दिगम्बर मंदिरों एवं तीर्थस्थानों पर श्वेताम्बरों द्वारा किये गये अत्याचार प्रकाश में लाये गये और कानूनी उपायों द्वारा दिगम्बरों के धार्मिक हक्क एक-एक करके फिर से प्राप्त किये गये !

जिससमय उदयपुर स्टेट की दिगम्बर जनता निर्बल दशा में थी, उन्हीं दिनों में इस स्टेट पर भी आर्थिक कष्ट के घने बादल मंडरा रहे थे और वैसी विपन्नावस्था में तत्कालीन महाराणा जवानसिंहजी को अपनी तमाम स्टेट गिरवी रखकर काम चलाना पड़ा था। जहाँ लेनदार ही राज्य का मुख्य अमात्य बन जाता है, वहाँ और खासकर देशी स्टेट में क्या नहीं किया जा सकता ? सबसे पहले उसकी निगाह धुलेव के इस विशाल मंदिर पर पड़ी और जबर्दस्ती से ध्वजादंड चढाने का मनमाना प्रसंग खड़ा कर दिया। राज्य का मुख्य अमात्य होने से ध्वजादंड की क्रिया भी उसी ने की । कोई समझदार व्यक्ति अपने आपको यथेष्ट बलवान बनाये बिना किसी खास पक्ष की खास दुश्मनी यकायक अपने सिर पर ले लेना उचित नहीं समझता, इसीलिये इसने भी ध्वजादण्ड क्रिया अपने नेतृत्व में एक दिगम्बर भट्टारक के हाथ से कराई। दिगम्बरों के पास इस बात का लिखित प्रमाण मौजूद है।

ध्वजादंड क्रिया के साथ ही साथ महाराणा को यह भी समझाया गया कि हिंसक प्राणियों एवं लुटेरों के बीच एकान्त में बने हुए इस मंदिर में एक नक्कारखाने की खास जरूरत है कि जिससे किसी भयानक प्रसंग पर मदद के लिये आवाज की जा सके । (नक्कारखाने के बनने के समय से आज तक के ९५ वर्षों में, भय की सूचना देने के लिये

इसे बजाने की कभी कैसी भी जरूरत नहीं पडी; परन्तु अब हाल ही में दिगम्बरों पर उपद्रव करने का आरोप मढ़ने के लिये श्वेतांबरों ने नक्कारा बजाने का दोष दिगम्बरों पर रखा है, दुर्भाग्य से १५० फौजी, १००० उपद्रवियों में से किसी एक को भी उस समय पकड़ना भूल गये, इससे नक्कारा बजाने की उनकी गवाही स्वयं ही बिलकुल झूठी और कल्पित सिद्ध हो जाती है)। मंदिर के ५५० वर्षों के इतिहास में पहली ही बार यदि किसी वस्तु की जरूरत मालूम पड़ी है तो वह है संवत् १८८९ में और सो भी एक नक्कारखाने की। मंदिर की मरम्मत, धर्मशाला बनाने अथवा मूर्ति की सम्हाल आदि किसी भी काम की नहीं! फिर नक्कारखाना बनवाकर उसकी स्मृति स्वरूप शिलालेख ठोंककर उसने अपना नाम और गोत्र अमर कर दिया !

पीछे धीरे-धीरे मंदिर का जो प्रबंध राज्य को सौंपा गया था, वही राज्य की तरफ से नियत कमेटी को सौंप दिया गया और कमेटी में कुछ दिगम्बर एवं कुछ राज्य के अमलदार नियत किये गये। कुछ समय पीछे दिगम्बर सभ्यों को क्रमशः दूर कर दिया गया और उनकी जगहों पर श्वेतांबर सत्ताधीशों को नियत कर दिया गया। एक अमलदार को मंदिर में ही रखने का प्रबन्ध किया गया। इसप्रकार से दिगम्बरों द्वारा बनाये एवं प्रबंधित मंदिर को राज्य के अधिकार में देकर राज्य की तरफ से नियुक्त कमेटी के मेम्बर की बतौर प्रबन्ध की लगाम उनके हाथ में आ गई। अब तो मंदिर के अन्दर एवं बाहर सब जगह श्वेतांबर प्रतिनिधियों की नियुक्ति से पहले-पहिले कुछ थोडी-सी श्वेतांबर मूर्तियों को मंदिर में घुसा देने की प्रयुक्ति की गई, परन्तु ऐसा करने से दिगबंर उनका विरोध करेंगे और उनकी प्रयुक्ति चल सकेगी नहीं, इसलिये श्वेतांबर मूर्तियों के साथ ही साथ शिव, ब्रह्मा आदि ब्राह्मणों की मूर्तियाँ भी मंदिर में घुसा दी गईं । **अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये श्वेताम्बरों को नीच से नीच एवं अपने धर्म से भी विरुद्ध अनेक चालबाजियाँ खेलनी पड़ी।** और तो क्या मुसलमानों का भी प्रवेश मंदिर में कराया गया !

अब यदि अकेले दिगम्बर उनका विरोध करें तो ब्राह्मण, शैव और तो क्या सारी मुसलमान प्रजा दिगम्बरों के विरुद्ध खडी हो जाती और वे अपना-अपना स्वार्थ बनाये रखने के लिये श्वेतांबरों का साथ देती हैं। बिचारे निर्बल इसतरह चालबाजी से अपने अधिकारों के अपहरण को चुपचाप देखते रहे। वैसी हीन दशा में वे ही क्या, यदि कोई बलवान प्रजा भी होती तो भी अनेक समाजों के विरुद्ध कहीं मोर्चा थोड़े ही ले सकती थी ? दिगम्बर जनता ९५ वर्षों तक अपने स्वत्वहरण एवं अपमान के घूँट पीती रही, अन्त में आज से ५ वर्ष पहले अपने हक्क को रक्षित करने का एक अवसर मिला । सन् १९२२ में मंदिर का ध्वजादण्ड जीर्ण हो गया और उसके बदले एक नया ध्वजादण्ड चढाने का प्रसंग आ उपस्थित

हुआ। अब श्वेतांबरों ने संवत् १८८९ की बाफणा वाली 'पाटली' का प्रमाण आगे किया, परन्तु फिर भी **मूर्तियों को मुकुट-कुण्डल चढ़ाने और मंदिर की मालिकी का दावा तो किया ही न था** ! वे यह बात भलीभाँति जानते थे कि ऐसा दावा करने का समुचित समय आया नहीं है ! इस मंदिर पर फिर दुबारा ध्वजादंड चढ़ाकर और उसका शिलालेख ठोंकने के बाद में इस पर अपना हक्क सिद्ध करने की युक्ति उनने सोची थी। **इतिहास को बदल डालने और पुराने प्रमाणों को नष्ट कर देने के लिये लम्बे समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिये और नया इतिहास पैदा करना चाहिये।**

तो सन् १९२२ में तो श्वेतांबरों ने केवल ध्वजादण्ड चढ़ाने का ही दावा किया था, परन्तु अब तो दिगम्बर भी जागृत हो गये थे, उनका दावा मजबूत था। खुद महाराणा ने इस केस को अपने हाथ में लिया। वैसे तो केवल एक महिने ही में इस केस का फैसला दिया जा सकता था; परन्तु राज्य की आधुनिक आंतरिक परिस्थिति एवं श्वेतांबर अमलदारों की चालबाजियों से ५-५ वर्षों के निकल जाने पर भी अभी तक इस केस का फैसला नहीं मिल सका।

इसके बीच में आज से ८ मास पहले (अर्थात् भाद्रपद मास संवत् १९८३) में उदयपुर के श्वेतांबरों ने (क्योंकि धुलेव में तो कुछ समय पहले कहीं बाहर से आकर बसनेवाले २-३ श्वेतांबर घरों को छोड़कर और अधिक संख्या नहीं है) इस मंदिर की १७ मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल स्वेच्छापूर्वक चढ़ा दिये थे, जिनको महाराणा ने फौरन उतरवा दिये थे। इस घटना से स्वयंसिद्ध हो जाता है कि (१) सन् १९२७ तक तो श्वेतांबर लोग दिगंबर मूर्ति को ही पूजते चले आ रहे हैं। (२) सन् १९२७ में श्वेतांबर लोग दिगम्बर मूर्ति पर मनमाना फेरफार बिना रुकावट करने की स्थिति में आ गये। (३) ऐसे घोर अन्याय के विरुद्ध दिगम्बर लोग कोई कैसी भी लड़ाई या मारामारी न कर, किन्तु नम्रभाव से महाराणा से प्रार्थना ही करते रहे हैं तथा (४) सन् १९२७ तक महाराणा ने मुकुट-कुंडल चढ़ाने का हक श्वेतांबरों का नहीं माना और ध्वजा के हक्क संबन्धी पुराने केस का फैसला भी नहीं दिया। (क्योंकि यदि फैसला ही दिया होता तो ८ महीने पहले जब श्वेतांबरों ने मूर्तियों पर श्रृंगार कर डाला था, उस समय वे लोग ध्वजादंड चढ़ाने में चूके न होते)।

उसके ८ महिने बाद जबकि महाराणा एवं रेसीडेन्ट दोनों ही अपने स्थानों से बाहर गये हुए थे और लश्कर की तथा मगरा तालुका की सत्ता श्वेतांबरों के हाथ में आ गई थी, तभी तारीख ४ मई को उदयपुर के श्वेतांबरों ने गुपचुप ही दोनों ही क्रियाएँ कर डालने की योजना की। इस बात की गंध (Scent) ज्यों ही दिगम्बरों को लगी और वे लोग महाराणा एवं महाराजकुमार के पास गये, तब महाराजकुमार ने स्वयं आज्ञा न देने और बीच में न पड़ने के

लिये कहा था। महाराणा ने तो आज्ञा न देने के साथ-साथ देवस्थान हाकिम को कोई कैसी भी क्रिया न होने देने के लिये भी ऊपरी-ऊपरी दो लिखित हुक्म दिये थे। फिर भी इस 'दरबार' को यह बात माननी पड़ती है कि किसी न किसी उच्च सत्ता की इस मामले में एक अदृश्य सहानुभूति तो अवश्य होनी ही चाहिये अथवा उक्त दोनों सत्ताओं में से कोई-सी एक किसी चालबाजी की शिकार बन गई है। खुद उदयपुर स्टेट की आधुनिक आन्तरिक परिस्थिति तथा दूसरे देशी राज्यों की अन्दरूनी चालबाजियाँ इस 'दरबार' को भलीप्रकार विदित होने से हाल में क्या हुआ होगा, उसको समझ लेना कठिन नहीं हो सकता। किस सत्ता को किस प्रकार भ्रम में डाला गया होगा , इस बात पर विचार करने का यह प्रसंग नहीं है। इस समय तो यही जान लेना यथेष्ट है कि राज्य के एक अमलदार ने स्टेट की फौज का उपयोग तारीख ४ से तारीख ६ तक, जिस ध्वजादंड के केस का फैसला खुद महाराणा ने अभी तक दिया न था, वही ध्वजादण्ड उदयपुर एवं ब्रिटिश -- इन दोनों ही सत्ताओं के बाहर के एक देशी राज्य के निवासी के हाथ से चढ़वाने में किया है और जिन १७ मूर्तियों के मुकुट-कुण्डल महाराणा ने उतरवा दिये थे उन पर ही नहीं, बल्कि ५२ चैत्यालयों की सभी मूर्तियों पर मुकुट-कुण्डल चढ़ा देने एवं अनेक दिगम्बरों की हत्या कराने में किया है। यह काम उसने सामान्य नीति, कानून एवं महाराणा की आज्ञा -- इन तीनों ही को भंग करके किया है।

ध्वजादण्ड एवं मुकुट-कुण्डल ये दो क्रियाएँ जिस किसी भी प्रकार से एक बार हो जायें तो फिर इन क्रियाओं का शिलालेख लगा देने के कुछ वर्षों बाद फिर मालिकी का दावा करने का श्वेतांबरों ने निश्चय किया था; परन्तु इन परिस्थियों ने उन्हें तारीख ८ से ही मंदिर पर 'हक्क' करने को बाध्य किया। इसका कारण यही है कि तारीख ४ को अनेक दिगंबरों की मौतें हुई और वे सब उपरोक्त दोनों क्रियाओं के सम्बन्ध में ही हुई थी; इसलिये उन क्रियाओं को करने तथा मंदिर पर श्वेतांबरों का ही 'हक्क' था , ऐसा उन्हें एक साथ में कहना पड़ता है।

यदि थोड़ी देर के लिये तारीख ४ से ६ मई की घटना को भुला भी दिया जाय तो आज से २५- ५० वर्षों के बाद आज का लगाया हुआ शिलालेख श्वेतांबरों की ही मालिकी सिद्ध करने का एक अव्यर्थ प्रमाण बन जाता और उस समय संवत् १८८९ में राज्य के अमलदार तरीके श्वेतांबर दीवान द्वारा लगाया हुआ ध्वजादंड का शिलालेख **Undisputed fact**(विवादरहित सत्य)और आज का शिलालेख उसका **Supporter** (समर्थक) प्रमाण बन जाता। जैसे कि **Two Negatives make one Affirmative** (दो 'नकार' एक 'हकार' बना देते हैं) उसी तरह शायद श्वेतांबरों ने यह समझ

लिया होगा कि ऊपरा-ऊपरी दो झूठ एक सत्य की सृष्टि करते हैं ?

सन् १९२७ का ध्वजादंड एवं मुकुट-कुंडल चढाना – ये दोनों ही सत्य घटनायें हैं; परन्तु फिर भी वस्तुतः इनका कुछ भी अर्थ नहीं होता। उसी तरह संवत् १८८९ के ध्वजादंड की 'पाटली' निकल आवे अथवा एक बनावटी 'पाटली' बना डाली जा य, फिर भी उसका भी अर्थ नहीं होता !..... और यदि संवत् १८८९ के इस मायावी दृश्य को अलग कर दें तो श्वेतांबर प्रमाणों में फिर रह ही क्या जाता है ? केवल दिगम्बर जैनों के हाथ से एवं उनके गुरु भट्टारकों के नेतृत्व में एक एक शताब्दि के बाद होने वाले ध्वजादंडारोहण एवं विविध अंश बनाने के शिलालेख मात्र !

परन्तु ये दिगम्बर शिलालेख इस 'दरबार' की दृष्टि में अत्यन्त महत्व की वस्तुएँ नहीं हो सकतीं। इस 'दरबार' को तो यही देखना है कि यह **मंदिर बनवाया किसने** ? यदि यह मंदिर दिगम्बरों -- अकेले दिगम्बरों द्वारा बनाया हुआ सिद्ध हो जाय तो फिर इसमें ध्वजादंड क्रिया किसने की और दिगम्बर प्रतिमाओं के सिवाय अन्य मूर्तियाँ कब 'किसने' सच्चे या झूठे हक्क से इस मंदिर में बिठला दीं इत्यादि प्रश्नों पर विचार करने की इस 'दरबार' को जरूरत नहीं रहती। एक खास धर्म माननेवालों की स्थिति यदि निर्बल हो जाय तो इससे उनके धर्मस्थानों में हर कोई जा घुसता है और नक्कारखाना अथवा शिलालेख ही नहीं, किन्तु'कसाईखाना' भी खोल सकता है। खुद श्वेतांबरों के तीर्थों में ही उनकी निर्बल अवस्था में बकराओं आदि का पशुवध होने लगा था। मनुष्य नग्न मूर्ति को नग्न ही रखकर (अर्थात् मुकुट-कुंडल आदि आभूषण पहनाये बिना ही) पूजन में महापाप मानें और दूसरी तरफ मूर्ति से शान्तरस की भावना लेने के बदले धर्मस्थान में ही पशुवध होते देखने में पाप न मानें -- ऐसा अधःपतन तो मुश्किल से ही दूसरा कोई हो सकता है। मानो जैसे वे नग्न मूर्ति से शरमाते हैं और उसको ढँकने के लिये तो वे इसी मूर्ति के समक्ष दूसरे अपने जैन भाइयों का शिरोच्छेद (हत्या) भी करना पसंद करते हैं और उन्हीं के तीर्थों में अजैनों द्वारा घोर हिंसा हो रही है, उसको रोकने की तरफ तो उनका लक्ष्य भी नहीं पहुँचता है अथवा लक्ष्य करना पसंद ही नहीं हैं। अथवा ऐसा क्यों न हो कि जो मनुष्य 'धर्म' एवं 'हिंसा' को साथ-साथ में देखने के अभ्यस्त हो गये हैं , उनकी मनोदशा प्रथम तो 'हिंसा में धर्म' मानने और बाद में उसे कार्य परिणत करने लग जाय।

धर्मस्थानों से सीखी हुई यह निर्दयता ही आज उनके विविध क्षेत्रों में चलती हुई विविध प्रवृत्तियों के मूल में विद्यमान है। इस क्रूर हृदयता में मूर्ति कारण है -- ऐसा मानने को यह दरबार कभी भी तैयार नहीं है, परन्तु इसका कारण तो धीरे-धीरे क्रुर बना हुआ हृदय **Conscience** ही है, जिसको सदैव ही कोई न कोई झगड़ा खुराक रूप से चाहिये ही।

पालीताणा दरबार के साथ एक बार नियत किस्त भरने के बाद ऐसा कौनसा वर्ष गया है कि जिसमें एक या दूसरे प्रकार से झगडा न चलता रहा हो ? पिछले स्वर्गीय ठाकुर साहब दयालु भगवान ऋषभदेव के कोप से ही मर गये, क्या ऐसा कहकर अन्त में श्वेतांबरों ने अपना गौरव नहीं माना ? आज भी क्या ये लोग उस स्टेट के **Jurisdiction** (न्याय) पर आक्रमण नहीं कर रहे है ? उदयपुर स्टेट का इतना सद्‌भाग्य है कि अब तक ऋषभदेव मंदिर पर (न्याय करने) का हक्क उदयपुर स्टेट का नहीं, किन्तु श्वेतांबर संघ का है -- ऐसा नहीं कहा गया। यद्यपि उन लोगों ने **Jurisdiction** का हक्क अपने हाथ में हो- ऐसा बर्ताव कर तो लिया ही है !)

ए.जी.जी. वॉटसन के पास श्वेतांबर लोग स्वयं न्याय लेने के लिये जाते हैं और जब स्टेट के काम में हस्तक्षेप करने में आनाकानी करते हैं तो भी उन पर श्वेतांबर लोग तरह-तरह के आरोप लगाते हैं और अन्त में जब वे केस हाथ में लेते हैं और उनके विरुद्ध फैसला देते हैं तो ये लोग वॉटसन साहब को भी सब तरह लांछित एवं अपमानित करने में कुछ भी कसर उठा नहीं रखते हैं। एक दिन दिगम्बरों के साथ में एक या दूसरे तीर्थ के हक्क के विषय में, तो दूसरे दिन स्थानकवासियों से मूर्तिपूजा न मानने के कारण तो तीसरे दिन आपस में ही संघ एवं गच्छभेद के कारण लड़ाई तो इन्हें चाहिये ही ! यदि उन्हें लड़ाई न मिले तो शायद उनका जीवन रूखा (नीरस) एवं असह्य हो जाय ! जब कोई कारण नहीं मिलता तो साहित्य की ओट में भी लड़ाई तो चाहिये ही, भले ही बाद में वह मि. मुंशी के विरुद्ध हो अथवा 'झमोर' नामक गल्प के सामान्य लेखक के विरुद्ध ! ऐसे लड़ाई के प्रसंगों में इनका **Sub Conscious Mind** स्पष्ट झलक कर भरी सभाओं में घूँसाबाजी का चेलेंज देने में भी शर्मिंदा नहीं होता।

इन लोगों की प्रकृति इतनी व्यापक हो गई है कि श्वेतांबर संप्रदायानुयायी पं. लालन का माथा फोड़ने के लिये **एक श्वेतांबर पंच महाव्रतधारी** कहलानेवाला साधु ही तड़फड़ाता था ! कुछ दिन पहले एक १८ वर्ष की स्त्री का जीवन-धनपति ही छिन जाने एवं अपना तमाम जीवन धूल में मिल जाने के कारण अत्यन्त शोकाकुल हृदय से वह स्त्री दीक्षा देनेवाले साधु से रोती कलपती हुई प्रार्थना करने गई तो उस दुखिया को इतनी मार मारी गई कि वह लगभग १।। घंटे तक बेहोश पड़ी रही, उसके अनेक अंगों पर कई इंच लम्बे-चौड़े घाव हुए थे। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि इस केस में पिटने एवं पीटनेवाला दोनों श्वेतांबर थे। पतिविहीना एक अबला की भीनी आँखे एवं करुणक्रंदन दयासागर भगवान महावीर का एक सच्चा उपासक बनने का यह दावा करनेवाले पंचमहाव्रतधारी मुनि के हृदय में दया का ऐसा स्रोत प्रवाहित कर देते हैं कि उसपर चारों तरफ से क्रूरतापूर्ण

मार पड़ती है, जिसके कारण उसे २१ दिन तक सरकारी अस्पताल की शरण लेनी पड़ती है ! अनेकों युवकों एवं युवतियों के आनन्दमय मिष्ट भविष्य को नष्ट कर समाज एवं धर्म के प्रति घोर अपकार करनेवाले एक साधु के लिये क्या श्वेतांबर समाज में भारी विरोध नहीं फैला हुआ है ? श्वेतांबर समाज में नवजीवन प्रवाहित करनेवालों में सबसे अग्रणी और 'जैन' पत्र के जन्मदाता स्वर्गीय **भृगुभाई कारभारी** को **'आनन्दजी कल्याणजी'** के हिसाब के विषय में प्रश्नोत्तर करने के लिये उठने मात्र के अपराध में गर्दन पकड कर भरी सभा में से जड़वस्तु की तरह से उठाकर फेंक दिया गया था -- इसका कारण क्या मूर्ति थी !

मानवसेवा एवं सरलता के मूर्तिमंत उदाहरण श्वेतांबर सम्प्रदायानुयायी **लल्लू भाई रायजी** की लोकप्रियता सहन न होने से सत्ता के ठेकेदार श्वेताम्बर पटेलों ने उनको बुरी तरह से पायमाल करके ऊपर से बेइज्जत करने में भी क्या बाकी रखा था ? अभी हाल ही में उच्च शिक्षित एवं प्रसिद्ध श्वेतांबर करोडपति **श्री अम्बालाल साराभाई** को क्या श्वेतांबर संघ से स्तीफा नहीं दे देना पड़ा ?

उदयपुर राज्यांतर्गत **कांकरोली ग्राम** में मंदिर बनाने के हक्क की ओट में खौलता हुआ तेल उस गाँव के अधिपति के आदमियों पर डालने की क्रूर कृति को श्वेतांबर लोग अस्विकार कर सकते हैं क्या ? जिससमय केवल भारत का नहीं, किन्तु सारे जगत का **महात्मा गांधीजी** में पूज्यभाव था और मुसलमान भी उनका आदर करते थे; उससमय भी श्वेतांबर पत्रों, जनता एवं साधुवर्ग ने भी उनको अपमानित करने में कुछ भी कसर उठा नहीं रखी थी । अद्वितीय एवं ज्ञानयोगियों में शिरोमणि **आनंदधनजी** सरीखे साधु को यह समाज छोड़कर अकेले ही अलग- थलग भागना पड़ा । ऐसा क्या श्वेतांबर सॉलीसिटर मोतीचंद के ग्रंथ में नहीं लिखा?

भाषा, न्याय एवं इतिहास के अद्वितीय विद्वान **जिनविजय** सरीखे श्वेतांबर मुनि को इस पंथ के कपडे एवं समाज के साथ अपना संपूर्ण संबंध क्यों छोड़ना पडा ? श्वेतांबर समाज द्वारा ही पढाये गये पंकत **बेचरदासजी ने जब ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय दृष्टि से सत्य सत्य लिखना शुरु किया, तब यह सत्य अन्य श्वेतांबरों को असह्य लगने से इस शान्त एवं सरल परिणामी पंडित पर उनने क्या कम आफतें डाली थीं ? जिन श्वेताम्बर साधुओं ने आत्मशुद्धि एवं आचार दृढ़ता के लिये कठिन से कठिन नियमों का पालन करना शुरु किया था, उन पर क्या ओछी आफतें डाली गई थीं ? परन्तु दूर जाने की क्या जरूरत है ? क्या इस केस का श्वेताम्बर साक्षी मोतीचन्द स्वयं ही सन १९१४ के किसी शुभ मुहूर्त में उपरोक्त वस्तुस्थिति की अपेक्षा और भी बुरी वस्तुस्थिति हो जाने का इकरार नहीं कर**

चुका है ? देखो, ये उसके शब्द हैं:--

"दुनिया में धर्म के नाम से अनेक लड़ाईयाँ हुई हैं। कई बार बाहर से शान्त दिखाई देनेवाले धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बहा देते हैं ; धर्म के नाम से विविध प्रकार की कषायें करते हैं और धर्म तथा चैतन्य में परस्पर क्या संबन्ध है, इस बात का भी वे विचार नहीं करते। ऐसे आदमी धर्म को.....अपना व्यापार बना डालते हैं और उसके द्वारा अपनी रोटी पैदा करते हैं। धर्म का ढोंग करनेवाले को मान-सन्मान अनायास ही बहुत मिल जांता है.....। इस स्थिति का लाभ लेकर बहुत से आदमी अनेक प्रकार के धतिंग चलाते हैं"......। **"स्वयं जैनधर्म के अनुयायी भी साम्प्रदायिक भेद के चक्कर में ऐसी बुरी तरह से फँस गये हैं कि अब तो उनके मुँह में तत्व चर्चा भी शोभनीक नहीं मालूम पडती है.......।"** धर्म के नाम से हिंसा की, असत्य वचनोच्चार किया, चोरी करके ढेर की ढेर लक्ष्मी एकत्रित कर डाली.....प्रभु के नाम से लाखों रुपयों के फंड इकट्ठे किये, कपट-जाल बिछाकर अनेक भोले-भाले जीवों को फँसाया; धर्मिष्ट होने के बहाने अपना काम चलाया......। परधर्म की, परतीर्थ की और उनके अनुयायियों की निंदा की; मिथ्या धर्म के लिये क्रोध, मान, माया, लोभ किये और उनमें अपना बड़प्पन माना। इसप्रकार से मैंने अनेक प्रकार की अधमताएँ खुले तौर पर कीं और धर्म के नाम पर दुकान चलाई।"

"अब अपनी ऐसी विचित्र मूर्खता पर मैं जब विचार करता हूँ तब मुझे बहुत खेद होता है.....। उन सबका वर्णन करते हुए मुझे स्वयं ही शर्म आती है".......।

"जो विज्ञ हैं उनकी समझ में यह बात बिल्कुल आसानी से आ जाती है कि तीर्थ के उपदेशक तो बिलकुल बाह्य भाव में ही होते हैं। अन्तर आत्मदशा क्या है सो वे कुछ नहीं समझते, विचारते भी नहीं हैं और जानते भी नहीं हैं। वे तो केवल बाह्य क्रियाओं को करते है; धर्म के नाम पर खूब ही उछलकूद मचाते हैं, धर्मनिष्ठ होने का ढोंग करते हैं और अपना कर्तव्य समझकर उसमें अपनी परिपूर्णता समझते हैं....।"

परन्तु सन् १९१४ के बाद तो आज १३ वर्ष बीत गये हैं; उसके बाद तो जगतभर में कुछ का कुछ हो गया है और उक्त शब्द के लेखक की हृदयसृष्टि भी बदले बिना नहीं रही! सन् १९२१ में साक्षी को अनुभव ज्ञान हुआ होगा, क्योंकि इस वर्ष में आप लिखते हैं कि 'शुद्ध' का नहीं, किन्तु 'लोक व्यवहार' के अनुसार 'व्यवहार' करना चाहिये। **Conscience** (शुद्ध हृदय) का नहीं , किन्तु **Popular side** को उस दिन से 'लक्ष्य' अथवा 'देव' कल्पना करने का इनको मतिज्ञान प्रगट हुआ और आज सन १९२७ में उस ज्ञान के आदेश का आज्ञानुवर्ती बनकर यथाशक्य तदनुसार कार्य किया है। आज उसको सन् १९१४ की तरह से धर्म के नाम से खून की नदियाँ बहाते देखकर 'शर्म' नहीं आती है ! क्योंकि इक्षुरस के

१०८ घड़ों से 'वर्षी तप' मनाने के दिवस को (अर्थात् वैशाख सुदी ३, तारीख ४ मई १९२७) दरवाजा बन्द करके 'खून की नदी' को पानी के १०८ घड़ों से धो डालने के बाद किसी को क्यों शर्मिन्दा होना चाहिये ? साक्षी रणछोडभाई ऐसा बोल जाते हैं कि इस दिन मौतें होने के बाद पुलिस ने किसी को मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया, (शांति रक्षा के लिये !) सन् १९१४ में धर्म के नाम से, 'असत्य वचनोच्चार' करने का इकरार करनेवाले श्वेतांबर वकील को सन् १९२७ में १०० से भी अधिक श्वेताम्बरों की हाजिरी को कभी केवल दो और कभी बिलकुल नहीं लिखने में असत्य ही नहीं मालूम पडता ! जिस मंदिर की प्रत्येक ईंट एवं पत्थर दिगम्बर समाज के पैसे से बनी एवं चिनी गई है, उस मंदिर को अपनी आँखों से देख आने के बाद भी मेहमान का रूप लेकर आनेवाले अब मालिक बन बैठने के बाद भी यजमान की खोपड़ी एवं पसलियों को तोडनेवालों के वकील एवं प्रोपेगेण्डिस्ट (आन्दोलक) (मानों उदयपुर के श्वेतांबरों ने अपनी बहादुरी दिखाने में अपूर्णता रखी थी ,उसकी पूर्ति के लिये) ने मरे हुए स्वधर्मियों के ऊपर **Cowards** (नामर्द) होने का तीव्र प्रहार किया है ! ये सब तो कानून, धर्म, मनुष्यता आदि सभी दृष्टियों से चोरी, हिंसा, असत्य की शायद व्याख्या में नहीं आते हैं ऐसा ही मालूम पड़ता है।

बहुत सम्भव है कि सन् १९१४ में 'धर्म का ढोंग करनेवाले को मान सम्मान बहुत मिलता है' ऐसी स्थिति का जो इकरार किया गया है, वही वस्तुस्थिति सन् १९२७ में न रही हो ! खुद जैनधर्म के अनुयायी ही मिथ्या धर्म के लिये क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें कर, उनमें प्रशास्ता न मानने के इकरार को अब रद्द करके संभवतः फिर उसी काम में प्रशास्ता मानने लगे हों, और लोकमत के बदलने के साथ-साथ लोकमत के वकील को भी अपना मत बदलना पड़ा हो ! 'तीर्थ के उपदेशक तो बिलकुल बाह्य भाव में ही होते हैं" इसीलिये शायद अंतरंग दृष्टि की तरफ प्रेरणा करती हुई, किंतु बाह्य चक्षुओं से रहित दिगम्बर मूर्ति **(Naked Truth)** साक्षी और उसके अशीलों को मानों चुभती हों और इसीलिये इस **Naked Truth** के देव और उसके उपासकों को 'धर्मच्युत' करने अथवा धर्मच्युत न किये जा सकें तो 'निकाल बाहर' करने की आवश्यकता अनिवार्यरूप से संभवतः पैदा हुई हो ! क्या शंकराचार्य के समय में जैनों को शैवमार्ग ग्रहण करने में धर्म पर कम आपत्तियाँ आई थीं? इन्हीं सब बातों का नाम तो है 'लोक' ! और यही है 'लोकधर्म' ! लोक-विरुद्ध नहीं करना, 'शुद्ध' का मोह नहीं रखना। इसी लोकधर्म की दीक्षा साक्षी ने सन् १९२१ में लेकर आज भलीभाँति पालन कर दिखाई है। अब जनता को इस नये 'लोकनायक' को मानपत्रों द्वारा सम्मानित करना चाहिये ! और कुछ नहीं तो सब लोग अपने-अपने मुकद्दमें ही ...। परन्तु नहीं; यह विराट

दरबार **Lighter Vein** (हास्य) नहीं कर सकता; इसको तो गंभीरतापूर्वक विकृत बने हुए 'लोकमत' को सीधा करना ही पड़ेगा।

कृष्ण (अथवा शुद्ध संकल्प बुद्धि) ने जिसतरह (कुधी) कुबुद्धि रूपी दासी को लात मारकर सीधा (आत्मोन्मुख) बनाया था, उसीतरह विराटराज के विविध अंगों की स्वस्थता ने पवित्र सख्ताई **(Shtern Justice)** माँग ली है। किसी 'व्यक्ति' के हाथ की नहीं, परन्तु विराटराज के हाथ की सख्ताई ही इस वस्तुस्थिति को बदल सकती है। यह 'दरबार' देख सकता है कि उस सख्ताई का प्रारम्भ हो चुका है। द्रव्य की अधिकता और उससे खरीदा हुआ लोकमत रूपी उन्माद धीमे-धीमे घटता जाता है। अनेक युद्धों के एक साथ पैदा हो जाने से युद्धनायक खुद उनके अनुयायियों ही की दृष्टि से गिरते जा रहे हैं। जनता में से इज्जत कम हो जाती है। एक दिन ऐसा आवेगा कि उनके ही कृत्यों से एक भी तीर्थ उनके हाथ में नहीं रहने पावेगा और उससमय केवल उन्हीं को हानि पहुँचेगी कि जो तीर्थ के नाम से कीर्ति या पैसा अथवा इन दोनों ही को हड़प रहे हैं। अवशिष्ट वर्ग तो झगड़ों से 'तोबा' कहकर अन्तर्दृष्टि की तरफ अग्रसर होकर नवजीवन पावेगा। उससमय मंदिरों एवं उपाश्रयों में रुँधा हुआ 'भाव' तमाम भारत एवं मनुष्य जाति तक फैल जायगा और समष्टिभाव का रूप ले लेगा। यही 'मार्ग' इनका मोक्षमार्ग बनेगा। अबतक उनको ऐसी तीव्र 'मार' नहीं पड़ी है कि जिससे उनकी मोटी खालपर कुछ भी असर हो सके। हाल में तो एक तरफ से पालीताणा का शोक पालने केलिये, कहते हुए भी और काली झंडियों का जुलूस तमाशा रूप से निकालने पर भी, युद्धनायक के मान में बड़ा भारी उत्सव मनाकर ५-५ लाख रु. का व्यय भी किया जा सकता है ! शोक के समय में 'संघ' निकाल कर समाज के घर में से १०-२० लाख रुपयों की बर्बादी भी की जा सकती है। क्या यही है इनके पालीताणा विषयक युद्ध अथवा शोक का स्वरूप ? अरे ! जो लोग तीर्थों की तरफ भी मात्र इतना ही वास्तविक आदर दिखाते हैं, वे दिगंबरों के मुर्दों के समक्ष ही वैशाख सुदी ५ के दिन महोत्सव मनाने और मालपानी उड़ाने की निष्ठुरता करें तो इसमें आश्चर्य करने की कौनसी बात है ?

११. यथार्थ में मंदिर है किसका ?

तब तो केवल एक ही प्रश्न का उत्तर देना बाकी रहता है और वह यह है कि इस मंदिर का असली मालिक है कौन ? यह 'दरबार' निश्चय करता है कि इस मंदिर का मालिक वही समाज है, जिसके द्रव्य से अपनी धार्मिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये इस मंदिर को बनाया गया हो। आज से कई वर्ष पहले प्रसिद्ध ऐतिहासिक अजैन विद्वान रायबहादुर ओझाजी ने महीनों तक बारीक जाँच करके यह सिद्ध किया है कि पूर्ण मंदिर **दिगंबरों ने ही बनवाया था -- इसमें किसी भी प्रकार के संदेह को स्थान नहीं है** ।(ओझाजी के इतिहास का 'ऋषभदेव' शीर्षक लेख प्रमाण में आ जाने के कारण इस जजमेंट का एक अंग समझा जायगा) मंदिर की ७५ प्रतिशत मूर्तियाँ और मूलनायक भगवान ऋषभदेव की मूर्ति भी (कि जिसके ऊपर के शिखर पर ही ध्वजादण्ड चढ़ाया जाता है, और किसी शिखर पर नहीं) **निर्विवाद रूप से दिगम्बर बनावट की हैं**। दिगम्बर मूर्ति के चक्षु खुले नहीं होते, लंगोट का चिह्न नहीं होता और उनके आसन के नीचे दिगम्बर मान्यता के अनुसार १६ स्वप्न (न कि श्वेतांबर मान्यता के १४ स्वप्न) खुदे हुए हैं। ये सब लक्षण तो मूर्ति को बनाते समय ही अंकित किये जाते हैं और बाद में उनमें कोई कैसा भी फेरफार नहीं किया जा सकता। यह सौभाग्य की बात है कि ओझाजी का इतिहास एवं मंदिर के शिलालेख अब भी मौजूद हैं; परन्तु यदि वे न होते तो भी **यह 'दरबार' तो जहाँ-जहाँ पर नग्न जिनेश्वर की मूर्ति मूलनायक रूप से विराजमान हो, उन सब स्थानों को दिगम्बरों के ही सुपुर्द करना उचित समझेगा** -- केवल उससमय को छोडकर,जबकि दिगम्बर समाज अपने तीर्थों की रक्षा करने में बिलकुल अशक्त हो।

ऋषभदेव नाम के दो तीर्थ हैं -- एक पालीताणा में और दूसरा धुलेव में। पालीताणा के इस तीर्थ का भविष्य श्वेतांबरों ने अनिश्चित वर्षों के लिये बायकाट किया है, इससे सिद्ध होता है कि वे लोग ऋषभदेव के बिना भी काम चला सकते हैं। पालीताणा के ऋषभदेव के नाम की ओट में वे लोग पालीताणा दरबार की राज्यसत्ता को भी ठोकर मारने केलिये तैयार हो गये हैं। उसी तरह धुलेव के ऋषभदेव के नाम से भी -- यदि इन लोगों के उदयपुर में पैर जमे रहे तो एक दिन यह लोग उदयपुर स्टेट को भी ठोकर नहीं मारेंगें इसकी क्या गॉरण्टी है? धुलेव के ऋषभदेव के मंदिर से दिगम्बरों का कम से कम ६५० वर्षों पुराना संबन्ध है; परन्तु इतने समय में इन लोगों ने स्टेट या पुलिस के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं किया, इसका इतिहास साक्षी है। लाखों करोड़ों की लागत से तैयार हुए इस तीर्थ को पचा जाने के लिये दूसरों की तरफ से इतने-इतने प्रयास किये जा रहे हैं , फिर भी दिगम्बर लोग महाराणा से

नम्र प्रार्थना करके ही चुप हैं, दूसरों का माथा फोड़ना इनने कभी भी पसन्द नहीं किया। ५-५ वर्षों तक भी अर्जी का फैसला न मिलने पर भी और हाल में उनके इतने आदमियों के मारे जाने पर भी दिगम्बर समाज ने कोई कैसी भी उद्धतता नहीं दिखाई। इतना ही नहीं, दूसरी तरफ श्वेतांबर कॉन्फरेन्स को जाँच कमेटी में अपनी तरफ से मेम्बर भेज देने का आमंत्रण देने से इसने अपनी उदारता, शांति-प्रियता, सरलता एवं समता आदि सिद्ध कर दिखाई है। यदि किसी समय कोई एक मंदिर श्वेतांबरों ने ही बनाया होता तो भी इनके पास इसी नाम का एक दूसरा तीर्थ मौजूद है और उसपर तो ये लोग स्वयं ही वायकाट करते फिरते हैं, यह देखकर तथा सब जगह कानून को हाथ में लेकर इनकी प्रकृति सिद्ध हो जाने पर तो ऐसे मंदिर को स्टेट की मिल्कत (संपत्ति) बनाकर इस मंदिर में श्वेतांबरों को प्रवेश करने से रोकने का जजमेंट देना इस 'दरबार' को उचित है कि जिससे उदयपुर की प्रजा एवं राज्य के सिर पर 'छत्रभंग' की सूचना फलीभूत हो जाने का प्रसंग ही न आने पावे।

१२. इस विराट दरबार का निर्णय

जब यह मंदिर सब प्रकार से दिगम्बरों की ही संम्पत्ति सिद्ध हो चुका है, तब तो श्वेतांबरों को अपनी मूर्तियाँ वहीं छोडकर चले जाने के सिवाय और दूसरा कोई न्याय इस 'दरबार' के कानूनों में नहीं हो सकता। दूसरे की संपत्ति को हड़प जाने, पड़ौसी एवं स्वधर्मी के प्रति भयंकर द्रोह करने तथा इक्षुरस के १०८ घड़ों द्वारा शीतलता करने के प्रसंग पर भयंकर नरमेध करने के इन तीनों आरोपों की कड़ी से कड़ी सजा का पात्र श्वेतांबरों को मानना ही पड़ेगा, परन्तु क्योंकि यह 'दरबार' सजा नामक वस्तु में विश्वास नहीं रखता और धर्मगुरुओं तथा धार्मिक नेताओं के पाप ही उस पंथ के पंथियों को पापी बनाते है -- इस बात को स्मरण रखकर यह 'दरबार' उदयपुर के श्वेतांबरों एवं अज्ञानी भील फौजियों को क्षमा देता है, परन्तु फौज के अफसरों को और उसके अत्यन्त घृणित अमानुषिक कृत्य की रक्षा करने को निकले हुए वकील को, जिस प्रदेश में ब्रिटिश सरकार ने उपनिवेश बसाने के लिए मोपला जाति को भेजने की योजना की थी, उसी स्थान में भेज देने के लिये उनके अधिकारियों को हुक्म देता है कि जिससे वे अपनी बुद्धि का उपयोग और भी गम्भीरता से करने की स्थिति में आजा यें और यहाँ की जनता उनके जहरी चेप से बच सके। मिठाई, सुवर्ण, सौन्दर्य इत्यादि वस्तुएँ स्वयं कोई 'पाप' अथवा 'पतनकारक तत्त्व' नहीं है।

व्यक्ति की निर्बलता ही उस व्यक्ति को इन वस्तुओं के बिना जीवित रहना असह्य बना देती है और पीछे से गुलामी का अभ्यस्त वह व्यक्तिअपने आसपास के व्यक्तियों में उसी गुलामी को ज्ञात अथवा अज्ञात भाव से प्रेरित कर देता है। यह निर्बलता ही 'पाप' है, पतन करनेवाली है और मनुष्य को उसके देवत्व पद से नीचे गिराकर पशुत्व की कोटि में रखनेवाली हो जाती है। खुद मिठाई खानेवाले, खुद सोना या सोना पहननेवाले, खुद सौन्दर्य या सौन्दर्य देखनेवाले- इनमें से किसी में भी 'पाप' नाम का भूत घुसा नहीं बैठा होता। लोलुपी, लोभी, अथवा विषयी मनुष्य अपने अन्दर की गुलामी का चेप दूसरों पर लगानेवाला होता है और इसी से दूसरे भी लोलुप, लोभी अथवा विषयी बन जाते हैं। इससे तीक्ष्ण बुद्धि से रहित जनता यह समझने लग जाती है कि स्वादिष्ट पदार्थ, धन एवं स्त्री 'पापरूप' हैं और इसीलिये त्याज्य हैं। सरकार, कानून, धर्म, नीति, इज्जत इत्यादि समस्त विषय ठीक ऐसे ही है। इनमें से कोई भी वस्तु न तो 'पाप' रूप ही है और न पुण्यरूप अर्थात मनुष्य हृदय को स्वच्छ एवं प्रगतिमान बनाने का साधन भी बनाया जा सकता है और इन वस्तुओं का गुलाम बननेवाला इन्हीं चीजों से अपना एवं समाज का अधःपतन भी कर सकता है अर्थात् इन्हीं वस्तुओं को 'पापरूप' बना सकता है। 'कानून' एवं 'धर्म' के गुलामों ने इन्हीं 'कानून' एवं 'धर्म'

को और उनके द्वारा जनता को भ्रष्ट करके इस पृथ्वी को जीता-जागता नरक बना डाला है।

एक समय यूरोपीय महायुद्ध के कारण 'श्रीमंत' वन बैठनेवाले और उसी कारण अपने आपको सामान्य जनता से उच्चतर कोटि के देवतुल्य समझनेवाले धनवानों की गुठली एवं छिलका अब अलग होना शुरू हो गया, उसी तरह से जिन लोगों को 'धर्म एवं क़ानून' का अजीर्ण हो गया है, उन लोगों पर 'विराट राज' का डंडा पडने ही वाला है। यह बनावटी गंभीरता एवं बुद्धि का व्यभिचार अब तो समाज के आरोग्य के लिये कदापि सह्य नहीं है और यही हाल राज्यसत्ता के दासों का समझना चाहिये कि जो स्वयं न तो बुरी ही वस्तु है और न अच्छी ही; परन्तु उसके अति परिचय से सत्ता- लौलुप्य रूपी 'भूत'पैदा हो गया है।

इसीलिये यह 'दरवार' केशरियाजी में होनेवाली इस अमानुषिक घटना के इन्साफ में फौज के अफसर, मजिस्ट्रेट, उनके वकील और जिसने बाहर से आकर पर्दे के पीछे रहकर सारा गंदा नाटक खेलने में रसपूर्ण भाग लिया है, उस धर्मगुरु को **School of Correption** अर्थात् मोपलाओं के उपनिवेश में तत्काल ही चले जाने का हुक्म देता है। जिसको **Masses** 'नर्कावास' कहते हैं वह वस्तुतः भालों, सुइयों या लोहे से परिपूर्ण कोई भूमि नहीं है, परन्तु जड़ हृदय भूमिका को भी स्पर्श सकने वाले प्रसंग जहाँ अखंड बनते रहते हैं, उस जिंदगी का नाम ही 'नर्कावास' है। यही जिंदगी मनुष्य की अन्तर्चक्षुओं को खोलने एवं विकास करनेवाली होती है, जिसके कारण स्थूल पदार्थ मात्र की गुलामी तथा मानादि सूक्ष्म पदार्थों की गुलामी आदि विकृतियाँ स्वयं ही नष्ट हो जाती हैं।

अब उदयपुर के क्षत्रिय कुलभूषण महाराणा की तरफ लौटें, बिना हथियारों के ही सिंह या बाघ का शिकार करना अथवा कुरुक्षेत्र में तीव्रतम तलवार का घाव छाती पर लगने पर भी हँसते मुँह बने रहना, यही क्षत्रिय धर्म अवश्य है; परन्तु वह है क्षत्रिय धर्म का 'शरीर' बाह्य खोका, नहीं कि पूर्ण क्षत्रियता। पूर्ण क्षत्रियता तो जनता के प्रत्येक अंकोड़ा को अपने जीवन के लिये अनिवार्य आवश्यक समझता है और इसीलिये प्रत्येक की रक्षा एवं विकास के लिये 'अखंड जागृत' बना रहता है। एक लाख अंकोड़ा वाली सांकल से लंगर डाले हुए तूफानी समुद्र के जहाज की संरक्षा (सलामती) उस सांकल के एक भी अंकोड़ा (कुण्डा) के निर्बल-टूटने या छूटने से अदृष्य हो जाती है। राजा के अस्तित्व के मात्र बाह्य शरीर को ही अजेय बनाने से और बुद्धि तथा हृदय को यों ही लापरवाही से छोड़ देने से कभी भी जीवन टिक नहीं सकता है। ठीक इसी तरह प्रजा में से मात्र शारीरिक लक्ष्य रखनेवाले वर्ग को ही मजबूत रखकर तथा बुद्धितत्व एवं हृदयबल वाले वर्ग को यों ही सड़ाते रहने से कोई भी राज्य बहुत समय तक जीवित नहीं रह सका है और जीवित रह सकता भी नहीं है।

जब प्रजा धुलेव में काटी जा रही हो तब प्रजारूपी शरीर का मस्तक स्वरूप राजा राजधानी से दूर विलास-महलों में आनन्द–प्रमोद कर सकता हो और बिना फरियाद किये ही उसके मस्तक को यदि Shock जैसा असर न किया जा सकता हो तो समझ लेना चाहिये कि वह 'पूरा राजा' तो है नहीं, भले ही वह 'आधा' या 'पाव' राजा हो। 'आधा' राजा कहने का यदि कोई तो अर्थ हो सकता है तो सिर्फ इतना ही कि पूरे में आधा बना हुआ राजा निकट भविष्य में अपने रहे सहे राजस्व को भी गँवा बैठेगा। प्रजा एवं ऐसे राजा में मनुष्यत्व सामान्य तत्त्व है। एक में राजापने की विशेषता थी यही राजापना - यही **Glory** अथवा **Shining Virtue** या **Stern Justice** एवं स्त्रयं अपने आप पर कठिन बन जाने की मर्दानगी कि जो सामान्य **Masses** में नहीं हो सकती, एक ही समय में अपने 'पासाओं, अथवा **Sides** से चारों तरफ ऊपर-नीचे भी नजर फेंक सकें – ऐसे इस कड़े एवं प्रकाशित हीरे **(Diamond)** की खासियत ही 'राजा' पने को सिद्ध करती है। इसी तरह वैभव एवं आमोद-प्रमोदों के प्रचुर साधनों एवं अनेक प्रकार की उपाधियों के बीच में घिरे रहने पर भी क्षणमात्र में उन सबसे अपना रुख फेरने और उच्च वातावरण में प्रविष्ट होकर असाधारण कार्य कर डालने की शक्ति या विशेषता ही 'राजस्व' सिद्ध करती है। इस हकीकत को जो नहीं समझ सकता, उसको राजा माननेवाला झूठे भय में भटकता है। अपने अंग अथवा हथियाररूपी राजपुरुषों की प्रत्येक क्रिया का प्रेरक एवं देखरेख रखनेवाला, इतना ही नहीं ये सब अंग तमाम दिन में जो कुछ कर सकते हों, उसके रहस्य को एक क्षणमात्र में समझ जाने की असाधारण शक्ति रखनेवाला ही 'राजा' बन सकता है। शेष तो सबके सब अपने ही ब्यूरोक्रिस्टों –गुलामों के हाथ के खिलौने अथवा अनेक गुलामों की मिल्कत के समान हैं।

एशिया, यूरोप में राजपद अरुचिकारक होने लगा है और इसीलिये यह जगह-जगह से अदृश्य होने लगा है। क्या इसमें विराटराज का छुपा आशय स्पष्ट नहीं झलक जाता ? इतने छोटे से राज्य में और उससे भी छोटे महल में यदि **Harmony** (एकमयता) एवं उत्तरोत्तर विकास की योजना न हो सकती हो तो समस्त भारत पर राज्य जमाने की यदि कोई अचिन्त्य सुघड़ी आ खड़ी हो तो उससमय वे उसे कैसे सम्हाल सकेंगे ? क्या पृथ्वीराज रासों में लिखा गया भारत का भविष्य उदयपुर स्टेट द्वारा झूठ सिद्ध कर दिया जायगा ? यदि ऐसा ही होनेवाला हो तो इससे अच्छी बात तो यह हो कि ऐसे अशक्य जीवन को लाचारी से सहने की अपेक्षा वानप्रस्थाश्रम अंगीकार कर लिया जाय और उसके पहले अपनी तमाम मिल्कत (संपत्ति) को भारत के उद्धार के लिये अहर्निश प्रयत्न करनेवाली विविध संस्थाओं को गुपचुप दान में दे दिया जाय। कुटुम्बियों का अथवा राज्य का मोह केशरी सिंह को,

नरेश या योगी के लिये कदापि शोभास्पद नहीं है। उनका जीवन तो राज्य करने के लिये है, जीते रहने के लिये नहीं। जीवित रहने की इच्छा तो प्रजावर्ग में ही होती है, राजा एवं सूर्य इन दो ही की प्रकृति में राज करने का शौक **(Will to rule)** हो सकता है और सूर्य का तपना किस तरह का होता है ? वह स्वयं तो कुछ करता हुआ दिखाई देता नहीं है फिर भी 'जमीन' के 'पेट' में एक बेल से लेकर मनुष्य तक के तमाम सृजन कार्य को वही करता है; वही पैदा करता है, वही दिखाता है, वही गति देता है, वही गतिहीन शरीरों को जलाकर खाक कर डालता है। नवल कथाकार, कवि एवं कामी भले ही निशाचर चन्द्रमा की प्रशंसा करते रहें; परन्तु सूर्य देखने के चक्षु तो केवल 'राजा' या तत्त्वज्ञ को ही मिलते हैं और जो राजा सूर्य एवं चन्द्रमा इन दोनों में से कुछ भी न बन सके तो एक सामान्य मनुष्य की तरह से जीवित रहने की प्रमाणिकता तो उसे सीखनी ही पड़ेगी।

उदयपुर के अमलदार वर्ग को केवल दो ही शिक्षावचन यथेष्ट सजारूप होंगे, ऐसी यह विराट 'दरबार' आशा करता है। केवल नीतिवाद के पुजारियों की तरह से इस दरबार ने यह तो कभी नहीं कहा कि राजा एवं प्रजा ऐसे मदोन्मत्त दो झरनों का बल जिसके ऊपर परस्पर में टक्करें मार रहा हो- ऐसा अमलदार बिल्कुल निर्मल ही होना चाहिए। जिस विशेषता ने सीता के सतीत्व को रावण जैसे बलवान व्यक्ति से बचा लिया ओर द्रौपदी को ५-५ पतियों में से किसी को भी नाखुश किये बिना ही पाँचों ही पतियों की अर्धांगना बनने की योग्यता दी वही विशेषता तो अमलदार का खास लक्षण है। स्थूल विविधता की सूक्ष्म एकता बनाने वाला नशा अथवा निज स्वरूप के स्मरण की खुमारी, यही तो अमलदार का गौरव है और राजा-प्रजा की एक खास आवश्यकता है। अमलदार तो वह स्त्री है, वह शक्ति है कि जो पाँच-पाँच पतियों की सेवा करते रहने पर भी वेश्या नहीं है, परन्तु एक पति की ही सेवा करनेवाली सती से भी बड़ी सती – महासती है। यह वेश्या की तरह केवल पैसे की भूखी नहीं होती, परन्तु सीता की तरह से अकेले गौरव को ही सम्भालने की परवाह करती है, वह किसी की मिलकियत नहीं बन जाती, क्योंकि वह किसी की मिलकियत चाहती नहीं है।

अमलदारी तो वस्तुतः **(Practically)** योग सीखने की शाला है, सुअवसर है। योगी, ज्ञानी, राजा – इन तीनों में जो खुमारी, जो मस्ती, जो गौरव स्वभावतः होता है, उसका अंश अमलदार में उतर कर इसको अपने मिशन में एकाग्रचित्त करनेका –जैसे कि जौहरी लोग मूल्य आँकने के लिये भाँग की खुमारी लेने के समान अथवा ऋत्विज के 'सोमपान' के समान और अत्यन्त उच्च आत्मदशा को प्राप्त हुए साधु (अवधूत) के ज्ञान के नशे के समान साधन हो जाता है। सारांश यह है कि मनुष्यशरीरमें जो स्थान 'हृदय' का है, वही स्थान मनुष्य-समाज में अमलदार का है। उसमें एक की आज्ञा पालने की तत्परता एवं अनेक पर

आज्ञा चलाने की योग्यता अवश्य होनी चाहिये, फिर भी उसका हृदय तो शुद्ध स्वच्छ ही होना चाहिये । यह कोई अति विकट कार्य नहीं है । एक बिना पढ़ी-लिखी गृहिणी भी उसका भलीभाँति पालन कर सकती है, यद्यपि यह बुद्धिशाली वेश्या को अति कठिन असम्भव जैसा मालूम पडता है ! अमलदार को तो ये दोनों ही अवस्थाएँ पार करके द्रौपदी बनने के पदस्थ पर आना चहिये । जो अमलदार ऐसा नहीं बन सकता है वह वेश्या है, जिसके मुँह पर साधुजन थूकते हैं और जिसकी पीठ पर खुद उसके गुलाम भी थूकते हैं।

१३. उदयपुर के श्वेताम्बर एवं सिपाही ?

क्या तुम जानते हो कि तुमने क्या कर डाला है ? अथवा तुम्हारे हाथों से क्या करा डाला गया है ? तुमको मुक्ति का वचन और सिपाही रूप से तुमको वेतन देनेवाला केवल निर्जीव पदार्थ की तरह से तुम्हारा उपयोग कर रहा है और तुम उसे सहन कर रहे हो – इसी से सिद्ध हो जाता है कि तुम सब तरह से दयापात्र बन गये हो। उदयपुर की पहाड़ी में भील रूप से भटकते समय तुम लोग आज की अपेक्षा उत्तम 'मनुष्य' थे; परन्तु तुम्हारी इस 'सिपाहीगिरी' एवं 'नागरिकता' ने तो तुम्हारी स्वतन्त्र क्रियाशक्ति को ही सब प्रकार से दबा दिया है। भयंकर डाकू भी स्त्री,वृद्ध, बालक, धर्मात्मा अथवा असहाय मनुष्य पर हाथ उठाने को तत्पर नहीं होता, फिर तुमने तो अपने ही देशवासियों पर, अपने ही संयमी बन्धुओं पर, निःशस्त्र स्त्री, बालक एवं वृद्धों पर अपने ही देव के समक्ष आक्रमण किया है और वीरता की केशर चढ़ाने के बदले नामर्दी से खून की नदी बहाई है।

केशरिया अथवा 'कालाजी' की इतने वर्षों से पूजा करने पर भी तुमको इस प्रभु का स्वरूप समझाने की तुमको गुलाम तरीके काम में लाने वालों ने कभी भी दरकार नहीं की। अब तो इन सब अन्नदाता एवं मोक्ष का वचन देने वालों को छोड़कर केवल केशरियानाथजी की सेवा में जाओ और उनके चेहरे को टकटकी लगाकर देखो। देखो, कि तुम्हारी अपेक्षा कितना प्रचण्ड शरीर उनका है और कितना अधिक बल उसमें उनने छिपा रखा है। इतना बल होने पर भी उनका चेहरा कितना शांत एवं प्रफुल्लित पुष्प जैसा है। वाहरी भय का और तुम्हारी पूजा तथा अक्षयतृतीया के दिवस तुमसे किया गया मनुष्य यज्ञ इन सबको देखने की यह कहाँ परवाह करता है ? उनकी आँखें तुम्हारी तरफ नहीं, किन्तु अपने अन्तरंग की तरफ ही हैं ! क्या तुमने उसी अन्तरंग में जाने की परवाह की है ? अरे ! वहाँ तो अगाध शक्ति का भंडार भरा हुआ है, वहाँ राजों- महाराजों के ही नहीं; परन्तु कुबेर के खजाने को भी लज्जित करनेवाला अपरिमित एवं अक्षय खजाना भरा पड़ा है। उसी खजाने को तुमको बताने के लिये ही तो कृपालु देव चुपचाप अहर्निश वहाँ बैठें हुए हैं -- वें प्रतीक्षा कर सकते हैं और एक न एक दिन तुम इनके पास जाओगे और उनका मौन उपदेश ग्रहण करोगे – ऐसा उनको विश्वास है।

मौन केशरियाजी के नाम से अथवा बोलते हुए राजा के नाम से यदि कोई तुमको अपने ही देशी भाइयों पर आक्रमण करने अथवा गोली मार देने के लिये कहे तो केशरिया के समान ही मौन ग्रहण कर दृढ़ निश्चय के साथ अक्रिय खड़े रहो और यदि उस पापी हुक्म को पालन न करने के कारण तुमको धमकाया जाय तो गुलामी के चिह्न रूप उस पोशाक और

बन्दूकों को जमीन पर पटक कर फिर अपने मूल स्थान पहाड़ों में ही चले जाओ तथा अपने पुराने चिर- परिचित तीर कमानों को फिर संभालो और इस जीवन से भी अधिक स्वतन्त्र तथा अच्छे आदमी बने रहो !

हे श्वेतांबर ! तुम्हारा हृदय कोमल था, केवल बुद्धि की कमी के कारण बुद्धि के ठेकेदार तुम्हारे दिलों पर अधिकार जमाकर, तुमको अपने पराक्रमों एवं लाभों का साधन बनाते जा रहे हैं। तुम लोग जो भूल सामान्य व्यवहार में भी नहीं करते, परन्तु करते हुए घृणा करते हो, वही भूल धर्म नाम की ओट में वे तुमसे करा सकते हैं। भाई-भाई में, जाति-जाति में, प्रजा-प्रजा में मारामारी या लड़ाई पैदा करनेवाले धर्मगगुरू, सेठ, वकील अथवा राजनीतिज्ञ को तुम अपने से सौ कोस दूर रखो। इनके बिना तुम्हारा संसार एवं धर्म और भी अधिक उत्तम रीति से चल सकेगा। वेश्या, जोंक, डाँस इत्यादि खून चूसनेवालों से यदि तुम मैत्री कर सकते हो तो ही लोहू चूसनेवाले उक्त प्रकार के दलाल आदमियों से दोस्ती करना। **यदि प्रीति ही करनी है तो जाओ किसी भी तीर्थंकर की प्रशान्त, गौरवपूर्ण, मौन मूर्ति के सामने** और उस ने गुणों का ध्यान करो।

क्या तुमने कभी भी यह जानने की कोशिश की है कि वैशाखसुदी ३ को 'अक्षय तृतीया' क्यों कहते है ? और उस दिन दूर-दूर के आदमी ऋषभदेव के सामने क्यों उपस्थित होते हैं ? उस दिन श्री ऋषभदेवजी ने एक वर्ष की 'तपस्या' करके आहारदान लिया था और देवों ने १०८ घड़े इक्षुरस का पान कराया था। १२ माह तक मननरूपी तप करने के कारण इस महापुरूप की जो १०८ वृत्तियाँ नाचती - कूदती थीं , वे शान्त पड़ गई थीं। इक्षुरस पीने से जैसी शान्ति प्यासे को होती है, ठीक वैसी ही तृप्ति इनके चित्त को तपश्चरण के कारण हुई थी।

राजा से रंक तक प्रत्येक संसारी मनुष्य वृत्तियों की विविध प्रवृत्तियों से निरन्तर क्षय का शिकार बनता रहता है; परन्तु लम्बे समय के मनन रूपी तप के कारण ज्यों ही चित्त में समता आ जाती है, तभी वह स्थिति 'अक्षय' कहलाती है, क्योंकि कोई भी मनुष्य या घटना उससमय उसमें 'क्षय' पैदा करने में समर्थ नहीं होती, ऐसा ही मनन एवं ऐसी चित्त- शांति की शिक्षा लेने के लिये प्रभु के पास जाने के बदले तुमको उस दिवस दौड़-धूप, गड़बड़, लड़ाई और संसारी हक्कों की मारामारी के काम में लाया जाता है। झूठे तप सिखानेवाले इन लोगों को छोड़ो, तुम्हारी वानरवृत्तियों को शराब पिलाकर और भी ज्यादा कुदानेवाले इन 'शराब के दुकानदारों को छोड़ो'। आज तक इन दलालों के सिखाने के अनुसार तुमने जो-जो उत्पात मचाये हैं, जो-जो झूठे तप किये हैं, उन सबका पश्चाताप करने के लिये एक दिवस जाओ, एकान्त पहाड़-पर और वहाँ पर तमाम दिन पिछली निर्बलताओं पर

मनन करके, पूर्व कृतियों को 'मिथ्या मे दुष्कृतं' – कहकर भस्म कर दो और उससमय से नई जिंदगी, मनन पूर्वक जिंदगी, स्वतन्त्र जिंदगी शुरु करो। स्वतन्त्र मनुष्य रूप से तुम पैदा हुए हो तो फिर क्यों किसी के गुलाम बनकर मनुष्यत्व गँवाते हो ? तुमको कषायों में डुबा देनेवाले क्या नरक में तुम्हारी रक्षा कर सकेंगे ? जेल या फाँसी बचा सकेंगे ? अब भी नया जीवन शुरु करो, पहाड़ी एकान्त में जाकर अक्षयतृतीया के दिन जो कुछ हुआ है ,उस पर विचार करो, पश्चाताप करो, अपने आप का तिरस्कार करो और इसतरह शुद्ध होकर चोट खाये हुओं के घर जाकर उनके प्रति सहानुभूति -- प्रेम दिखाओ और उनकी क्षमा एवं आशीष प्राप्त करो। पीछे महाराणा के पास क्षमा माँगो, फिर देखो कि अपने आप सारा ही वातावरण शान्त बनता है या नहीं ? मंदिर की मालिकी के विषय में तो खुद महाराणा ही न्याय कर लेंगे और यदि कदाचित् महाराणा भी भूल कर बैठें तो करने दो; परन्तु अतिशयवाले देव के अतिशय में यदि तुम्हें श्रद्धा हो तो देवताओं के कामों की तुम चिन्ता न करो -- यह उत्तम है।

भारत के श्वेताम्बर संघ के मुख्य-मुख्य सुज्ञ नेताओं का उदयपुर, पाटण एवं बम्बई के थोड़े से श्वेताम्बर भाइयों के दुष्कृत्य की तरफ विरोध एवं नाराजी बताना तथा दिगम्बर भाइयों के दुःख एवं अपमान में सहानुभूति एवं भाग लेने के प्रस्तावों को पास करना यही अपनी योग्यता एवं सुकोमल वृत्ति का परिचय करने का काम होगा।

जिस धर्म गुरू ने तारीख ४ से तारीख ६ मई १९२७ तक होनेवाली दुर्घर्ष घटना के पर्दे के पीछे नाटक खेला है, उनको श्वेताम्बर जैन जनता पाक्षिक तप करने और उसके बाद पवित्र मुनिवेष उतारने के लिये बाध्य करे कि जिससे भविष्य में तमाम धर्मग्रंथों के दूसरी दुनियाँ के ठेकेदार धर्मगुरुओं को धर्मोन्माद एवं जनता को मारामारी में प्रेरित करने की धृष्टता के पहले अपने कृत्य पर दो वार विचार करने को बाध्य होना पडे।

पाटण के जिस श्वेताम्बर धनाढ्य ने स्वधर्मियों के मुर्दों के समक्ष ही उत्सव करके दावत उड़ाने और आनन्द प्रदर्शित करने तक की अजैनता एवं अमानुषिकता प्रदर्शित की है उसके प्रायश्चित स्वरूप अपने धन का, जो इस पाप का कारण वना है, **अर्धांश बडौदा राज्य में दलित प्रजा के उद्धार में खर्च करने के लिये प्रसन्नतापूर्वक दे डाले -- ऐसा यह 'दरबार' हुक्म करता है।** इस फरमान की अवज्ञा होते ही विराट राजा का गुप्त दंड सारे बोझ (धन) को अदृश्य कर डालेगा।

बम्बई के जौहरी ने जो अयोग्य कार्य किया है, उसके प्रायश्चित स्वरूप अपनी पुँजी के चतुर्थांश को 'राजस्थान सेवा संघ' को अर्पण कर देना चाहिये कि जिससे सेवासंघों द्वारा करने योग्य कार्यों में लक्ष्मीदासों को हस्तक्षेप करने की जरूरत न रहे।

तमाम धर्मवालों को मंदिर, मूर्ति, शास्त्र, मंत्र इत्यादि 'साधना' में असाधारण शक्ति अथवा चमत्कार (अतिशय) मान लेना मौकूफ(निषिद्ध) रखना चाहिये कि जिससे भविष्य में भयंकर प्रतिकार (**Reaction**) होने का अवसर ही न आने पावे।

मृत पुरुषों के सगे- सम्बंधियों एवं घायलों को एक नुकसान के ऊपर वैरवृत्ति बाँधने रूप दूसरा नुकसान उत्पन्न नहीं करना चाहिये और उनकी आपत्ति अखिल जनता को यावन्मात्र 'धर्मोन्मादों' के प्रति घृणा पैदा कराने का कारण हुई है -- ऐसा समझकर वे सन्तोष करें।

उदयपुर के राजकुमार ने (जो कि प्रजा का संरक्षक होने का दावा करते हैं) प्रजा के एक भाग की रक्षा के लिये खास समय पर की गई प्रार्थना पर भी उचित सहायता नहीं दी और न रक्षा ही की, इसलिये वे अपनी निजी सम्पत्ति में से मृत पुरुषों के कुटुम्बियों एवं घायलों को योग्य बदला (**Compensation**) देवें और ऐसा न करने से वे 'छत्रभंग' की भविष्यवाणी को स्वयं ही बुलाने के कारण हो जायेंगे।

उदयपुर स्टेट आध्यात्मिक परिपाटी पर चलनेवाली प्राचीन संस्था तरीके अपने आपको सिद्ध नहीं कर सका; इतना ही नहीं, परन्तु 'हक्क एवं कर्तव्य' (**Right & Duty**) के सिद्धान्त पर चलते हुए ब्रिटिश राज्य का भी अनुकरण नहीं कर सकी। राजा, अमलदार एवं प्रजा -- इन तीनों ही से 'स्टेट' बनती है और उदयपुर स्टेट के ये तीनों अंग अपना 'हक्क एवं कर्तव्य' समझने में ही बिलकुल पीछे हैं -- ऐसा केशरियाजी तीर्थ के पूरे इतिहास से सिद्ध हो जाता है। प्रजा के जान, माल एवं श्रद्धाओं (**Convictions**) की जो राज्य रक्षा नहीं कर सकता , उसे 'राज्य' भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे तो एक बलवान डाकू भी बलहीन लोक-समूह से कर वसूल कर उन पर अपना स्वामित्व जमा सकता है; परन्तु इससे उसे 'स्टेट' या 'राज्य' नहीं कहा जा सकता। राजा की आज्ञा भंग करनेवाले बदमाशों के विरुद्ध रक्षा- प्राप्ति के लिये कानून को माननेवाला पक्ष खुद राजा एवं राज्य-कर्मचारियों के पास अर्ज करे और तिस पर भी उनकी हत्या की जाय तो उस राज्य-कर्मचारियों की कर्तव्यबुद्धि एवं कर्तव्य पालन शक्ति की फिर क्या तारीफ की जाय ?

प्रजागण अपने एक अंग को कुटते-पिटते देखने या जानने के बाद भी 'स्टेट' के अंग-स्वरूप राजा एवं अमलदारों से इस अन्याय एवं अत्याचार का कारण भी पूछ सकने का अपना 'हक्क' न समझे और वफादारी के कल्पित 'कर्तव्य' से ही चिपटी रहे तो ऐसी जनता को मुश्किल से 'प्रजा' कहा जा सकता है। अमलदार वर्ग हिन्दु और उसका भी अधिकांश तो खुद जैन होने एवं इसलिये उनके धुलेव में बारम्बार जाने के कारण मंदिर की मूर्तियों की बनावट एवं शिलालेखों से पूर्ण परिचित होने पर भी इस मन्दिर को श्वेतांबरों की कमेटी

के हाथों में सौंपते हुए इस 'स्टेट' को क्या मनुष्यत्व से च्युत नहीं होना पड़ा ? क्या १५० फौजियों का लश्कर किसी भी धर्म के अथवा इसी मंदिर में पहिले कभी भेजा गया था ? और ऐसा होने पर भी इस बात की गन्ध (Scent) ज्यों ही दिगम्बरों को लगी , त्यों ही राजा, कुमार एवं हृदयहीन अमलदारों से मिलकर रक्षा करने की प्रार्थना की गई, उससमय इन तीनों में से एक ने तो अपने कर्तव्य पालन करने के बदले इस खबर को लानेवाले को ही अपराधी बताकर क्या धमकी न दी थी ?

प्रजा के पास से (Un-conditional devotion) कर्तव्य रूप से माँगने का क्या यह राजा एवं उसके अमलदार दावा नहीं करते हैं ? तो क्या प्रजा को यह हक्क नहीं है कि अपना लेना (कर्ज) Unconditionally (बिना शर्त) के ही वसूल करने का आग्रह कर सके ? महाराणा एवं कुमार के बीच में भले ही कैसा ही मत - विरोध क्यों न हो, श्वेतांबरों के वसीले महाराणा को चाहे कितने ही क्यों न अधिक खटकते हों, खून सिद्ध हो जाने से राजा या कुमार को चाहे जो असर हो, उन सबसे लेनदार प्रजा को क्या सरोकार ? कर्ज को कड़क रीति से वसूल करनेवाले स्वयं अपना ऋण चुकाते समय अपने निजी कारणों का रोना रोवें तो उसको सुनने के लिये लेनदार कभी भी बाध्य नहीं है। डाक्टरी जाँच यद्यपि तारीख ५ को ही पूरी हो गई थी , फिर भी मई के अन्त तक उस रिपोर्ट की नकल देने की प्रार्थना पर कान भी नहीं दिया गया, क्यप्रगा यह बात स्टेट के (Guilty Conscience) का अव्यर्थ प्रमाण नहीं है ? ऐसी त्रासदायक घटना की सरकारी जाँच की रिपोर्टें क्यों नहीं प्रगट की जाती है ? और दोनों रिपोर्टें को दबाये रखकर 'दबकर स्वाँस रुक जाने के कारण मर गये', ऐसा जवाब देनेवाले अमलदार और दूसरे क्या मनुष्य समाज के अन्दर रहने लायक हैं ? विराटराज के दरबार में दोनों डॉक्टरों ने जिन ४ मुर्दों की जाँच की थी और इन ४ के सिवाय अन्य किसी को किसी भी प्रकार की चोट न पहुँचने का श्वेतांबर सॉलीसिटर तथा जौहरी गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते रहे हैं, उनके उपरांत दूसरे मुर्दों एवं इनसे भी बहुत अधिक घायलों की ब्रिटिश डाक्टरों की जाँच की रिपोर्ट यदि इनके सामने रक्खी जायगी तो दुनिया में इन श्वेतांबरों को अपना मुँह दिखाना भी मुश्किल हो जायगा।

यह रिपोर्ट कहती है और एक नक्कारा भी जितने जोर से न कह सके उससे भी ज्यादा जोर से कहती है कि ४४ घायलों में से एक को Blunt Weapon से दाहिनी कोनी पर २ इंच लम्बा और १.५ इंच चौडा घाव हुआ है। इसी तरह एक दूसरे घायल के दाहिनी कोनी पर २ x १ का घाव हुवा है और ४ x १ का घाव दाहिने कंधे पर हुआ है। एक तीसरे घायल की पीठ पर दोनों कंधों के बीच की हड्डी के बीच में ६ इंच लंबा और १ इंच चौडा घाव लगा है। चौथे घायल के पेट पर १.५ x १ तथा पीठपर ४ x ४ दाहिने कंधे की हड्डी के नीचे ४ x ३

का घाव हुआ है। पाँचवे घायल के माथे पर १.५ x १/ २ का घाव लगा है। छट्ठे घायल के दाहिने पैर की गाँठ पर २ x २ का तथा पीठ पर दाहिने कंधे के नीचे ५ x ४ का घाव लगा है। सातवें घायल के माथे एवं गाल पर, आठवें की छाती पर, नौवें के जबडे (Jaw) में, दसवें की कमर एवं जाँघ पर, ग्यारहवे के पसलियों और गर्दन पर घाव लगे हैं। इसी तरह बीसियों घायलों को शरीर के विविध अंगों पर भगवान् ऋषभदेव के समक्ष में ही तरह-तरह की चोटों का प्रसाद मिला है ! रिपोर्ट में उल्लिखित घायलों एवं मृतकों की उमर १५ से ३५ वर्ष तक की है। इसलिए कोई भी यह नहीं कह सकता है कि वे बूढे थे और निर्बल होने से मर गये होंगे। इन सबमें से अति रोमांचकारी रिपोर्ट तो एक स्त्रिकी है जो कि ब्राह्मणी है और जो एक जैन मंदिर में जैनेतरों के देवों को भी घुसा देने का क्या परिणाम आना शक्य है उसको मौन, किन्तु स्पष्ट रूप से बताती है।

इस बाई का कसूर (?) केवल इतना ही था कि उससे घर- मालिकों पर ही मेहमानों द्वारा इतना अमानुषिक अत्याचार होते देखा नहींगया और जब उनकी एक के पीछे एक लाशें गिरने लगीं ,उससमय उसने अत्याचारियों से ईश्वर के लिये रुक जाने के लिये प्रार्थना करने की हिम्मत की थी, हिम्मत करने की उस बिचारी को पूरी-पूरी कीमत भरनी पडी। उसको एक-दो नहीं ,किंतु २९ घाव लगे हैं, जो कि शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर हैं। ३५ वर्ष की यह पूर्ण युवती ब्राह्मणी पहाड़ी प्रदेश की होने से तत्काल तो मर नहीं सकी, परन्तु कई दिनों तक तड़पने के बाद मर गई। अतः तारीख ४ को जो लोग तत्काल ही मर गये थे, उन पर उनके प्राण को शरीर से अलग करने के लिये कितने-कितने घाव पड़े होंगे, कैसी विकट मार उन पर पड़ी होगी -- यह सब- कुछ आसानी से ही अनुमान किया जा सकता है। चारों मुर्दाओं के चेहरे की भयंकरता ही उनके ऊपर होनेवाले नारकीय आक्रमणों का पता दे देती है।

शैतानी लश्कर को उसके मुँह पर ही शैतान कहने की हिम्मत करनेवाली जैनेतर स्त्री यदि जीती रह जाती तो हत्याकांड का प्रमाण हो जाती – यह बात खूनी लोग बखूबी समझते थे, यह बात उस बाई के शरीर पर लगे हुये २९ घावों से भलीप्रकार सिद्ध हो जाती है; परन्तु मनुष्यत्व के एक उत्तम उदाहरण रूप से यह बाई जीवित रहकर जो कुछ कह सकती उसकी अपेक्षा वह मरकर ज्यादा जोर से बोल सकी है। जिस नर-पिशाचिता को वह रोक नहीं सकी, उस नर- पिशाचिता को छुपाने के और भी पिशाचिता - पूर्ण प्रयासों की सफलता को तो वह अवश्य ही रोक सकी है और सो भी मरकर ही !

धुलेव के रहनेवाले को इस देवी का और दिगम्बरों के सत्याग्रही युवक पं. गिरधारीलालजी का स्मारक खड़े करके वीर पूजा की योग्यता को सिद्ध करने के लिये

मैदान में आना चाहिये। तारीख ५ को (दूसरे दिन) भी जाँच किये २९ घायलों की दूसरी रिपोर्ट भी 'कुचलकर श्वाँस रुक जाने से मरे हुए (?) इन ४ व्यक्तियों को छोडकर और किसी को कैसी भी चोट नहीं लगी है -- यह रिपोर्ट डाक्टरों, मजिस्ट्रेट, अमलदारों एवं पुलिस से मिलकर तारीख ८ को प्रगट करनेवाले श्वेतांबर सॉलीसिटर मोतीचन्द और उसका बम्बई निवासी जौहरी साथी कितने अक्षम्य हद तक इरादापूर्वक झूठ बोलनेवाले हैं – यह बात सिद्ध करने के लिये काफी से ज्यादा है। एक रुपयों की थैलीवाला और एक कानूनी मगजवाला श्वेतांबर मिलकर और सबकुछ भले ही कर सकते हों; परन्तु भारतीय जनता की न्याय-विषयक बुद्धि को खरीद या भ्रष्ट तो नहीं कर सकते यह बात उन दोनों को जरूर ही समझ लेनी चाहिये।

जो स्टेट अपने अमलदार के सामने ही दिन - दहाडे ७ मरे हुए एवं १५० घायल मनुष्यों पर पर्दा डाल सकती है, इसको 'स्टेट' कहने की बेअदबी कोई मनुष्य मुश्किल से कर सकता है। परन्तु श्वेतांबर न्याय एवं नीति के नियम कुछ दूसरे ही प्रकार के हैं। वे तो स्वयं अपने भगवान को ही उसके मूलरूप में रहने देने के लिए तैयार नहीं हैं। उसके ऊपर भी अपने मनपसंद श्रृंगार कराने और इसतरह से अपने अभीष्ट रूप में बदल डालने में वे चूके नहीं हैं। (नहीं तो नग्न मूर्ति को भी श्रृंगार करने की इन्हें क्या जरूरत थी ?) तो फिर स्टेट ने जो किया है उसे ढाँकने में, और नहीं किया है उसको किया हुआ कहने में वे क्यों चूकेंगे ? पालीताणा के विरूद्ध में वे लोग ब्रिटिश सरकार के पास दौड़ते गये, तब सबसे प्रथम तो उस सत्ता ने बीच में पड़ने की मनाई की थी तो क्या उससमय भी ये लोग ब्रिटिश सत्ता पर आरोप करने में चूके थे ? पीछे से उस सत्ता ने इस केस को हाथ में लिया और फैसला कर दिया, उस-समय भी क्या ये लोग उस पर भी आरोप करने में चूके थे ? ढँकना और श्रृंगार करना तो इन लोगों ने बहुत पहिले से ही सीख लिया है।

पालीताणा में स्टेट ने या वाटसन साहब ने किसी जैन के शरीर पर चोट नहीं पहुँचाई थी, तिस पर भी काली झंडियाँ और ऊपरा-ऊपरी शोक प्रदर्शित करनेवाले अनेक जुलूस इनने निकाले थे, कोलाहल मचाने के लिये जगह-जगह मीटिंगें, पत्रों में लेख लिख-लिख कर भारी आन्दोलन खड़ा कर दिया था; परन्तु उदयपुर मंदिर का हत्याकांड तो इनकी दृष्टि में मानों कोई चीज ही नहीं है, यही नहीं बल्कि वह प्रसंग तो इनके लिये दावत उड़ाने और आनंद करने का था। उस आनन्द को प्रगट करनेवाले भी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है, किन्तु श्वेताम्बर समाज का एक नेता है। मरनेवालों पर **Coward** होने का आरोप करने में ही आनंद माननेवाला मोतीचंद भी श्वेताम्बर कॉन्फरेन्स का पदाधिकारी है। बम्बई से जाँच के लिये जानेवाले दिगम्बर डेप्युटेशन को रोक रखनेवाला कोई व्यक्ति नहीं,

परन्तु खुद श्वेताम्बर कॉन्फरेन्स ऑफिस ही है कि जिसका अमलदार उससमय धुलेव एवं उदयपुर में जाँच (?) कर रहा था। कौमी भावना (**mentality**) का चित्र देखने के लिये इससे ज्यादा और क्या जानने की जरूरत है ? यावन्मात्र धर्म प्रारम्भ में तो शुभाशय से ही चलाये गये थे, परन्तु पीछे से शुभाशय रहित मनुष्यों के हाथों में आ जाने से उन धर्मों का स्वरूप भी पलट कर विषमय बन गया और यह विष जनता के जीवन के लिये भयरूप हो गया है।

ऐसे धर्मोधों के हाथ में खिलौना बन जाना जो स्टेट पसंद कर सकती है, वह स्टेट उसी क्षण से 'स्टेट' नहीं । रही तारीख ४ के पहिले 'मैंने आज्ञा दी नहीं है' ऐसा कहनेवाला राजकुमार तारीख ४ और ६ इन दोनों ही तारीखों को उदयपुर में रहने पर भी तारीख ४ को होनेवाले रोमांचकारी हत्याकांड को रोक न सके और तारीख ६ को एक परदेशी की दखलगिरी को न रोक सके तो इसको गद्दी के लायक कौन और किस तरह मान सकेगा ? इस प्रकार से 'स्टेट' के सब अंगों में **Governing Capacity** का अभाव हो जाने का सिद्ध हो चुकने के कारण ब्रिटिश सत्ता को अब अपना कर्तव्य बजाने के लिए मैदान में आना चाहिये। । ब्रिटिश सरकार ने जन-साधारण प्रजा के कोश में से हजारों- लाखों का खर्च करके हिन्दु एवं मुस्लिमों के प्राचीन स्थानों की मरम्मत कराई है, तिसपर भी उन पर अपनी अथवा पब्लिक सत्ता नहीं ठोंक बिठाई तो दूसरी तरफ ऋषभदेव पर तो प्रारम्भ से लगातार ६५० वर्षों तक दिगम्बरों का अटल स्वामित्व चले आने के बाद भी उनके इस तीर्थ पर केवल एक बार ध्वजादंड चढ़ाने से अथवा उसमें एक नक्कारखाना बनवाकर उसकी 'पाटली' लगा देने से पूरे बने बनाये मंदिर पर अपना हक्क और उसके बाद मानो तमाम स्टेट के श्वेतांबर ही मालिक हैं, उस तरह राज्य के लश्कर की मदद से मंदिर में उसके सच्चे मालिकों पर ही प्राणघाती आक्रमण बडी आसानी से किया जा रहा है -- इतना ही नहीं, 'कुछ हुआ ही नहीं है'– ऐसा जबर्दस्ती मनाने के उनके प्रयत्न का भंडाफोड करनेवाले पर दो कौमों को लड़ाने का, घूस खाने का अथवा ऐसा ही कोई दूसरा आरोप लगाया जा रहा है।

जिन लोगों को अपनी हठ बनाये रखने के लिये इतनी उद्दाम स्वतंत्रता चाहिये, वे संसार की कौनसी शांतिप्रिय प्रजा के साथ रह सकेंगे ? कौनसी ऐसी निःसत्य प्रजा है, जो इन लोगों की इस डायरशाही को चुपचाप सहन कर सकती है ? हां ! केवल उदयपुर की प्रजा उसे सहन कर सकती है, क्योंकि उसकी **जीभ भी श्वेतांबरों के यहाँ गिरवी रखी जा चुकी है।** इसीलिये तो ब्रिटिश सत्ता का कर्तव्य है कि इन सब पराधीनताओं से त्रस्त उदयपुर की प्रजाका उद्धार करे और इस मंदिर के विषय मे हुक्म दे कि तारीख ४ से ६ मई १९२७ तक की मूर्तियों एवं शिखर पर जो कुछ भी फेरफार हुआ है, उसे फौरन ही दूर

किया जावे तथा मंदिर का स्वामित्व उसकी तमाम मालमिलकियत के साथ दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को सौंप दिया जाय।

इतिहासकार ओझाजी के लिखे अनुसार जो-जो दिगम्बर जैनेतर मूर्तियों को इस मंदिर में पीछे घुसा दिया गया है, उन सबको तारीख ४ को निर्दोष ब्राह्मणी की हत्या के स्मारक स्वरूप उन-उन के मंदिरों में विराजमान करा दिया जाय, जिससे फिर कभी झगड़ा होने की आंशका न रहे और न कभी किसी भी सम्प्रदाय के आदर्श (**Ideal**) एवं पूजन-विधि को भ्रष्ट होने का भय ही रहे। ऐसा होने से श्वेतांबरों को भी वस्तुतः कोई भी धार्मिक क्षति या असुविधा नहीं होगी। श्वेताम्बरों का ऋषभदेव तीर्थ पालीताना स्टेट में है ही और वहाँ की यात्रा करने में इनको किसी ने रोका भी नहीं है, फिर भी ये वहाँ नहीं जाना चाहते ! क्यों ? उदयपुर स्टेट के अंतर्गत दूसरे किसी का बना बनाया तीर्थ यदि राज्य के अंधेरे के कारण मुफ्त में प्राप्त किया जा सकता हो तो फिर पालीताना के तीर्थ के लिये प्रतिवर्ष १ लाख रूपया देने की जरूरत न रहे ! अस्तु ;

परन्तु श्वेतांबर लोग रुपयों की अपेक्षा अपने भगवान की क्यों कम परवाह करते हैं -- यह उनसे पूछने की जरूरत नहीं है; परन्तु एक बात तो वे ही स्वयं स्पष्टरूप से कहते हैं कि वे ऋषभदेव के बिना भी अपना काम चला सकते हैं और पिछले अनेक महिनों से अपना काम चला भी रहे हैं तो फिर उदयपुर राज्यान्तर्गत ऋषभदेव तीर्थ में भाई - चारे के हक्क से भी यदि श्वेतांबरों को प्रविष्ट नहीं भी होने दिया जाय तो भी इनकी धार्मिक भावना को आघात पहुँचने के भय का प्रश्न ही नहीं रहता। दूसरा कारण यह भी है कि कुछ दिन पहिले से उनने धुलेव के पास ही 'करेडा पार्श्वनाथ' नाम के एक नवीन तीर्थ की स्थापना की है, जिसमें गत अप्रैल मास में ही भारी धूमधाम हो चुकी है और उससमय वहाँ ८-१० हजार श्वेतांबर उपस्थित थे। इस तीर्थ के होने के बाद तो श्वेतांबरों को धुलेव के मंदिर की बिलकुल जरूरत रहती ही नहीं है। मालिकी का प्रश्न, पडौसी अथवा सहधर्मी कौमें होने से पूजन के हक्क का प्रश्न, एवं आवश्यकता सम्बन्धी प्रश्न - ये तीनों प्रश्न एक यही उत्तर देते हैं कि धुलेव में तो श्वेतांबरों का अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

ऋषभदेव का आदेश तो आज से ६५० वर्ष पहिले ही मौन शब्दो में हो चुका है और मंदिर की छत में 'छत्रभंग' की सूचना रूप से अंकित भी किया जा चुका है। जिस दिन ब्रिटिश सत्ता धुलेव का न्याय अपने हाथों में लेगी, उस दिन उदयपुर की सत्ताओं की ५ की संख्या उलट जायगी 'छत्रभंग' की सैकडों वर्षों पुरानी भविष्यवाणी स्थूलरूप (**Materialization**) लेने लगेगी।

केवल महाराणा एवं कुमार की दूरदर्शिता से ही उस प्रसंग को पास आनेसे रोका जा सकता है और दूसरा कोई कुछ नहीं कर सकता। यदि वे अब भी इन्साफ करें और श्वेतांबर वकीलों से डरकर इन्साफ न देने के बदले समस्त प्रजावर्ग की भविष्य रक्षा के लिये श्वेतांबर वकीलों को जड-मूल से उखाडकर न्याय के देवता को आदर देवें, तभी छत्र की रक्षा हो सकती अन्यथा नहीं।

१४. लेखक का भारतीय जनता को शांतियज्ञ के लिए आह्वान

अब तो वह समय आ पहुँचा है कि भारतीय प्रजा को या तो धर्मोन्माद को छोडकर विश्वधर्मप्रेमी अथवा धर्मपंथों को ही 'शुद्ध मनुष्य' बन जाने के लिये तैयार होना पड़ेगा। नहीं तो यह धर्मोन्माद ही देश की और उसके साथ ही साथ तमाम धर्मों का नाश भी कर देगा। आज के भारतीय धर्मों ने प्रजा को (१) परस्पर लड़ाई, मारने एवं गाली देने (२) व्यर्थ क्रियाकांडों, त्यौहारों, एवं गुरुओं के लिये प्रतिवर्ष होनेवाला करोड़ों का अपव्यय करने तथा (३) राजकीय एवं आध्यात्मिक प्रगति के लिये आवश्यक बुद्धि की निर्मलता, तीव्रता एवं इच्छाशक्ति की हानि पहुँचाने के ही परिणामस्वरूप पैदा किये हैं। फिर भी लकीर के फकीर लोग इन विषमय फलों (परिणामों) और उन फलों को पैदा करनेवाले वृक्षों को छोड़ने या सुधारने के लिए तैयार नहीं हैं - यह बड़े दुर्भाग्य की बात है।

पाँच वर्ष की उम्र से लेकर ५० वर्ष की उम्र तक मूर्तिपूजा एवं मूर्ति तथा मंदिरों के निर्वाह के लिये प्रतिवर्ष लाखों रुपया एवं अतुल समय तथा शक्ति का व्यय करनवाले करोडों स्त्री-पुरुषों से क्या दस-पाँच भी छाती ठोंककर यह कह सकेंगे कि ऐसा करने से उनमें अमुक गुण या विशेषता प्रगट हुई है अथवा पाँच ज्ञानों में अमुक ज्ञान अथवा कोई किसी प्रकार की खास लब्धि पैदा हुई है ? मूर्ति को नहीं पूजने वाले परन्तु शास्त्रों, स्थानों को एवं गुरुओं को ही ५० वर्षों तक मानने और समय, शक्ति एवं द्रव्य का अंधाधुंध खर्च करनेवाले लाखों मनुष्यों में से क्या २-४ भी आगे आकर दावे के साथ यह कह सकेंगे कि उनमें पूर्ण चैतन्य अथवा मनुष्यत्व प्रगट हो चुका है ? तो फिर क्या ये सब बातें निःस्सार सिद्ध नहीं हो जाती ? जिन लोगों से केवल एक ही वर्ष के अंत में अपने व्यापार का नफा-नुकसान का हिसाब निकाले बिना नहीं रहा जाता और जो लोग ५-७ वर्ष तक लगातार नुकसान पहुँचते रहने पर उस धन्धे को छोड़े बिना नहीं रह सकते, वे ही लोग धर्म एवं धर्मायतनों के विषय में बीसियों वर्षों तक कैसा भी लाभ न होने पर भी (प्रत्युत और भी हानि होते देखकर) धर्म की पूँछ छोड़ने को तैयार नहीं होते, इससे क्या यह सिद्ध नहीं हो जाता कि भारतीय जनता की चेतना एवं ज्ञान शक्तियों पर भयंकर जादू का बंधन पड़ा हुआ है ?

जो चैतन्य को प्रगट एवं विकसित कर सकता है वही धर्म है - शेष सब कुछ मात्र पाखंड है, मनुष्य जाति का खून चूसनेवाली शैतानों की चालबाजियाँ हैं। जहाँ चैतन्य प्रगट होता है, वहाँ बुद्धि भी दासी बनकर स्वयं चली आती है। जैनशास्त्रों अथवा वेदों को न पढ सकने वाले तथा गुरु के उपदेशों का लाभ भी न पा सकनेवाले सैकड़ों व्यक्ति

जगत के महान ज्ञानियों की श्रेणी में जा सके हैं। इस बात के बीसियों प्रमाण तमाम धर्मशास्त्रों मे जगह-जगह मिल जाते हैं। आधुनिक जगत के गुरुओं एवं नेताओं के तमाम कथनों का यदि अक्षरशः पालन भी किया जाय तो भी जनता की मुक्ति संभव नहीं है; क्योंकि वे लोग स्वयं की मुक्ति का असली स्वरूप अभी तक समझ नहीं पाये हैं। परन्तु यदि जनता ज्यादा नहीं तो कुल ५ वर्षो के लिये यह निश्चय कर ले कि किसी भी गुरु अथवा नेता के आदेश से नहीं चलना है तो जनता की पराधीन बनी हुई बुद्धि स्वयं ही निर्मूल हो जायगी - अपनी मुक्ति ढूढँने के बराबर तो जरूर ही निर्मूल होगी और पीछे निर्मूल हुई बुद्धि शुद्ध मार्ग में गति प्रेरित करके मुक्ति प्राप्त कराने में समर्थ होगी और सो भी इसी जन्म में।

ब्रह्मदेश के एक भाग में अब भी एक ऐसी प्राचीन जाति विद्यमान है कि जिसको बौद्ध या अन्य किसी भी धर्म की दीक्षा देने के सब प्रयास व्यर्थ गये। आधुनिक सभ्यता की गंध तक भी उसको नहीं पहुँची है, फिर भी उस जाति के लोग शरीर में मजबूत, अहिंसक, मितभाषी, संग्रह करने की आदत से बिलकुल अज्ञात, झूठ शब्द से अपरिचित और सुन्दर से सुन्दर स्त्री पर भी मोहित न होने के स्वभाववाले होते हैं। मनुष्य स्वभाव एवं मूल प्रकृतियों के आदर्श उदाहरण स्वरूप इन मनुष्यों को देखने के बाद इस बीसवी सदी के धर्म, धर्मगुरु, धर्मायतन, नेता एवं सभ्यता (**Civilization**) की ध्वजाओं के नीचे बडे रोब एवं ऐंठ के साथ चलनेवाले वकीलों, जजों, मजिस्ट्रेटों, पुलिस अफसरों को ऐसा मालूम पडेगा कि वस्तुतः वे मनुष्य समाज के लिये तो किसी भी प्रकार से लाभकारक सिद्ध नहीं हो सके हैं।

इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि 'धर्म' एवं 'सरकार' नामक योजनायें अपने मूल स्वरूप (**initself**) में ही अनिष्ट हैं। नहीं नहीं, इसका असली आशय यही है कि जगत में जो कुछ भी देखा जाता है वह सब है तो इष्ट, परन्तु उसको अनिष्ट बना डाला गया है। प्रत्येक वस्तु समष्टि का एक अंग है और अंग रूप से ही उसे जीवित रहने का हक्क है। इस बात को भूलकर सब बातों में ऊटपटाँग प्रवेश करनेवाली बुद्धि केवल वेश्या ही बन जाती है और आज वैसी बन भी गई है। यही कारण है कि तमाम योजनाऐं 'मनुष्य समाज' को भ्रष्ट करने की कारण बन गई हैं। बुद्धिवाद, नीतिवाद, सॉइन्स इनमें से कोई एक भी तत्त्व न तो एकांत इष्ट ही है और न एकांत अनिष्ट, परन्तु एक दूसरे के सम्बन्ध को कायम रखते हुए प्रत्येक तत्त्व आगे बढे तो स्वयं अपने आपको एवं दूसरे तीनों तत्त्वों को भी लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। किंतु दूसरे तीन तत्त्वों की परवाह न करके कोई चौथा तत्त्व केवल अपना ही राज्य जमावे तो उन सबको ही अंधाधुंधी में होकर घसिटना पड़ेगा और वैसा ही आजकल हो रहा है। हिंदु एवं जैनधर्म के प्रत्येक ग्रंथ की हस्तलिखित नकल कराने एवं छपाने तथा टीका एवं टीकाओं के ऊपर भी भाषा कराने में पीछे से उनको लिखाने एवं छपाने में आजतक

करोडों रुपया खर्च हुआ है; परन्तु इन्हीं शास्त्रों में से विज्ञान, मानस शास्त्र, एवं तत्वज्ञान सम्बन्धी गुप्त सत्यों को अलग करके उनको आधुनिक श्रेष्ठ वैज्ञानिकों, मानसशास्त्रियों एवं तत्ववेत्ताओं के समक्ष उपस्थित करके ये विद्या जहाँ रुकी पड़ी है उनसे भी आगे जाने का मार्ग निकालने की तरफ क्या किसी का ध्यान आकृष्ट हुआ है ? मानव जीवन के विकास –कार्य में इन सूत्रों को सहायक कैसे बनाया जाय – यह प्रश्न क्या आज तक किसी को सूझा है ? शास्त्रों, गुरुओं एवं धर्मों को सिर पर लादकर उनके बोझ से दब कर मरने की अपेक्षा अणु-अणु तक विकास के साधन स्वरुप इनसे सेवा लेने की तरफ क्या किसी का ध्यान गया है ? दूध के घड़े को सिर पर लेकर गली-गली में फिरनेवाला भले ही स्वयं को दुग्ध देव का भक्त मानकर खुश हुआ करे, परन्तु जो मनुष्य उस दूध को पीकर व्यायाम द्वारा हजमकर अपने शरीर को पुष्ट बनाता है तो वह उस भक्तराज-मनुष्य को मूर्ख ही समझेगा। इतना ही नहीं बल्कि उस मनुष्य के शरीर को मुँह से 'मूर्ख' कहने तक की तकलीफ लेकर इस बात को इतना महत्व देने की अपेक्षा भी न करेगा।

जो कुछ आज तक कहा अथवा लिखा गया है, वह सब मनुष्यता प्राप्ति के लिये साधनरूप ही है। उसमें से कुछ हिस्सा व्यवहार्य एवं कुछ भाग अव्यवहार्य भी होता है। कौनसा और कितना हिस्सा व्यवहार्य है और कितना नहीं, उसका निर्णय तो मनुष्य को ही करना पड़ेगा। साधन का यदि एक बार उपयोग न भी किया जाय तो इससे उल्लेख्य क्षति नहीं है। बहुत होगा तो जो लाभ होनेवाला था सो न होगा; परन्तु जब उसका उपयोग करना हो तब तो इस साधन पर अपना उस दिन तक का **अनुभव** तथा **तर्कशक्ति** इन दोनों का परस्पर में संघर्षण करना ही पडेगा। यहाँ यह याद रखना चाहिये कि आत्म-विकास शास्त्रों या सूत्रों के पत्रों में चिपटा हुआ कोई तत्त्व नहीं है; परन्तु उपरोक्त संघर्षण में से पैदा होनेवाली 'गर्मी' एंव 'कसरत' का परिणाम ही 'विकास' है। जो शास्त्र अनुभव एवं तर्क इन तीनों के संघर्षण द्वारा जीवित रहने की अपेक्षा नहीं करते है, **वे केवल भारवाही पशु ही हैं।** 'मानव' हीन होने से 'देव' अथवा दिव्य शक्ति के अधिकारी होने के लिये तो वे योग्य हो ही कैसे सकते हैं ?

यह 'संघर्षण' ही मनुष्य जीवन की सबसे पहली जरूरत होने से मनुष्य को 'क्षत्रिय' तो बनना ही पडता है। यह क्रिया विज्ञान के सिद्धान्तों की गुलामी स्वीकार करने से नहीं, किन्तु स्वयं **Scientifically** (वैज्ञानिक पद्धति) से करने से मनुष्य को वैज्ञानिक भी होना ही पड़ेगा। इस क्रिया में शास्त्रों एवं बुद्धि का अनिवार्य उपयोग होने के कारण उसको शास्त्रवेत्ता एवं नैयायिक अर्थात् बाह्मण भी बनना ही पड़ेगा। इस मंथन में से हितावह को ग्रहण करने और अनावश्यक को चुपचाप छोड़ देने की आवश्यकता होने से उसको

नफा-नुकसान का 'वैश्य' भी बनना पड़ेगा और बारीक से बारीक बात पर भी उसे शूद्र की सी भक्ति से जाँच करने की आवश्यकता के कारण वही आदमी साथ ही साथ 'शुद्ध' भी है ही। इतना होने पर वह मनुष्य किसी के ऊपर कैसा भी 'उपकार' नहीं करता है, क्योंकि उसके द्वारा तो वह अपने अन्तरंग की एक आवश्यकता की पूर्ति करता है। यदि वह दूसरों द्वारा पूजे जाने की इच्छा करता है तो वह अपने में विकास-क्रिया होने की अयोग्यता का अव्यर्थ प्रमाण देता है।

ऐसा एक 'पूरा मनुष्य' पैदा करने के बदले -- आज की अपेक्षा भविष्य में और भी प्रगतिपंथ का पथिक बनाने के बदले आधुनिक दुनिय के 'धर्म' एवं 'सभ्यता' नामक दोनों योजनाओं ने मनुष्य को और भी बंधन-ग्रस्त बना डाला है, बंधन-ग्रस्त बनाकर सड़ाया है और सड़ाकर विष बना डाला है। इन विषरूप मनुष्यों को ही 'धर्म' एवं 'सभ्यता' के सिपाही एवं अमलदार बनाकर जगत का वातावरण इतना तो अधिक विपमय बना दिया है कि यदि आज किसी को सच्ची सदिच्छा से - सच्ची जिज्ञासा से अपना विकास करने की इच्छा हो तो भी आसपास का विषमय वातावरण उसको पद-पद पर विघ्नरूप ही सिद्ध होगा। धुलेव जैसा आक्रमण किस समय और किस दिशा में से नहीं हो सकेगा -- ऐसा किसी को निश्चय नहीं है। सड़ी हुई समाज-रचना, सड़ी हुई न्याय-पद्धति, सड़ी हुई धर्म संस्थाएँ, सड़ा हुआ जाहिर जीवन, सड़ा हुआ लोकमत, 'उच्च-नीच' विषयक सड़ी हुई लोकभावना, सड़ी हुई व्यापार-पद्धति, 'साख' एवं 'इज्जत' सम्बन्धी सड़ी हुई व्याख्या इत्यादि सब सड़े हुए तत्त्वों में से कौनसा कब आक्रमण कर नियमानुसार आरम्भ किये हुए दीर्घकाल के विकासक्रम में विघ्न नहीं डालेगा, इस सम्बन्ध में लेशमात्र भी इस समय विश्वास नहीं किया जा सकता है। 'जीवन' नामक देव को बिलकुल जड़-मूल से लौटा दिया गया है। 'स्वभाव' पर बलात्कार करके उसको 'विभाव' रूप में बदल दिया गया है; 'साक्षरता' को लौटा कर 'राक्षसता' पैदा की गयी है; 'ब्रह्म' को ही कम बना डाला गया है। महावीरों के धर्म को ही मवालियों (बदमाशों)का धर्म बना डाला गया है। गुरुपद को अब गुमान का केन्द्र बनाया गया है; दूसरों के द्वारा मरते हुए प्राणियों की रक्षा ही के लिये पैदा हुए 'क्षत्रिय' अब स्वयं ही निर्बल एवं निःशस्त्र प्रजा को क्रूरतापूर्वक वध करने और ऊपर से सब मामलों को ज्यों का त्यों ही अपने सूर्यवंश का गौरव मानने लगे हैं। यह विकृति !....!...यह अधःपतन !...तमाम समाज शरीर का जड़- मूलसे ऐसा सड़ जाना !...तमाम आकाश का ऐसा फटना ! क्या यह--

'क्या यह'--इतने से ही क्या यह अधःपतन रुक जायगा ? इसको थैगरा क्या दिया जा सकेगा ? विद्युद्वेग से गति करनेवाली विकृति क्या इतने से ही रोकी जा सकती है ?

बिलकुल नहीं; हर्गिज नहीं; विराटराज ऐसा चाहते भी नहीं हैं। **उसने प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र रखा है।** इस स्वतन्त्रता को खेलने दो ,- खेलने दो इस विनाशक स्वतंत्रता को व्यक्ति एवं समाज के प्रत्येक क्षेत्र में ! संहार-क्रिया पूर्ण गति से -- उससे भी अधिक गति से चलने दो ! प्रत्येक क्षेत्र में दो-दो बाँसों को परस्पर संघर्षण करने दो ! उनसे आग प्रगट होने दो और तमाम वन में उसे फैलने दो ! 'फिनीक्ष' पक्षी के प्रत्येक अंग में प्रचण्ड अग्निज्वाला प्रगट होने दो ! क्योंकि --

क्योंकि इस फिनीक्ष खाक में से एक नये तन्दुरुस्त (स्वस्थ) फिनीक्ष पक्षी का शरीर बननेवाला है। पुराने शरीर के जले बिना नया शरीर बन भी कैसे सकता है ? राज्य, धर्म, साहित्य, विज्ञान, कानून आदि इन सबको परस्पर में खूब लडने दो, खूब ही संघर्ष होने दो, जिससे केवल धुआँ ही नहीं; बल्कि तेजोमय सर्वध्वंसिनी अग्नि उनमें से प्रगट हो जावे। इस ज्वाला में खूब नहाओ, क्योंकि यह अग्नि – स्नान ही तुमको पवित्र नया मनुष्य बनावेगा।

वह नया मनुष्य एक ही साथ 'राजा' होगा, 'प्रजा' भी होगा; सेव्य एवं सेवक भी होगा। इसका 'सेवकत्व' भी स्वतन्त्रता की पसन्दगी रूप होगा; एवं 'सेव्यता' जनता-समष्टि की सेवा रूप होगा। वह 'गुरु' होने के साथ ही साथ 'शिष्य' होगा। महान 'श्रद्धालु' होने के साथ ही साथ कट्टर 'नास्तिक' भी होगा। महान 'श्रीमंत' होने के साथ ही साथ महान 'अकिंचन' होगा और महान दरिद्री होने के समय उसे २.५ करोड के धन का नशा रहेगा।

वह नया मनुष्य इन्द्रिय मात्र को नहीं ; किन्तु मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार आदि सबको शिकारी कुत्तों की तरह से अपने काबू में रखनेवाला 'धर्मात्मा' होगा और साथ ही साथ प्रत्येक कुत्ते को जीवित रहने का हक्क स्वीकारने तक का 'उदार' होने से खुराक भी अपने आप देने तक का 'अधर्मी भी होगा।

वह नया मनुष्य अस्तित्व में आना चाहता है, परन्तु वह कोई 'अवतार' अथवा विलक्षण पुरुष के रूप में नहीं, प्रत्युत बिलकुल सामान्य तौर से -- सामाजिक तौर से।

तो ठीक -- समजा में भले ही 'आग' लग जाय , जिससे कि और भी स्वस्थ समाज का शीघ्र ही जन्म हो जाय। इस 'नव्य जन्म' को इस विराटराज का सहस्त्रशः आशीर्वाद !

१५. श्वेताम्बरों का जोरदार सुबूत
अकबर बादशाह का फर्मान बनावटी ठहरा
"परवाने-मतलबी और बनावटी हैं"
प्रिव्ही कौन्सिल का चकित करनेवाला फैसला
(लेखक - चिमनलाल गोपालदास वखारिया बी.ए., एल. एल. बी.)

किसी वस्तु की मालिकी भोगने की दो सीढियाँ हैं। १. वस्तु प्राप्त करने का प्रयत्न और २. प्राप्त कर लेने पर उसे कायम रखने की व्यवस्था। श्वेताम्बर भाइयों के पास उनकी कई मिलकियतों की मालिकी के हक्कों के कितने ही जरूरी सुबूत मौजूद हैं। वे जरूरी इसलिये माने गये हैं कि हमारे भाई हर जगह उन सुबूतों का उपयोग करते आये हैं और अब भी कर रहे हैं। उनमें से जो सबसे पुराना और अतिशय महत्व का सबूत है -- **वह है अकबर बादशाह का फर्मान**। आज से ११ वर्ष पूर्व सन् १९१६ में हजारीबाग की कोर्ट उसे खोटा ठहरा चुकी है और पटना हाईकोर्ट तथा प्रिव्ही कौंसिल ने भी उसके इस फैसले को बहाल रखा, जिसे आज डेढ वर्ष हो गया। जैन और जैनेतर समाज उक्त फर्मान की सत्य हकीकत को अच्छी तरह समझ सकें, इसलिये प्रिव्ही कौंसिल के आधार पर हमने नीचे लिखा खुलासा प्रगट करना उचित समझा है।

फर्मान की उत्पत्ति :- कहा जाता है कि यह फर्मान अकबर बादशाह ने अपने राज्यकाल के ३७ वें वर्ष में प्रदान किया था, इसलिये डॉ. वजर्स ने हिसाब लगाकर १५८९ में इसका दिया जाना बताया है। इन्दौर गादी के हीर विजयसूरि को वह दिया गया था। इसके सिवाय उसकी उत्पत्ति का कोई पता नहीं चलता।

फर्मान का इतिहास :- फर्मान के अस्तित्व में आने के बाद बंगाल में सन् १८६७ में उसका पहले- पहल दर्शन हुआ। श्वेताम्बर कोठी के मैनेजर पूरणचन्द्र गोलछा के गुमाश्ते खाजूराम जौहरी के हाथ से वह सबसे प्रथम पेश किया गया। दूसरी बार सन् १८७५ में पालीताना सम्बन्धी मामले में राजकोट के पोलीटिकल एजेन्ट की कोर्ट में पेश किया गया और तीसरी बार सन् १८८८ में 'पिगरी[28] केस' में पेश किया गया।

फर्मान पर पिगरी केस के समय जज ने जो टीका की थी, वह इसप्रकार है : -

---

[28] सम्मेद शिखर सम्बन्धी श्वेताम्बरों द्वारा दायर किये गये केसो में से एक केस

"फर्मान को सत्य साबित करने के लिये कोई सुबूत पेश नहीं किया गया। वह पुराना है, केवल इसी बिना पर सच मनाने के लिये कोर्ट के समक्ष पेश किया गया है। हीर विजयसूरि के पश्चात् तक वह इन्दौर की गादी में था। बाद में विजयराजसूरि से पत्र द्वारा मँगाकर उसे पहले – पहल पूरणचन्द्र गोलछा ने १८६७ में पेश किया। २८७ वर्ष बाद पूरणचन्द्र गोलछा को एकाएक इसके अस्तित्व की कैसे खबर पड़ी और 'पार्श्वनाथ हिलकेस' में उसको पेश करने की जरूरत है यह ख्याल क्यों आया, इस बात को समझने के लिये कोई साधन नहीं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह कानूनी सुबूत (**Legal Proof**) उत्पन्न करने को एक भडकदार दृश्य (**Elobrate Arrangements**) खड़ा किया गया था। फर्मान विषयक जानकारी रखनेवाले किसी महत्वपूर्ण खास व्यक्ति के बयान नहीं लिये गये। गवाह लोग परस्पर विरुद्ध बयान देते हैं। कई कहते हैं कि वह इन्दौर में था और कई उसका आनन्दजी कल्याणजी के यहाँ रहना बयान करते हैं (देखो, प्रेमाभाई और दलपतभाई के बयान, पार्श्वनाथ हिल जजमेंट, पेज २६) सन् १८७६ में पूरणचन्द्र गोलछा को फर्मान के अस्तित्व की किस तरह खबर पडी, इसका रहस्य अन्त तक समझ में नहीं आता है। १८६७ के बाद उक्त फर्मान माणिकचन्द यति के अधिकार में आता है और १८७५ तक उसी के अधिकार में रहता है। इसके बाद गोविन्दलाल के पास सन् १८९५ तक रहता है; परन्तु माणिकचन्द्र यति फर्मान के अधिकार की हकीकत कहता है, वह बिलकुल अविश्वासी और बनावटी जान पड़ती है।

इन्दौर से उक्त फर्मान मुर्शिदावाद जाता है। जगरूप नाम का एक व्यक्ति उसको लेकर मुसाफिरी करता है। कई मनुष्यों के कहने से पालीताना केस के लिये जगरूप उस फर्मान को हरखचन्द और खाजूराम नाम के व्यक्तियों को देता है। तब मुर्शिदाबाद से फर्मान राजकोट जाता है और वहाँ से आनन्दजी कल्याणजी के कब्जे में रहता है।

"प्रेमाभाई और दलपतभाई नाम के गृहस्थों की पालीताना केस में दी हुई गवाही एक-दूसरे के विरुद्ध है। मुद्दई स्वयं ही, पूरणचन्द्र गोलछा को फर्मान के अस्तित्व की खबर किस तरह पड़ी, इस बात को बड़ी चतुराई से अन्धेरे में रखता है; परन्तु पीछे कब्जे के फेरफार के सम्बन्ध में जो गवाही वह देता है; बिलकुल विश्वास करने के काबिल नहीं ठहरती।"

फर्मान की पुष्टि करनेवाले अन्य लेख भी विरोधी साबित हुए

"**१ला फोटो लेख**– सन् १८४१ के लगभग का है। मि. वर्जर्स साहबने शत्रुंजय के विषय में जो ग्रन्थ लिखा है, उसमें उन्होंने उक्त लेख का उल्लेख किया है; परन्तु उसमें फरक है। मि. वर्जर्स के लेख में अकबर ने दूसरा फर्मान बख्शा ऐसा जिकर है। इससे फर्मान

की पुष्टि की बजाय मि. वर्जर्स का लेख उलटा विरोध करता है। तीसरा उल्लेख "भोलानाथ की मुसाफरी, सन् १८६९" नामक पुस्तक में है, परन्तु फर्मान १८६७ में प्रगट में आया है, इसलिये उक्त उल्लेख की कीमत नहीं रहती।"

"**२ रा फोटो लेख**– इसमें तीन लेखों का आधार लेकर फर्मान को सत्य ठहराने का प्रयत्न किया गया है; जिसमें १५९३ और १५९५ के शत्रुंजय के लेख हैं। तीसरा १५९७-९८ का अहमदाबाद के मन्दिर का नष्टप्राय लेख है। यह लेख १८९४ के एपीग्रेफिका इंडिका में नहीं है। तीनों लेख फर्मान के मजमून से भिन्न-भिन्न मजमून वाले हैं। आश्चर्य तो यह है कि फर्मान से १० वर्ष बाद के लिखे हुए होते भी उनके मजमून में फर्क है।"

"केन्डी साहब की रिपोर्ट फर्मान के विरुद्ध"

"मि. केन्डी की रिपोर्ट बिलकुल साफतौर से साबित करती है कि जो फर्मान इन्दौर में था, वह सच्चा होता तो सन् १७५० से १८६३ तक जो पालीताना का केस चलता रहा, उसमें अवश्य पेश होता।"

Mr. Candy's report the material portions of which I have read right -- through makes it abundantly clear in the present case, that Akbar's Ferman if it had existed at Indore as alleged would have been produced in the same or any of the various disputes that had cropped up from time to time in Palitana before the Political Agents between 1750 (1650) and 1863.

(P.H. Judgement, Page 28.)

मि. केन्डी की रिपोर्ट श्वेताम्बरों के हक में विरोधदर्शक होने से ही 'पिगरी केस में' वह पेश नहीं की गई थी।

आनन्दजी कल्याणजी को १८७५ तक उसकी खबर न थी।

It does not stand to reason to contend that the firm would bot have been aware of the Akbar's Ferman, if it had existed at the time of diputes prior to that of 1875.

(P.H. Judgement, Page 28)

बम्बई सरकार ने तब से--पालीताना केस का फैसला देने में उस फर्मान की कुछ दरकार नहीं की।

हन्ट-केस –मि. केन्डी की रिर्पाट हन्ट– केस में पेश की गई थी, पर अकबर के फर्मान को जजों ने असत्य ठहराया।

मि. किंग्जफर्ड का अभिप्राय - अबुल-फजल जो जैनों से अच्छी तरह परिचित था और जिनके विषय में उसने बहुत कुछ लिखा है, यदि उस समय अकबर के फर्मान का अस्तित्व होता तो वह उसका जिकर किये बिना न रहता।

पार्श्वनाथ हिल-केस में माननीय जज का फैसला -' **I find against the genuininess of the Ferman.** मै फर्मान को असत्य गिनता हूँ।

अन्य परवाने भी उनके मतलबी और बनावटी हैं।

"श्वेताम्बर भाइयों ने पार्श्वनाथ हिल-केसमें सन् १७७४, १७७६,१८१६ १८४०, और १८५६ के परवाने पेश किये थे; परन्तु कोर्ट ने उन्हें मतलबी और बनावटी करार देकर निकाल दिये।

They will appear to be matlabi on the face of them and to have been got up for the purpose of disputes.

(P.H. Judj, Page 32)

I disbelieve them entirely.

(P.H. Judj, Page 33)

एक अबू-अलीखाँकी सनद

श्वेताम्बर भाइयों ने अबू-अलीखाँ नाम के बादशाह की सनद पेश की थी, परन्तु बदकिस्मत से कोर्ट को मालूम पड गया कि उस नाम का बादशाह ही नहीं हुआ।

इसके सिवाय अन्य अनेक परवाने कोर्टों ने असत्य ठहराये हैं ।

There w[illegible] Emperor of that name.

(P.H. Judj, Page 33).

*समाप्त *

श्री ऋषभदेव केशरियाजी दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी



प्रवेश द्वार

श्री दिगम्बर जैन युवक संघ

का

सूत्र वाक्य

"दिगम्बराः सहोदरा सर्वे"